Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

ऋषि दयानन्द

(जीवन गाथा)

दिसम्बर
१९६८

आर्यजनता का
प्रतिनिधि
प्रकाशन

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

"ओ३म्"

जन ज्ञान (मासिक)

●

नव युग प्रवर्तक

महर्षि दयानन्द सरस्वती

प्रस्तुतकर्त्ता
पं० सत्यपाल शर्मा
(वेद शिरोमणि, एम० ए०)

●

3/8197

महान् युग पुरुष देव दयानन्द का आदर्श जीवन चरित्र

द्वितीय संशोधित एवं परिवर्धित संस्करण

●

दिसम्बर : १९६८

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

जन-ज्ञान (मासिक)
१५६७, हरध्यानसिंह रोड, नई दिल्ली-५

भारतेन्द्रनाथ "साहित्यालंकार" के संरक्षण,
निर्देशन में प्रकाशित

294.573052
SHA-D

691

आर्य जनता का अपना प्रतिनिधि प्रकाशन

संपादक
राकेश रानी

वार्षिक मूल्य
६)
विदेश में
१२ शिलिंग

इस अंक का मूल्य
१)

दिसम्बर : १९६८

वर्ष १
अंक ८

(प्रचारार्थ ६०) की १००, १८) की २५ और ८) की १० प्रतियाँ)

संपादक, मुद्रक तथा प्रकाशक श्रीमती राकेशरानी द्वारा जन-ज्ञान प्रकाशन हेतु
जय भारती प्रेस, सदर बाजार, दिल्ली में मुद्रित
और १५६७, हरध्यानसिंह रोड, नई दिल्ली-५ से प्रकाशित ।

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

सम्पादकीय

जावन से प्रकाश लें !

महर्षि दयानन्द युग पुरुष थे, उन्होंने अपना जीवन मानव के उत्थान औ निर्माण हित अर्पित कर दिया था। निष्पक्ष भाव से विचार किया जाए तो धरती के प्रांगण में दयानन्द सा दार्शनिक, मानवता का पुजारी, सत्य का अन्वेषक और कल्याण मार्ग का द्रष्टा और कोई व्यक्ति नहीं हुआ।

उनकी महानता शब्दों में नहीं आंकी जा सकती। फिर भी आज की सब से बड़ी आवश्यकता उनके जीवन चरित्र से सभी को परिचित कराना है क्योंकि अभी तक महर्षि के प्रति सच्चे ज्ञान का अभाव विद्यमान है। 'जन-ज्ञान' अपने सीमित साधनों के साथ यह संक्षिप्त जीवन-चरित्र अत्यन्त श्रद्धा और आग्रह के साथ पाठकों को भेंट करता है। हमारी प्रार्थना पर प्रसिद्ध विद्वान् पं० सत्यपाल जी ने इसे तैयार करने में जो श्रम किया वह उनकी उत्कट ऋषि भक्ति का सूचक है।

धरती का व्यामोह, विनाश की ओर प्रयाण और सर्वनाश की उपासना का चक्र रोकने के लिए महर्षि का जीवन प्रकाश स्तंभ है। उनके उपदेश अमोघ अस्त्र और निर्देशन जीवन का संगीत है। काश, कि उनके जीवन का प्रकाश हमारे अन्तर का अंधकार दूर कर सकता।

द्वितीय संस्करण

अत्यन्त हर्ष का विषय है कि इस पुस्तक का प्रथम संस्करण ५-७ दिन में ही समाप्त हो गया। आर्य जनों ने जिस उत्साह से इसका स्वागत किया उसके लिए हम आभारी हैं हमारी इच्छा इसे लाखों की संख्या में प्रकाशित करने की है किन्तु साधनों का अभाव इच्छापूर्ति में बाधक है। प्रभु कृपा करें कि हम अगली दीपावली तक इसकी कम से कम १ लाख प्रतियां निकालने में समर्थ हो सकें।

—राकेश रानी

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

महर्षि दयानन्द की जय!

सारी धरती मिल कर बोले, जय दयानन्द ऋषि राज की।
अवनी अम्बर में गूंजेगी, जय दयानन्द महाराज की॥

उठो आर्य जन, उठो वीर वर, वेद ज्ञान फैलाओ रे।
त्रस्त मनुज के अन्तर तल में, वेद सुधा छितराओ रे॥

वेदामृत का पान करेंगे, दयानन्द का गान करेंगे।
समय आएगा सत्य ज्ञान पर, सारे ही अभिमान करेंगे॥

तब बोलेंगे उच्च स्वरों में, ऋषिवर दयानन्द की जय।
मुनिवर दयानन्द की जय, ऋषिवर दयानन्द की जय॥

दयानन्द सा नहीं हुआ है, मानव का उपकारी।
मनुज मात्र का जीवन-रक्षक, सत्यव्रती ब्रह्मचारी॥

उसके गीत गुंजाओ रे, धरती नयी बनाओ रे।
तम अज्ञान हटाओ रे, स्वर्ग यहाँ पर लाओ रे॥

आर्य वीर जागो अब तो तुम, जय बोलो ऋषिराज की।
जन-मन तक पहुंचा दो गाथा, मानवता अधिराज की॥

करलो उसको कोटि प्रणाम, जो था युग का भाग्य ललाम।
सबसे ऊँचा और महान्, दिये सभी को शुभ वरदान॥

बलिदानी की जय-जयकार, वीरव्रती की जय-जयकार।
गूंजेगी जिस दिन अम्बर में, दयानन्द की जय-जयकार॥

(उस दिन)-दनुज नहीं रह पायेगा, मनुज नहीं रो पायेगा।
कष्ट क्लेश कट जायेगा, स्वर्ग धरा पर आयेगा॥

मिलकर बोलो, उठ कर बोलो, बढ़कर बोलो, जमकर बोलो।
ऋषिवर दयानन्द की जय, मुनिवर दयानन्द की जय॥

—राकेश रानी

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

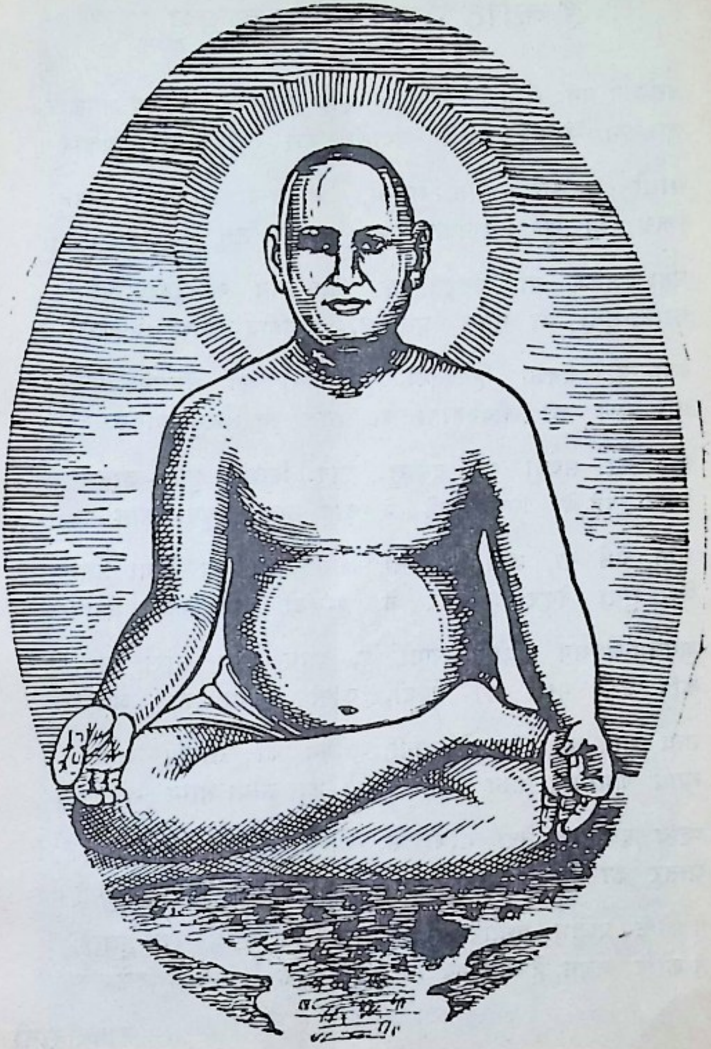

हैं कोटि प्रणाम चरणों में ऋषिराज तुम्हारे

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

हैं कोटि प्रणाम हे महाप्रभु !

जन-जन मन में गूँज रही है, ऋषि दयानन्द की जय जयकार,
कण-कण में नव ज्योति जगाती, फैल रही है जय जयकार।

आओ मिलकर गीत सुनायें, जीवन-गाथा पढ़ें, पढ़ायें,
रक्षक था जो मानवता का, उसका हम संदेश सुनायें,

महा मनुज था, देवदूत वह, सत्य-ज्ञान का दिव्य पुजारी,
शान्ति-सुधा का सबल प्रसारक, दयानन्द सबका उपकारी।

दयानन्द सबका हितकारी, मानवता का उन्नायक था,
प्राण-प्राण का जीवनदाता वेद ज्ञान का मधु गायक था।

प्रभु का सच्चा पुत्र दयालु, राह दिखाई पुनः ज्ञान की,
भटक रहे थे, सिसक रहे थे, चाह जगाई पुनः ज्ञान की।

ज्ञान धर्म था, ज्ञान कर्म था, ज्ञान लक्ष्य का किया प्रसार,
वेद सुधा देकर ऋषिवर ने, पाखंडों पर किया प्रहार।

जगमग-जगमग ज्योति जगी है, जाग उठा सारा संसार,
कांप उठी पापों की गद्दी, कांपा छलना का व्यापार,

सत्य ज्ञान की किरणें जागीं, जीवन का सौन्दर्य जगा है,
न्याय जगा-प्रभु ज्ञान जगा, धरती का सोया भाग्य जगा है।

ऋषि दयानन्द तेरी गाथा से, जीवन में जय-भाव जगे हैं,
अन्तर का गहरा अन्धकार अब दूर हुआ जय-गान जगे हैं।

हैं कोटि प्रणाम तुम्हारे पावन चरणों में ऋषि राज हमारे,
है कोटि नमन, हे महापुरुष ! हे युग रक्षक ! सच के रखवारे।

—राकेशरानी

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

आर्य समाज संस्थापक : देवदयानन्द

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

अमर कहानी

● सत्यपाल शर्मा "सत्य"

सुनो सुनो सब नर नारी गण दयानन्द की अमर कहानी।
अन्त में जीवन में जो अपने हुए महर्षि महा ज्ञानी।।
नाम एक गुजरात प्रान्त है भारत की सुन्दर साया।
राज्य मौरवी में टंकारा नामक ग्राम सदा भाया।
करषन नाम हुए इक भूमिय जिनके घर थी सब माया।
अठारह सौ इक्यासी में घर में इक दीप चला आया।
इस दीप की ज्योति लख कर के था घर का दीपक शरमाया।
नाम मूलशंकर फिर अन्त में नाम दयानन्द पाया।
सच्चे शंकर के पाने को खाक जगत् की छानी।। सुनो सुनो......।।
तात संग मन्दिर में जाकर शिव रात्रि का व्रत ठाना।
मानस मन्दिर सज्जित कर, था उनको शिव शिव तर पाना।
मध्यरात्रि पिण्डी पर चढ़ते चञ्चल इक चूहा देखा।
देख चढ़े फूल फूल को खाते भाल खिंची चिन्ता रेखा।
उठ कर के फिर पूज्य तात को सोते आन जगाया।
"यह ईश नहीं पत्थर है" कह कर अपना भाव सुनाया।
पूज्य पिता ने समझाया पर उनकी एक न मानी।। सुनो सुनो...।।
घर त्याग चले गुरु वर्ग खोजने सच्चा शिव जो दरशाए।
जब कहीं नहीं पाया कोई भी तो काशी नगरी आए।
वहाँ सुना मथुरा में रहते संन्यासी एक विद्वद्वर।
विरजानन्द सदा आनन्दित रहते हैं वे योगि प्रवर।
तुरत चले आए मथुरा में अपने योग्य गुरु पाया।
चरण कमल छू कर के उनका मन फूला न समाया।
विविध वेद शास्त्रों की शिक्षा पाकर हुए महा ज्ञानी।। सुनो सुनो...।।
सत्यार्थ प्रकाश रचा वेदों के सब सन्देश सुनाए।
इतस्ततः सन्देश सुना ऋषि अन्त जोधपुर आए।
उपदेशामृत राजा को दे स्वयं दूध में विष पाया।
अन्त समय भी विषदाता पाचक पर करके वे दाया।
मिले ईश से मुसकाते वे छोड़ दुःखी जगती को।
"सत्य" दिवाली की जगमग में बुझी प्रवरतर ज्योति वो।
देकर गुरुदत्त को आस्तिकता दान चला फिर वह दानी।। सुनो सुनो...।।

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

बाल्य काल—१

भारत के गुजरात प्रान्त में मोरवी राज्य के टंकारा नामक छोटे से गाँव में करषनजी लालजी त्रिवेदी नाम से एक समृद्ध गृहस्थ रहते थे। सन् १८२४ ई० में उनके यहाँ एक बालक ने जन्म लिया। मूल नक्षत्र में उत्पन्न होने के कारण बालक का नाम मूलशंकर रखा गया। संन्यास लेने पर इसी बालक का नाम दयानन्द हुआ। करषनजी औदीच्य ब्राह्मण थे। परन्तु भिक्षा वृत्ति

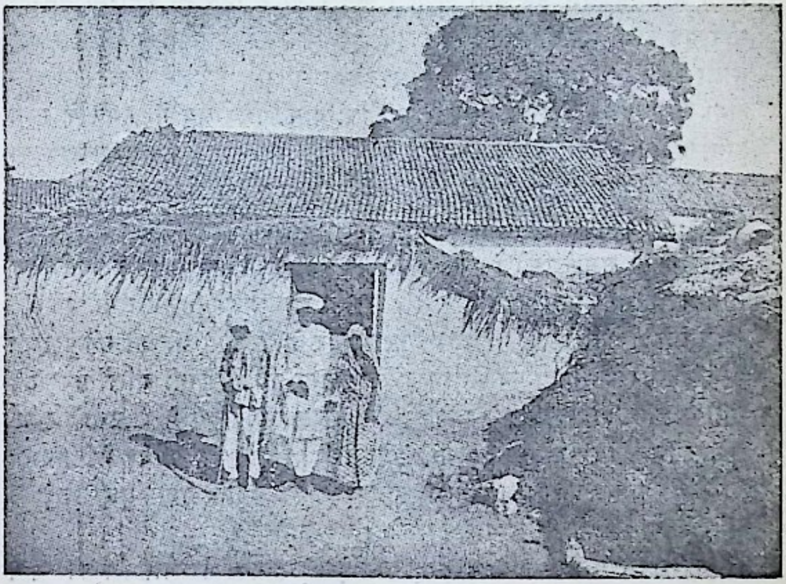

टंकारा का वह मकान : जिसमें मूलशंकर पैदा हुए

नहीं थी, लेनदेन का व्यवहार होता था और रियासत की ओर से जमींदारी भी मिली हुई थी जो तहसीलदारी के बराबर थी। आठवें वर्ष में मूलशंकर

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

का यज्ञोपवीत संस्कार हुआ और गायत्री, सन्ध्या, रुद्री आदि कंठस्थ कराये गये। बचपन से ही इनकी स्मरण-शक्ति बहुत तीव्र थी। १४ वर्ष की आयु तक मूलशंकर यजुर्वेद संहिता कंठस्थ कर चुका था। व्याकरण में प्रवेश हो चुका था। ऐसी अवस्था में उसके गुरुओं की यह सम्मति हुई कि अब यह धार्मिक कृत्यों में भी भाग ले सकता है।

शिवरात्रि व्रत

१८९४ विक्रमी की माघ वदी १४ को शिवरात्रि को व्रत था। मूलशंकर के सामने जब व्रत रखने का प्रस्ताव किया गया तो वह पहले राजी नहीं हुआ। माता ने भी प्रमवश उसे मना किया। तब पिता ने शिव का महात्म्य सुनाया और व्रत रखने का संकल्प कराकर उन्हें एक प्रकार से व्रतोपवास की अनिवार्य आज्ञा दी गई। उस दिन सायं समझाया गया कि रात भर हमें जागरण करना होगा अन्यथा व्रत निष्फल हो जायेगा। रात्रि को शिवालय में नगर के सभी साधारण भक्त और प्रतिष्ठित लोग व्रतपूर्वक, पूजा-पाठ, जप और जागरण करते थे। पिता भी बालक को इसी मन्दिर में ले गये। मन्दिर में दीप जगमगा रहे थे। सारा शिवालय सुगंधित था। पहले प्रहर की पूजा लोगों ने बड़े भक्ति-भाव से समाप्त की। दूसरे प्रहर की पूजा भी जैसे-तैसे हो गई। लेकिन रात्रि का तीसरा प्रहर प्रारंभ होते ही लोगों की आँखें मिचने लगीं और वे ऊंघने लगे। मूलशंकर के पिता और मन्दिर के पुजारी भी सो गये। इधर मूलशंकर पर भी निद्रा का आक्रमण होने लगा पर वे अपनी आँखों पर ठंडे पानी के छींटे दे देकर अपने आपको और सचेत बनाये हुए थे। उनकी दृष्टि बराबर शिवलिंग पर गड़ी हुई थी। इतने में ही देखा कि मन्दिर में सन्नाटा पाकर चूहे बिलों से निकल आये हैं और मूर्ति के इर्द-गिर्द पड़ा हुआ चढ़ावा खा रहे हैं। कभी-कभी शिवलिंग पर भी चढ़ जाते हैं।

मूलशंकर ने सोचा कि जो महादेव बड़े-बड़े दानवों के व्यतिक्रम को नहीं सह सकता और त्रिशूल लेकर उनका संहार कर देता है वह इन चूहों को सिर पर चढ़ने से तो अवश्य रोकेगा, और कुछ नहीं तो सिर हिलाकर ही उन्हें भगा देगा। परंतु उन्होंने आश्चर्य से देखा कि वह शिवलिंग निश्चल था। मूलशंकर के मन में विचार तरंगें उठने लगीं, तो क्या यह पत्थर वही "शिव" है जो कैलाश-

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

टंकारा के शिव मन्दिर में : बालक मूलशंकर

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

वासी है ? जो संसार की प्रलय करने की शक्ति रखता है ? नहीं, वह कोई और शिव होगा।

मूलशंकर ने अपने पिता को जगाया और बिना किसी डर के पिता के सामने शंका रखी। बजाय समझाने के पिता ने क्रोधपूर्वक डांटा और बोले—"यह बात तू क्यों पूछता है ? ऐसे शिवाराधन के समय ऐसा प्रश्न क्यों करता है ?" जब मूलशंकर ने अपना मन स्पष्ट किया तो पिता बोले—"पुत्र इस कलि काल में महादेव के साक्षात् दर्शन नहीं होते। इसलिए उनकी मूर्ति बनाकर पूजन किया जाता है। सत्य है, यह तो केवल देवता की मूर्ति है, साक्षात् देवता नहीं है।" मूलशंकर का मन सन्तुष्ट नहीं हुआ। मूर्तिपूजन से उनकी आस्था समाप्त हो गई। उन्होंने चेतन सत्ताधारी वास्तविक शिव को प्राप्त करने का दृढ़ संकल्प कर लिया। स्वभाव ही उनका ऐसा था कि एक बार कोई संकल्प करने पर उस पर दृढ़ रहते थे। वे घर गये और माताजी से माँगकर भोजन आदि करके एक बजे के बाद सो गये। सबेरे पिताजी को पता लगा कि मूलशंकर ने भोजन कर लिया। बड़े क्रुद्ध हुए लेकिन मूलशंकर के चाचा और माताजी के समझाने पर पिता ने व्रतोपवासादि से दूर रहकर यथारुचि अध्ययन के लिए उन्हें प्रसन्नता से अपनी अनुमति दे दी। अब मूलशंकर को पूजापाठ से खुली छुट्टी मिल गई और विद्याध्ययन में पूरी तरह लग गये।

मृत्यु दर्शन

उन दिनों दो ऐसी घटनाएँ हुईं जिन्होंने मूलशंकर के स्वच्छ दर्पण के समान शुभ्र हृदय पर स्थायी प्रतिबिम्ब छोड़ दिया। ऋषि स्वयं लिखते हैं:—

"मेरी १६ वर्ष की अवस्था के पीछे मेरी १४ वर्ष की बहिन थी।···एक रात जबकि हम एक मित्र के घर गये हुए थे तब अचानक नौकर ने आकर खबर दी कि उसे हैजा हो गया। हम सब तत्काल वहाँ से आये, वैद्य बुलाये गये, औषधि की, मगर फायदा नहीं हुआ। चार घंटों में उसका शरीर छूट गया। मैं उसके बिछौने के पास दीवार से आसरा लेकर खड़ा था। जन्म से लेकर इस समय तक मैंने पहली बार मनुष्य को मरते देखा था। इससे मेरे मन को बड़ा कष्ट हुआ और मुझे बहुत डर लगा और मारे डर के सोचने

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

लगा कि क्या सारे मनुष्य इसी प्रकार मरेंगे और ऐसे ही मैं भी मर जाऊँगा ? सोच-विचार में पड़ गया कि जितने जीवन संसार में हैं उसमें से क्या एक भी न बचेगा ? इससे ऐसा उपाय करना चाहिए कि जिससे जन्म-मरण रूपी दुःख से यह जीव छूटे और मुक्त हो, अर्थात् इस समय मेरे चित्त में वैराग्य की जड़ जम गई ।"

दूसरी घटना का वर्णन यों है—"जब मेरी अवस्था १९ वर्ष की हुई तब जो मुझसे अत्यन्त प्रेम करने वाले बड़े धर्मात्मा तथा विद्वान् मेरे चाचा थे उनको हैज़े ने आ घेरा । मरते समय उन्होंने मुझे पास बुलाया । लोग उनकी नाड़ी देखने लगे । मैं भी पास ही बैठा हुआ था । मेरी ओर देखते ही उनकी आँखों से आँसू बहने लगे । मुझे भी उस समय बहुत रोना आया । यहाँ तक कि रोते-रोते मेरी आँखें फूल गईं । इतना रोना मुझे पहले कभी नहीं आया था । उस दिन मुझे ऐसा प्रतीत हुआ कि मैं भी चाचा के सदृश एक दिन मरने वाला हूँ ।"

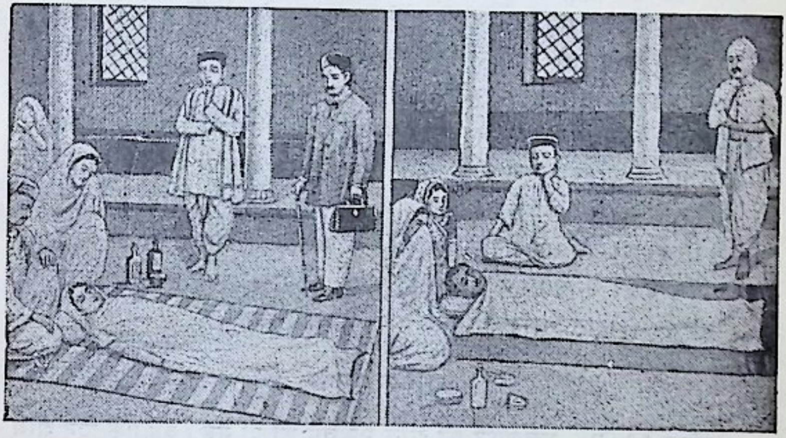

बहन और चाचा की मृत्यु का दृश्य

तपे हुए लोहे पर चोट लगी । दोनों घटनाओं ने वैराग्य ला दिया । सच्चे शिव को प्राप्त करने के संकल्प और मृत्यु से छूटने की इच्छा और वैराग्य ने उनके मन को पूर्णतः बदल दिया । मूलशंकर के माता-पिता को यह पता लगा

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

तो वे उसे बाँधने के लिए विवाह कर देने का संकल्प करने लगे। मूलशंकर के माता-पिता की अधीरता ने इनका मार्ग एकदम बदल दिया।

वैराग्य

मूलशंकर कुछ दिनों के लिए तो विवाह के इस प्रसंग को टालने में समर्थ हो गये परन्तु उन्हें भय था कि २१ वर्ष के प्रारम्भ होते ही विवाह की चर्चा फिर चलेगी और उस समय उसका टालना कठिन हो जायेगा। इसलिए संवत् १६०० में २०वें वर्ष की समाप्ति पर उन्होंने पिताजी से कहा कि मुझे व्याकरण, ज्योतिष और वैद्यक विद्या पढ़नी है, इसलिए काशी भेज दीजिये। परन्तु पिताजी का कहना था : "अधिक पढ़कर क्या करोगे और बहुत पढ़कर हमने करना भी क्या है ? तुम्हारे विवाह में और थोड़े दिन शेष हैं, तुम्हें गृहस्थ बनना है, इसलिए कामधन्धे में जी लगाना सीखो।" माताजी का भी यही आग्रह था। मूल शंकर ने बहुत कहा पर किसी ने नहीं मानी। कुछ दिन बीत जाने पर वह पिताजी से बोले "आपने मुझे काशी जाने से तो रोक दिया परन्तु इतना तो मान लीजिये कि यहाँ से ३ कोस पर अपनी जाति के एक वयोवृद्ध महान् विद्वान् रहते हैं, उन्हीं के पास जाकर पढ़ा करूं।" इस प्रस्ताव को करषनजी ने स्वीकार कर लिया और मूलशंकर उनके पास जाकर पढ़ने लगा। दुर्दैववश एक दिन उनके साथ विवाह का प्रसंग छिड़ गया और मूलशंकर के मुंह से ये शब्द निकल गये "मुझको विवाह से ऐसी घृणा है कि किसी प्रकार भी वह मेरे मन से दूर नहीं हो सकती।" बात पिताजी के कानों तक पहुँच गई। उन्होंने पुत्र को तुरन्त बुला लिया। विवाह की तैयारियाँ शुरू हो गईं। परन्तु भाग्य तो कुछ और ही था।

गृह-त्याग

संवत् १६०२—मूलशंकर की आयु २२ वर्ष की हो गई। वह एक दिन शाम को पूर्ण वैराग्यवान् होकर फिर लौटकर घर न आने का संकल्प करके. स्नेह, स्मृति, वात्सल्य सभी कुछ त्यागकर अमर जीवन की तलाश में घर से निकल पड़ा। पहली रात अपने शहर से ६ कोस की दूरी पर बिताई। अभी जब एक प्रहर रात बाकी थी फिर यात्रा पर निकल गये और सायं से पहले ही २०

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

कोस पर एक गाँव में पहुँचकर विश्राम लिया। यहाँ हनुमान के एक मन्दिर में रात बिताई। ऊंचे-नीचे विषम पथ से चलते चले जाते थे ताकि उन्हें कोई जान-पहचान वाला न मिल जाये। घर में जब पता चला कि मूलशंकर घर से निकल गया है तो मानो उनपर भीषण वज्रपात हुआ। माता-पिता बहुत व्याकुल हो गये। चारों ओर सिपाही दौड़ा दिये गये। जहां-जहां भी उनके पहुँचने की संभावना थी, खोज होने लगी। इधर मूलशंकर टेढ़े-मेढ़े रास्तों से चले जा रहे थे। जब वे तीसरे दिन यात्रा कर रहे थे तो रास्ते में उन्हें यह मालूम हो गया कि करषनजी के पुत्र की खोज में घुड़ सवार यहां तक आये थे। यह सुनकर वह और आगे बढ़ गये। उसी दिन मार्ग में उनको साधुओं के भेष में एक ठगों का दल मिला। पहले तो उन्होंने उसकी यात्रा का कारण पूछा और फिर इनको चिढ़ाने लगे, "देखो त्यागी बनने चला है। हाथ की अंगूठियां तो छोड़ी ही नहीं गई। वैराग्य सिद्धि क्या धूल करोगे? इसलिए सारे भूषण मूर्ति के आगे चढ़ा दो।" मूलशंकर उनकी ठगाई में आ गए और उन्होंने अंगूठियाँ उंगलियों से उतारकर उनके आगे फेंक दीं।

शुद्ध चैतन्य बने

चलते-चलते उन्होंने सुना कि सायला नामक एक ग्राम में एक लाला भक्त रहता है। वहाँ अन्य भी अनेक साधु-सन्त रहते हैं। यह सोचकर कि शायद वहाँ कोई मुक्ति का मार्ग जानने वाले मिल जाये, वहाँ पहुँचे। वहां उनकी एक ब्रह्मचारी से भेंट हुई जिसने उन्हें नैष्ठिक ब्रह्मचारी बनने की प्रेरणा दी और उस ब्रह्मचारी ने मूलशंकर को दीक्षा देकर काषाय वस्त्र धारण कराये। एक तूंबा दे दिया और आदेश किया कि आज से तुम्हारा नाम शुद्ध चैतन्य हुआ। शुद्ध चैतन्य उन्हीं साधु-सन्तों की मन्डली में रहकर कुछ योग साधन में भी प्रवृत्त हो गया। परन्तु जब देखा कि उनकी वास्तविक कामना वहां पूर्ण नहीं होगी, वे उस मठ से चलकर कोट-कांगड़ा नाम के एक छोटे से शहर में चले गये। उस गाँव में बहुत से वैरागी रहते थे। शुद्ध चैतन्य को गेरुए वस्त्रों में देखकर उन्होंने उसकी हंसी उड़ाई और उसकी रेशमी धोतियों पर उन्होंने आक्षेप किया। ब्रह्मचारी के पास उस समय ३ रुपये बचे हुए थे। उनसे उन्होंने नई सादी धोतियां लीं और रेशमी धोतियाँ वहीं फेंक दीं और वैरागियों

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

से दूर एकान्त स्थान में उन्होंने ३ मास बिताये।

सिद्धपुर के मेले में

उन दिनों कोट-कांगड़ा में सिद्धपुर के कार्तिक मेले की बड़ी चर्चा थी। ब्रह्मचारी भी योगियों के दर्शन की अभिलाषा से सिद्धपुर की ओर चल दिये। गाँव से थोड़ी ही दूर गये थे कि उनका एक ग्रामीण वैरागी से साक्षात्कार हुआ। वह उनका परिचित था। दोनों ही की आँखों से टपटप आँसू गिरने लगे। ब्रह्मचारी ने वैरागी को अपने गृह-त्याग की सारी कहानी सुना दी। इसपर गम्भीर होकर वैरागी ने घर से भाग निकलने पर बहुत खेद प्रकट किया और ब्रह्मचारी को धिक्कारा। वैरागी के पूछने पर शुद्ध चैतन्य बोले—"हाँ मैंने घर त्याग दिया है और कार्तिक के मेले पर सिद्धपुर जा रहा हूँ।" ब्रह्मचारी शुद्ध चैतन्य सिद्धपुर आये। वहां नीलकंठ महादेव के मठ में आसन जमाया। वहाँ वास करने वाले सन्तों और योगियों का सत्संग करते हुए ज्ञानार्जन करने लगे परन्तु जिस वैरागी ने ब्रह्मचारी से गृह त्याग की कहानी सुनी थी उसने अपने घर जाकर पत्र द्वारा करषनजी को सारी बात सूचित कर दी। समाचार पाते ही उनके पिता ४ सैनिकों के साथ सिद्धपुर आ गये और मेले में घूम-घूमकर अपने पुत्र को खोजने लगे।

पिता से अन्तिम भेंट

एक दिन सवेरे उनके पिता यकायक उस शिवालय में आ खड़े हुए जिसमें कि उनका पुत्र गेरुए वस्त्र धारण किये सामने बैठा था। पुत्र को इस दशा में देखकर उनके क्रोध की सीमा न रही। कड़कती हुई वाणी से बोले—"तूने सदैव के लिए हमारे वंश को दूषित कर दिया।" आवेश में और भी बहुत सी बातें कहीं। मूलशंकर अपने पिताजी को देखने का साहस न कर सके। आसन से उठे। दोनों पैर पकड़ लिये और बोले—"मैंने धूर्त लोगों के बहकाने से गृह-त्याग किया। इस कर्म का मुझे पर्याप्त फल मिल चुका है। आप शान्त हों, मेरे अपराधों को क्षमा करें। खुशी से मैं आपके साथ चलने को तैयार हूँ।" क्रुद्ध पिता ने गेरुआ कपड़ा फाड़कर चिथड़े-चिथड़े कर दिया और उन्हें सफेद कपड़े पहनाकर वहाँ ले गये जहाँ वह खुद ठहरे हुए थे। उन पर

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

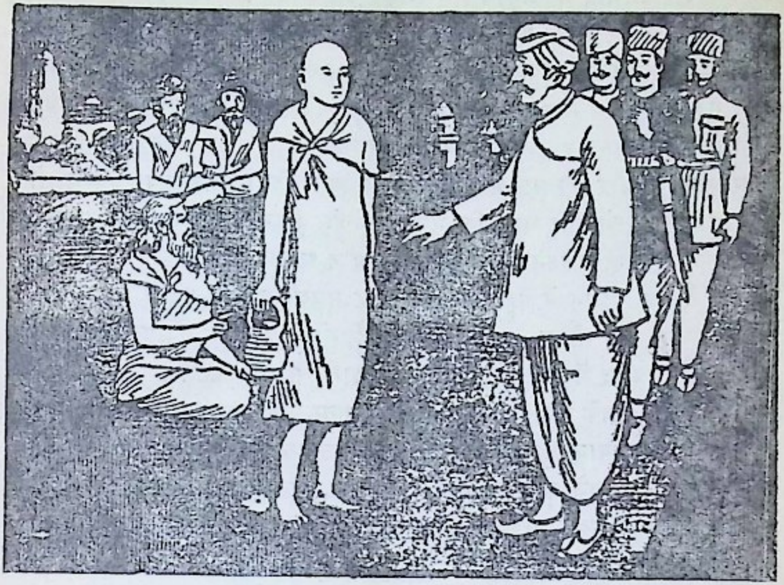

सिद्धपुर के मेले में पिता से अन्तिम भेंट

कड़ा पहरा लगा दिया गया। दिन-रात सैनिक उनपर निगाह रखने लगे। परन्तु उनके पिता जितना उस मूलशंकर को वैवाहिक बंधनों में बांध देने के अपने प्रयत्न में पक्के थे उतना ही सांसारिक बंधनों से हमेशा हमेशा के लिए मुक्त हो जाने के प्रयत्न में मूलशंकर पक्के थे। पिताजी को यही विश्वास दिलाते रहे कि मैं अवश्यमेव घर चलूंगा और माताजी के दर्शन करूंगा। पर इधर मौका ढूंढ़ते रहे कि कब दांव लगे और कब भाग निकलें।

पितृ बंधन से मुक्त

पितृ बंधन में पड़े दो और दिन बीत गये। तीसरा दिन भी ज्यों-त्यों करके काटा। तीसरी रात आ गई। एक-एक पल जागते-जागते काट रहे थे। शरीर वहाँ जरूर था पर मन से बहुत दूर जा चुके थे। संकल्प ने साथ दिया, तीसरी रात्रि का तीसरा पहर प्रारम्भ हुआ। पहरे वाले झूमने लगे और

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

धीरे-धीरे गाढ़ी नींद में सो गये। मूलशंकर उठे, पानी का भरा एक लोटा हाथ में ले लिया ताकि अगर कोई पूछे तो कह दें कि शौच को जा रहा हूँ। बिना रोक-टोक भागते हुए सिद्धपुर से आध कोस दूर एक उद्यान में जा पहुँचे। वहाँ एक पुराना मन्दिर था। बड़ का पेड़ था। जटाओं के सहारे उस मन्दिर के शिखर पर जा कर हाथ में लोटा लिए बैठ गये। सारा दिन इसी प्रकार घोर कष्ट में और उपवास में वहीं बैठे-बैठे बिता दिया उधर जब पहरेवालों और करषनजी को पता चला कि मूलशंकर जी फिर भाग गये तो हलचल मच गई। उन्हें पकड़ने के लिए चारों ओर आदमी दौड़ाये गये। खोजते-खोजते वे उस उद्यान में पहुँचे कि जहाँ पर मूलशंकर छिपे बैठे थे।

मन्दिर के भीतर, बाहर ढूंढ़ा मालियों से पूछताछ की पर कोई पता नहीं चला। अन्त में निराश होकर वे उद्यान से चले आये। सारे समय मूलशंकर ऐसे दुबके बैठे थे कि हिलना-डुलना, खांसना-खखारना तो दूर सांस की भी आवाज सुनाई नहीं देती थी। उन सब के वापस चले आने के बाद रात को ७ बजे जब कुछ अन्धेरा हो गया, मूलशंकर मन्दिर की चोटी से नीचे उतरे और सड़क छोड़कर आगे चल पड़े। मूलशंकर का बन्धु-मिलाप और पितृ-दर्शन बस यहीं अन्तिम सिद्धपुर में हुआ।

संन्यास-दीक्षा

बहुत से गावों और शहरों से विचरते हुए वे अहमदाबाद से बड़ौदा में आकर कुछ काल ठहर गये। यहाँ ब्रह्मचारियों और संन्यासियों से वेदान्त के बारे में चर्चा चलती रहती थी और उनके संसर्ग में आकर शुद्ध चैतन्य पक्के वेदान्ती बन गये। उन्हीं दिनों उन्होंने सुना कि नर्मदा तट पर बड़े-बड़े विद्वानों की एक बड़ी सभा होने वाली है। वे तुरन्त नर्मदा की ओर चल पड़े और वहां सच्चिदानन्द नाम के एक परमहंस से मिले। उन्होंने बताया कि इसी नर्मदा के तट पर चाणोद करनाली में बड़े-बड़े विद्वान् ब्रह्मचारियों की एक मण्डली आजकल ठहरी हुई है। जिज्ञासु श्री शुद्ध चैतन्यजी चाणोदकरनाली पहुँच गये और वहाँ उनकी श्री चिदाश्रम आदि विद्वान संन्यासियों से भेंट हुई। वहां बड़ी ज्ञान चर्चाएँ हुई और बहुत ग्रंथ भी उन्होंने पढ़े।

उन्हें पढ़ने में इतनी लगन होने लगी कि अधिक से अधिक समय

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

उन्होंने विद्याध्ययन में ही देना चाहा। और इसलिए अपने हाथों भोजन बनाने के बखेड़े से बचने के लिए उन्होंने संन्यासाश्रम में प्रवेश करने का संकल्प किया। परन्तु जब उन्होंने श्री चिदाश्रमजी से संन्यासकी दीक्षा देने की प्रार्थना की तो उन्होंने अस्वीकार कर दिया। शुद्ध चैतन्य ने नर्मदा तट पर ड़ेढ़ वर्ष बिताया। इस समय उनकी आयु २४ वर्ष २ मास की हो गई थी।

एक दिन उन्होंने सुना कि चाणोद से १॥ कोस की दूरी पर जंगल में एक दाक्षिणात्य दण्डी स्वामी आये हुए हैं। तब वे अपने मित्र दक्षिणी पंडित को साथ लेकर उन दण्डी स्वामी की सेवा में उपस्थित हुए, बहुत से विषयों पर वार्तालाप हुआ। दण्डी जी का नाम पूर्णानन्द सरस्वती था। इनका शुद्ध चैतन्य पर बहुत प्रभाव हुआ और उन्होंने अपने मित्र पंडित के द्वारा उनसे संन्यास की दीक्षा देने के लिए निवेदन किया। पहले तो भरपूर युवावस्था देखकर दंडीजी ने इनकार कर दिया परन्तु बाद में बहुत कुछ आग्रह किये जाने पर और यह कहने पर कि ये गुर्जर ब्राह्मण हैं और गुर्जर भी द्रविड़ों में ही आते हैं, दण्डीजो ने उन्हें संन्यास देना स्वीकार कर लिया। दो दिन तक जप आदि साधन-विधि करके तीसरे दिन शुद्ध चैतन्य दण्डीजी की सेवा में उपस्थित हुए। दण्डी स्वामीजी ने विधिपूर्वक संन्यास धारण कराया और उनका नाम दयानन्द सरस्वती उद्घोषित किया। संन्यास की रीति-नीति का उपदेश आदि प्राप्त करने के बाद वे कई दिन तक गुरुचरणों में बैठकर नम्रता से ब्रह्मविद्या का अध्ययन करते रहे। कुछ दिन बाद जब स्वामी पूर्णानन्द जी चाणोद से द्वारिका जाने लगे तो दयानन्द ने बड़ी पूजा सम्मान से गुरुचरणों में प्रणाम किया। उनके जाने के बाद कई दिन तक वे चाणोद में ही रहे।

योग साधन

वहाँ से वे व्यासाश्रम में गये, जहाँ योगानन्दजी से योगविद्या के रहस्य सुने और इनकी पुस्तकें भी अच्छी तरह पढ़ीं। वहां से वे छिन्नाड़े में कृष्ण शास्त्री नामक एक धुरन्धर व्याकरण पंडित के पास पहुँचे और उनसे व्याकरण के ग्रंथ पढ़ने के बाद फिर चाणोद करनाली वापिस आकर एक राजगुरु से वेदाध्ययन करने लगे। इस बार चाणोद में दयानन्दजीकी भेंट दो महात्माओं से हुई जिनमें से एक का नाम ज्वालानन्द पुरी और दूसरे का नाम शिवानन्द

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

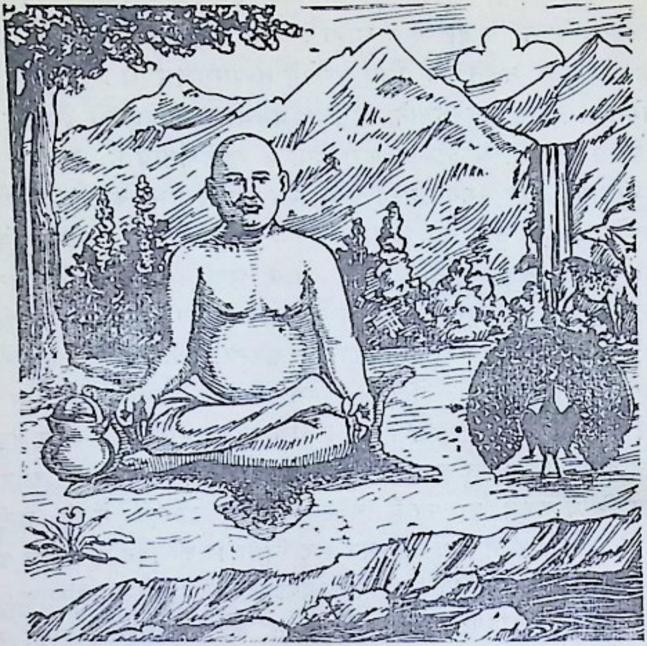

तपस्या में लीन : तपस्वी दयानन्द

गिरी था। दोनों ही महात्मा प्रसन्नचित्त, प्रशान्त आत्मा और पहुँचे हुए योगी थे जब उन्होंने दयानन्द को आत्म-पिपासु पाया उन्हें सारे योगाभ्यास सिखाये और वे जब दोनों योगी अहमदाबाद जाने लगे तो इन्हें आदेश कर गये कि "एक महीने के पश्चात् वे अहमदाबाद में आयें।" योग साधन के सम्पूर्ण गूढ़ तत्व क्रियाओं के साथ भली भाँति समझा दिये जायेंगे। दयानन्द एक मास तक चाणोद में ही रहकर अहमदाबाद गये। योगियों ने दूधेश्वर के मंदिर में जाकर उनके दर्शन किये उन्होंने योग का प्रत्येक भेद योग के बताये अनुसार और इनका रहस्य स्वामी जी को बतलाया। स्वामी जी के अपने शब्दों में 'वहां उन्होंने अपनी प्रतिज्ञा पूरी की और अपने कथानुसार मुझे निहाल कर दिया' उन्हीं महात्माओं के प्रभाव से मुझे क्रिया समेत पूर्ण योग-विद्या भलीभाँति विदित हो गई। इसलिए मैं उनका अत्यन्त कृतज्ञ हूं।"

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

पर्वतीय यात्रा

योगविद्या सीखकर वे आबू पर्वत की यात्रा के लिए चल पड़े। वहाँ सन्त महात्माओं से भेंट हुई और इसी प्रकार भिन्न-भिन्न स्थानों पर जाते हुए और सन्तों-महात्माओं से मिलते हुए वैशाख संवत् १६१२ में होने वाले कुम्भ के महामेले में हरिद्वार आये और गंगा के उस पार चंडी पर्वत के जंगल में योगियों की तलाश में निवास करते रहे। वहाँ से वे ऋषीकेश गये जहाँ उन्हें एक ब्रह्मचारी और दो पहाड़ी साधु मिले। उनके साथ वे टिहरी की तरफ चल पड़े। टिहरी नगर के बाहर उन्होंने स्वच्छ स्थान में अपना निवास बनाया। एक दिन एक राजपंडित ने स्वामीजी के निवास पर जाकर घर पर भोजन के लिए उन्हें सादर आमन्त्रित किया। नियत समय पर उन्हें घर ले गया। परन्तु गृह-द्वार से आगे बढ़ते ही स्वामीजी को अत्यन्त घृणा हो आई क्योंकि उन्होंने देखा कि एक पंडित मांस काट-काटकर पका रहा है। इतने में उन्हें जाते देख गृह-पति स्वागत के लिए आया और आदर से बोला, कृपया बिना संकोच भीतर चले आइये। परन्तु स्वामीजी को वहाँ एक भी क्षण ठहरना मुश्किल हो रहा था। इसलिये यह कहकर कि आप अपना काम करते जाइये, मेरे लिए कुछ कष्ट न कीजिए। वे झट वहाँ से लौट पड़े और अपने निवास पर विश्राम लिया। थोड़े समय बाद गृहपति स्वामीजी के पास फिर आया और बोला, "कृपया चलिए, न जाने आप क्यों वापिस आ गये ? हमने तो आपके निमित्त माँसादि उत्तम-उत्तम भोजन बनाया है। दयानन्दजी बोले—'सब वृथा और निष्फल है क्योंकि आप मांस-भक्षी हैं। मांस का खाना तो दूर रहा, मैं तो उसके देखने से ही रोगी हो जाता हूँ। मेरे योग्य तो केवल फलादि हैं। यदि आप मुझे भोजन कराना ही चाहते हैं तो कुछ अन्य फलादि वस्तुएँ यहाँ भिजवा दीजिए।" गृह-पति अपने किये पर बहुत लज्जित हुआ और बाद में उसने फलादि स्वामीजी के लिए भिजवा दिये। स्वामीजी कई दिनों तक वहीं रहे और गृह-पति के हृदय में उनके प्रति बड़ी श्रद्धा जग गई। स्वामीजी ने उससे प्रसिद्ध दुष्प्राप्य पुस्तकों का पतादि पूछा और बाद में उनसे तन्त्र ग्रंथ ले आने के लिए कहा क्योंकि वे उन्होंने अभी तक नहीं पढ़े थे। वह दे भी गया परन्तु ज्यों ही स्वामीजी उनमें से कुछ पुस्तकों को

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

उठाकर देखने लगे, उनमें अत्यन्त लज्जाजनक ऊट-पटांग बातें लिखी हुई थीं। उन पुस्तकों से उन्हें घृणा हो गई।

हिमालय यात्रा

टिहरी से स्वामीजी श्रीनगर आये। वहीं पास में पहाड़ी पर गंगागिरी नामक एक अच्छे सन्त महात्मा से भेंट हुई और स्वामीजी को उस महात्मा की संगति ऐसी अच्छी लगी कि दो मास से भी अधिक वे उनके साथ बने रहे।

ग्रीष्म ऋतु के प्रारम्भ में गंगागिरीजी से विदा लेकर, केदार घाट, रुद्र प्रयाग आदि होते हुए अगस्त्य मुनि की समाधि पर पहुँचे। वहाँ से शिवपुरी गये जहाँ उन्होंने शरद् ऋतु के चार मास बिताये। वहाँ से वे फिर केदार घाट आये और थोड़े दिन गुप्तकाशी रहकर तीसरी बार गंगागिरीजी का सत्संग सुख पाने के लिए फिर केदार घाट आकर रहने लगे। इन दिनों उनके मन में निकटवर्ती हिम-मंडित हिमालय की पर्वतमालाओं में घूमने की इच्छा पैदा हुई। और यह भी सोचा कि सुनते हैं हिमालय में बड़े सन्त-सिद्ध रहते हैं। उनके भी दर्शन हो जायेंगे। और कुछ दिन तक लोगों से पूछताछ कर जब किसी से कुछ न पता चला तो वह अकेले ही सिद्धों की तलाश में निकले और २० दिन तक घूमकर पीछे लौट आये। उन्हें किसी महात्मा के दर्शन नहीं हुए। जब वे तुँगनाथ की चोटी पर गये वहाँ पर उन्होंने पुजारियों का बहुत बड़ा जमघट देखा। वे वहां से उतर आये और जंगल में जाने लगे। उस सघन अरण्य में नाले जलहीन और बड़े भयानक हो रहे थे। साथ ही आगे जाने का कोई मार्ग तक नहीं दिखाई देता था। ऐसा प्रतीत हुआ मानो किसी भयंकर वन में स्वामीजी घिर गये। दिन में ही रात का-सा अंधेरा था। जब उन्होंने ऊपर वापस चढ़ जाने के लिए देखा तो दिखाई दिया कि जो मार्ग उतरते समय सुगम जान पड़ता था वही अब एक सीधी रेखा के समान खड़ा है इसलिए ऊपर चढ़ना प्राय: असम्भव समझकर, सूखी घास, झाड़ियाँ और टहनियाँ पकड़-पकड़ कर एक नाले के तट पर आ पहुँचे। वहाँ पर एक चट्टान थी उस पर खड़े होकर चारों तरफ देखने लगे परन्तु कहीं कुछ मार्ग इत्यादि नहीं दिखाई दिया। सूर्य अस्त होने लगा था, ठंड पड़ने लगी, वे फिर चले। ऐसे स्थानों में से होकर निकलना पड़ा जहाँ झाड़ियों में उनके वस्त्र उलझकर

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

चिथड़े-चिथड़े हो गये । नुकीले पत्थरों की ठोकरों से और कांटों के चुभने से पाँव में घाव हो गये, खून बहने लगा परन्तु इन सारे कष्टों को सहते हुए वे अन्त में तुँगनाथ की तलहटी में आ गये और साधारण मार्ग उनको मिल गया । निस्तब्ध नीरव रात्रि में बड़ी सावधानी से मार्ग टटोल-टटोलकर चल रहे थे, राह में उनकी कुछ झोंपड़ियाँ मिलीं, पूछने पर पता चला कि वह रास्ता ओखीमठ को जाता है । रात भर चलकर वे वहाँ पहुँच गये ।

ओखीमठ का प्रलोभन

ओखी मठ में रहते हुए स्वामीजी के ज्ञान और गुणों पर उस मठ का मुख्य महन्त मोहित हो गया और चेला बन जाने के लिए उन्हें प्रेरणा करता हुआ बोला—'यदि हमारे शिष्य बन जाओ तो गद्दी के स्वामी बन जाओगे । लाखों रुपये की सम्पत्ति तुम्हारे हाथ में हो जायेगी । तुम महन्त कहलाओगे, इसलिए मान प्रतिष्ठा का भी पार न रहेगा ।" ओखी मठ के महन्त का यह प्रलोभन पूर्ण सूत्र, सामान्य आत्माओं को तो बाँध लेता परन्तु महात्यागी दयानन्द को न बाँध सका । वे बोले 'मेरे पिता की सम्पत्ति आपकी पूजा पाठ के पाखण्ड द्वारा एकत्रित की गई पूँजी से कई गुना अधिक है । जब मैं उसे ही मिट्टी समझकर छोड़ आया हूँ तो आपके धन के लिए मुझे क्या लालच होगा ?" वह महन्त स्वामीजी के मुख से लक्ष्मी के तिरस्कार के वचन सुनकर बोला, "अच्छा बताइये आपका वह उद्देश्य क्या है? स्वामीजी बोले, 'मैं सत्य, योग-विद्या और मोक्ष चाहता हूँ । जब तक यह प्रयोजन सिद्ध न होगा तब तक तपश्चर्या करता हुआ मनुष्य मात्र के कर्त्तव्य और स्वदेशोपकार बराबर करता रहूँगा ।" यह सुनकर महन्त बड़ा प्रसन्न हुआ परन्तु स्वामीजी वहाँ कुछ सार न देख अगले दिन प्रातःकाल ही उठकर जोशी मठ की ओर चल दिये । जोशी मठ पहुँचकर सन्तमहात्माओं से सत्संग द्वारा और वहाँ से बद्री नारायण पहुँचे । वहाँ के मुख्य महन्त उस समय रावलजी थे । स्वामीजी उनके पास कई दिन तक रहे । दोनों के बीच कभी-कभी वेदों और दर्शनों को लेकर बड़ा वाद-विवाद छिड़ जाया करता था । यहाँ स्वामीजी ने दृढ़ संकल्प कर लिया कि इस समस्त प्रान्त में सब जगह घूमकर योगी और महापुरुषों की खोज अवश्य करूँगा ।'

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

अलखनन्दा के तट पर

सूर्योदय के साथ ही एक दिन वे बद्री नारायण को चल पड़े और चलते चलते अलखनन्दा नदी के तट पर जा पहुँचे। अलखनन्दा का जल शिलाओं से टकराकर चक्कर खाकर गिर रहा था और बड़े वेग से नीचे को दौड़ा चला जा रहा था। उसके साथ-साथ उसके स्रोत की ओर वे बढ़ रहे थे। मार्ग वड़ा वीहड़ और विषम था। बहुत कठिनता से अन्त में वे नदी के निर्गम स्थान तक जा पहुंचे। दूसरी ओर जाने के लिए उन्होंने उस नदी को पार करने का संकल्प किया। स्वामीजी के शरीर पर बहुत ही थोड़े कपड़े थे। ठंडी हवा तीर की तरह शरीर में लग रही थी। भूख, प्यास अलग सता रही थी। स्वामीजी ने बरफ का एक टुकड़ा लेकर चवाया पर उससे भी कोई शांति नहीं हुई।

मौत के मुंह में

साहस के साथ नदी पार करने में प्रवृत्त हुए। उस जगह अलखनन्दा कहीं तो बहुत गहरी थी और कहीं एक-दो हाथ गहरी। उसका पाट आठ-दस हाथ का था। बरफ के छोटे-छोटे तिरछे और नुकीले टुकड़ों से भरी नदी को पार करते समय नुकीले टुकड़े स्वामीजी के नंगे पाँव पर बराबर चोट कर रहे थे। इससे उनके पैरों के तलवे छिल गये। उँगलियों में घाव हो गये और जगह-जगह से खून निकलने लगा। अत्यन्त ठण्ड के कारण पाँव ऐसे सन्न हो गया कि उन्हें उन घावों का भान ही नहीं हुआ। धीरे-धीरे महाराज की काया पर शून्यता छाने लगी। हृदय की भी चेतनता दूर पड़ने लगी। यहाँ तक कि वे शून्य अवस्था में मूर्छा खाकर उस बरफीले पानी में गिरने को ही थे कि साहस की बिजली सी उनके मन में कौंध गई और वे संभल गये। सावधान होकर बलपूर्वक नदी से बाहर निकले और दूसरे तट पर जा पहुँचे। वहाँ भी उनकी अवस्था कुछ समय तक मृत-तुल्य बनी रही। थोड़ी देर बाद उन्होंने अपने शरीर के ऊपर के सारे कपड़े उतारकर पाँव से लेकर घुटनों तक का सारा भाग उनसे लपेट लिया। ऐसी निराशामय परिस्थिति में जब आगे बढ़ने का कोई मार्ग नहीं सूझ रहा था, स्वामीजी को दो पहाड़ी आदमी सामने से आते दिखाई दिये। उन्होंने स्वामीजी को अपने साथ चलने का बड़ा आग्रह

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

किया । परन्तु स्वामीजी चलने में बिल्कुल असमर्थ थे । बोले "खेद है कि मैं आपकी इस कृपापूर्ण सहायता को स्वीकार नहीं करता क्योंकि मुझमें चलने की थोड़ी भी शक्ति नहीं है । वे दोनों पहाड़ी आदमी अति खेद के साथ वहाँ से चल पड़े और थोड़ी ही देर में स्वामीजी की दृष्टि से ओझल हो गये ।

काफी देर तक वहीं विश्राम कर लेने से स्वामीजी का शरीर स्वस्थ और मन शान्त हो गया । वहाँ से वे वसुधारा तीर्थ स्थान पर जा पहुँचे और वहाँ से लौटकर रात के ८ बजे बद्री नारायण वापिस आये । रावलजी के पूछने पर उन्होंने सारी घटना कह सुनाई । उन्होंने स्वामीजी को भोजन आदि कराया । रात भर सुखपूर्वक विश्राम करके अगले दिन सवेरे सम्मानपूर्वक रावलजी से विदा लेकर रामपुर को चल पड़े । चलते-चलते उसी शाम एक योगी के स्थान पर आ निकले । वह उच्च कोटि का ऋषि माना जाता था । स्वामीजी ने भी महापुरुष के पास ही रात्रि में विश्राम लेना उचित समझा । स्वामीजी बड़ी देर तक योगीराजजी से वार्तालाप करते रहे और उनसे बात-चीत करके उनका संकल्प और भी दृढ़ हो गया । जंगल और पर्वतों से होते हुए वे रामपुर आ पहुँचे । वहाँ उन्हें एक महात्मा मिले । स्वामीजी ने उन्हीं के पास अपना आसन लगाया । उन्होंने उस महात्मा की प्रकृति में एक विचित्र बात देखी । वह सारी रात जागता रहता था और ऊँचे-ऊँचे बात करने लगता था । कभी चिल्लाने लगता कभी ऊँची ध्वनि से रोने लगता । कौतूहलवश जब स्वामीजी वहाँ देखने गये तो वहाँ उन्हें दूसरा कोई भी नजर नहीं आया । अगले दिन महात्मा जी के चेलों से पूछने पर पता चला कि गुरुजी महाराज का स्वभाव ही ऐसा करने का है । अंत में उन्होंने महात्मा जी से जा पूछा और कई बार एकांत में चर्चा की तो स्वामीजी को पता चला कि यह पूर्ण योगी नहीं है ।

गंगा तट पर

बाद में रामपुर से चलकर स्वामीजी काशीपुर होते हुए द्रोण सागर आये और उन्होंने सारा शरद्ऋतु वहीं बिताया । द्रोण सागर से स्वामीजी मुरा-दाबाद, संभल, गढ़मुक्तेश्वर होते हुए गंगा तट आ पहुँचे । उस समय उनके पास कुछ हठयोग की पुस्तकें थीं । उनमें नाड़ी चक्र का बड़ा विस्तृत वर्णन

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

था। स्वामीजी को उनकी बातों में हमेशा संदेह रहा करता था। दैवयोग से गंगा तट पर विचरते हुए एक दिन उन्होंने जल में एक शव बहता देखा। उन्होंने पुस्तक को नदी तट पर रख दिया और कपड़े संभाल कर गंगा की धारा में कूद पड़े और तुरन्त बहते हुए शव को लेकर किनारे ले आये। एक तेज चाकू निकाला और लगे शव को चीरने। सावधानी से चीर कर पहले हृदय निकाला। उसकी आकृति, स्वरूप और लम्बाई-चौड़ाई को पुस्तकों में लिखे वर्णन के साथ देर तक मिलाते रहे। इसी प्रकार सिर, गर्दन और आँखों की भी तुलना की। नाभि आदि चक्रों का भी परीक्षण किया। परन्तु उन पुस्तकों में वर्णित चक्रों और अंगों में उन्होंने वास्तविक चक्रों और अंशों से लेशमात्र भी मेल खाते नहीं देखा। स्वामीजी को उनकी असत्यता का पूरा निश्चय हो गया। सारी पुस्तकें शव के साथ ही बांधकर गंगा में प्रवाहित कर दीं।

इसी प्रकार गंगा के साथ चलते-चलते फर्रूखाबाद, कानपुर, प्रयाग, विंध्याचल और काशी होकर चंडालगढ़ आये और वहाँ दुर्गाकुण्ड के मंदिर में १० दिन तक रहे। वहाँ उन्होंने चावल खाना सर्वथा छोड़ दिया और केवल दूध पर ही निर्वाह करने का संकल्प किया।

नर्मदा तट पर

चंडालगढ़ से चलकर स्वामीजी ने नर्मदा नदी का स्रोत देखने की इच्छा से यात्रा आरम्भ की। किसी से भी मार्ग आदि कुछ भी न पूछते हुए चुपचाप दक्षिण की ओर चलते चले जा रहे थे। इसी प्रकार चलते हुए रास्ते में घना जंगल मिल गया। उसमें बहुत दूर कुछ झोपड़ियाँ-सी दिखाई दीं। स्वामीजी को भूख तो लग ही रही थी वे एक झोपड़ी में गये और कुछ दूध ग्रहण किया। वहाँ से आगे चलकर कोई पौन कोस पहुँचे होंगे कि रास्ता बन्द हो गया। कुछ छोटी-छोटी पगडंडियाँ थीं उनमें से एक पर स्वामीजी चल पड़े। थोड़ी दूर जाकर वे एक भयानक जंगल में फंस गये। वहाँ बेरी के बहुत से पेड़ थे। घास बड़ी लम्बी और घनी थी। कुछ देर वहाँ खड़े होकर सोच रहे थे कि किधर जाऊं, अचानक एक काला रीछ बड़ी तेजी से दौड़ता चला आता सामने दिखाई दिया। रीछ अपने पिछले पाँव पर खड़ा होकर मुंह खोलकर स्वामीजी को

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

खाने के लिए आगे लपका। जैसे ही स्वामीजी ने अपना सोटा रीछ की ओर बढ़ाया, उस डंडे को देखकर वह वहाँ से उलटे पांव भाग खड़ा हुआ। भालू का चिंघाड़ना सुनकर जिन झोपड़ियों में स्वामीजी ने दूध पिया था वहां के लोग शिकारी कुत्ते लेकर घटना स्थल पर आ गये। स्वामीजी को सुरक्षित देख प्रसन्न हुए और उनसे वापिस चलने का आग्रह करने लगे। बड़े स्नेह और आदर के साथ स्वामीजी ने उनकी बातें सुनीं परन्तु उन्होंने तो नर्मदा का स्रोत देखने का दृढ़ संकल्प कर लिया था। उनके साथ नहीं गये। जैसे-जैसे नर्मदा के स्रोत की ओर वे बढ़ते जाते थे। कांटे झाड़ियाँ उनके मार्ग में बाधा-सी खड़ी होती जा रही थीं। कहीं वे घुटने के सहारे सरककर और पेट के बल रेंगकर भी चले। अनेक बार उनके पांव छिल गये, तलवे लहू से लाल हो गये, शरीर में अगणित कांटे चुभने से खून बहने लगा, कहीं-कहीं मांस की बोटियां तक उड़ गईं परन्तु धुन में पक्के स्वामीजी सारी विघ्न बाधाओं को पार करके अन्त में विजयी हुए। ज्यों ही कुछ आगे गए तो टिमटिमाते दीपक दिखाई पड़े। पास जाने पर स्वामीजी को गोबर के ढेर से घिरी हुई झोपड़ियाँ दिखाई दीं। वहीं एक स्वच्छ जल-धारा बह रही थी उसके पास ही स्वामीजी ने एक विशाल वृक्ष के नीचे विश्राम के लिए स्थान बनाया। रात भर सुख से सोने के बाद सवेरे नित्य कर्म से निवृत्त होकर नदी जल से अपने घावों को धोया और हाथ-पैर धोकर वे विश्राम के लिए गये।

थोड़ी देर बाद वहीं श्रद्धालु भक्त ने हाथ जोड़कर स्वामीजी से भोजन की प्रार्थना की और जब स्वामीजी ने कहा कि मैं अन्न ग्रहण नहीं कर रहा। उस मुखिया ने उनका तूंबा मांगकर भरकर दूध भिजवा दिया। साथ ही दो पुरुष स्वामीजी की रक्षणार्थ रात-भर वहीं रखे। स्वामी जी रात-भर अच्छी तरह सोये और अगले दिन सन्ध्योपासना करके फिर यात्रा आरम्भ कर दी। इसी प्रकार तीन वर्ष तक नर्मदा तीर पर पर्यटन करते रहे। इतने में उन्होंने दण्डीस्वामी श्री विरजानन्दजी का विमल यश सुना, और ज्ञान प्राप्त करने की इच्छा से मथुरा आ पहुँचे।

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

गुरु-शिष्य मिलन

संवत् १९१४ (सन् १८५७) की भारी सैनिक हलचल लगभग शांत हो गई थी और उसकी चिनगारियाँ केवल इधर-उधर ही दिखाई दे रही थीं कि ऐसे समय में कार्तिक सुदी २ संवत् १९१७ को स्वामी दयान्द सरस्वती मथुरा में प्रविष्ट हुए और सीधे दण्डीजी की अट्टालिका पर चढ़कर उनकी दीवार खटखटाने लगे। दण्डीजी ने पूछा—"कौन है ?" उत्तर मिला—"यह तो जानने की इच्छा है कि मैं कौन हूँ।" "कुछ व्याकरण भी पढ़े हो ?" उत्तर था–महाराज सारस्वत आदि व्याकरण ग्रंथ पढ़ा हूँ।" दण्डीजी ने द्वार खोल दिया। स्वामी जी ने सम्मान और विनय के साथ विरजानन्दजी को नमस्कार किया और उनका निर्देश पाकर पास ही बैठ गये। दण्डीजी ने फिर कहा—"दयानन्द अब तक जो कुछ तुमने पढ़ा है उसका अधिकाँश भाग अनार्ष ग्रंथ हैं। ऋषि शैली बड़ी सरल और सुन्दर होती है परन्तु लोग सहारा नहीं लेते। जब तक तुम अनार्ष पद्धति का परित्याग नहीं करोगे, आर्ष ग्रंथों का महत्व और मर्म समझ में नहीं आयेगा। यदि तुम मुझसे पढ़ना चाहते हो तो इन सारे ग्रंथों को यमुना को समर्पित कर आओ और उन सब मनुष्यकृत ग्रंथों को भूल जाओ।" स्वामीजी ने दण्डीजी के इस प्रथम आदेश को प्रसन्नतापूर्वक स्वीकार कर लिया। दण्डीजी ने जब भोजन के प्रबन्ध की बात उठाई स्वामीजी बोले महाराज आप पढ़ाना आरम्भ कर दीजिए। शेष विषय में प्रबन्ध मैं जल्दी ही ..र लूंगा। दण्डीजी की प्रेरणा से सारे नगर में चन्दा करके स्वामीजी के लिए ३१ रु० के महाभाष्य मंगवाये गये। मथुरा वास के प्रथम दिनों में, उन दिनों घोर अकाल पड़ जाने के कारण, स्वामीजी बहुत दिनों तक चने खाकर ही अध्ययन करते रहे। बाद में मथुरा के प्रसिद्ध ज्योतिषी श्री अमरलाल नामक एक आदर्श दानी ने स्वामी जी से भेंट की और उनकी अद्भुत प्रतिभा, विलक्षण बुद्धि, देह और ब्रह्मचर्य की ओजस्विता से प्रदीप्त मुख मण्डल को देखककर वे उनकी ओर आकर्षित हुए और अपने ही वंशीय जानकर उन्होंने प्रतिदिन अपने यहाँ ही भोजन करने का स्वामीजी को आग्रह किया। स्वामीजी ने निमन्त्रण स्वीकार कर लिया और इस प्रकार भोजन के विषय में सर्वथा निश्चित हो गये। इसी तरह

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

व्याकरण-सूर्य : दण्डी स्वामी विरजानन्दजी

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

रात को तेल खर्च का प्रबन्ध एक और दानी महानुभाव ने कर दिया। दूध का प्रबन्ध भी दो रुपये महीने के हिसाब से मथुरा के दानी श्री हरदेवजी ने कर दिया। निवास के लिए विश्राम घाट के ऊपर लक्ष्मीनारायण मन्दिर के नीचे की एक छोटी-सी कोठरी उन्होंने ले ली थी। वह इतनी छोटी है कि स्वामीजी महाराज मुश्किल से ही पांव पसारकर सो सकते होंगे। उन दिनों स्वामीजी मस्तक पर विभूति रमाया करते थे। गले में रुद्राक्षी माला हुआ करती थी। सिर पर एक अंगोछा बांधे रहते थे और हाथ में लम्बा और मोटा दण्ड हुआ करता था। बहुत सवेरे ही उठकर स्नानादि करके संध्योपासना में मग्न हो जाते। आसनादि व्यायाम करते, दूर तक भ्रमण करने जाते। इतना सब करने के साथ ही अध्ययनार्थ गुरु सेवा में उपस्थित हो जाने में वे बड़े नियमबद्ध थे।

गुरु-भक्ति

गुरु-भक्ति में स्वामी दयानन्दजी ने अपने आपको एक आदर्श शिष्य सिद्ध किया था। विरजानन्दजी महाराज ब्राह्ममुहूर्त में ठंडे पानी से स्नान किया करते थे और पानी भी काफी अधिक होता था। स्वामी दयानन्द काफी रात रहते ही उठकर गुरु स्नान के समय के पहले ही यमुना जल के कई घड़े अपने कंधे पर उठा-उठाकर लाते और पर्याप्त जल इकट्ठा कर देते थे। सायंकाल के स्नान के लिए भी नियमपूर्वक स्वामीजी पानी लाते थे। दंडीजी के पीने के लिए यमुना के भीतर प्रवेश करके स्वच्छ पानी लाया करते थे। आंधी, वर्षा, कीचड़ कांटे किसी ने भी दयानन्दजी को इस सेवा से विरत नहीं किया। लगभग पन्द्रह-बीस घड़े जल उनको रोजाना ले जाना होता था। वे साधु स्वभाव और सरल प्रवृत्ति के थे। आदेश पालन, सेवा सुश्रूषा और चमत्कारिणी प्रतिभा के कारण दयानन्द गुरुदेव के पूर्ण कृपापात्र हो गये थे।

विस्मृत पाठ

एक दिन की बात है अष्टाध्यायी का एक प्रसंग इतना कठिन आया कि उन्हें अपने निवास स्थान पर जाकर वह भूल गया। पहले ऐसा कभी नहीं होता था। स्वामीजी को बहुत खेद हुआ। अन्त में गुरुजी से आकर विस्मृत

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

प्रसंग पूछना चाहा । विरजानंदजी ने कभी पाठ बार-बार नहीं बताया। दण्डीजी क्रुद्ध होकर झिड़ककर बोले, "जाओ याद करके आओ। यहाँ एक ही पाठ को पढ़ाने के लिए नहीं बैठे।" दो-तीन दिन तक स्वामीजी गुरुजी से प्रार्थना करते रहे परन्तु विरजानन्दजी ने दुबारा नहीं बताया और बहुत खीझ कर बोले, "हमने एक बार तुम्हें कह दिया है कि जबतक पहले का पढ़ा हुआ पाठ नहीं सुना दोगे तुम्हारा पाठ आगे नहीं चलेगा। अब यदि वह प्रसंग तुम्हें स्मरण नहीं आवे तो जमुनाजी में भले ही डूब मरना, मेरे पास न आना।" स्वामीजी ने दण्डीजी के चरण पकड़ लिये और वहाँ से चले आये। विश्राम घाट के समीप वे तपस्या में लीन से होकर प्रसंग याद करने लगे और संकल्प कर लिया कि यदि प्रसंग स्मरण न आया तो यहीं से जमुनाजी में कूद पडूंगा। देश, काल, अपनी देह सब कुछ भुलाकर एकाग्र मन हो ऐसे उस प्रसंग में लीन हुए एक स्वप्नावस्था सी हो गई और ऐसा मालुम पड़ा कि मानो कोई व्यक्ति उन्हें प्रसंग पूरा का पूरा बतला रहा है। जब वे सारा प्रसंग सुन चुके और सचेत हो गये तो ऐसा लगा कि मानो अभी सोकर उठे हैं। स्वामीजी की प्रसन्नता की सीमा न रही। दौड़े-दौड़े गुरुचरणों में आये और प्रारम्भ से अंत तक सारा प्रसंग गुरुजी को सुना दिया। स्वामीजी की धारणा और धैर्य को देख विरजानंद भी प्रेम से पुलकित हो गये। उनकी आँखों में खुशी के आंसू डबडबा आये। बड़ी वत्सलता से उन्होंने स्वामीजी को गले लगा लिया और बहुत आर्शीवाद दिये। इस घटना ने स्वामीजी में एक नई शक्ति पैदा कर दी। जब कभी कोई बात उनके लिए दुर्बोध हो जाती वे इसी प्रकार समाधिस्थ होकर उसको प्रत्यक्ष कर लिया करते थे। इस समय स्वामीजी की अवस्था ३६ वर्ष की थी। मुख मण्डल बड़ा द्वीप्त था। अखण्ड ब्रह्मचर्य के कारण एक आकर्षण था। इतनी ओजस्विता उनमें थी कि किसी का भी साहस उनसे उपहास करने का नहीं होता था। बाजारों में जाते, गलियों में जाते, घाट पर भी कई बार पानी लेने जाते और इन स्थानों में सैकड़ों स्त्रियाँ इधर-उधर आती-जातीं थीं परन्तु ढाई वर्ष के निवास काल में कभी किसी ने उन्हें किसी स्त्री की ओर आंख उठाते नहीं देखा। वे सदा नीची दृष्टि रखकर चला करते थे। इस वृत्ति का मथुरा की जनता पर बड़ा ही प्रभाव था।

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

स्त्री स्पर्श और एकान्त वास

एक दिन की बात है श्री स्वामीजी यमुना तट पर रेती में ध्यान मग्न बैठे थे। एक स्त्री स्नान करके आई, उसने देखा कि सामने एक परमहंस पद्मासन लगाये समाधिस्थ हैं। श्रद्धामयी देवी ने भक्ति भाव से अति निकट आकर स्वामीजी के चरणों पर सिर रखकर नमस्कार किया। भीगे हुए ठंडे कपड़ों के स्पर्श का अनुभव करके स्वामीजी ने जैसे ही आंखे खोलीं उन्होंने पैरों पर एक मां को देखा। वे चौंक पड़े और माता कहते हुए सहसा उस स्थान से उठ गये। स्वामीजी कभी भी स्त्रीस्पर्श नहीं किया करते थे परन्तु उस दिन एक देवी ने ध्यान दशा में उनके पांव पर सिर रख दिया। इसी से वे वहाँ से उठ गोवर्धन की ओर जाकर निर्जन एकान्त स्थान में स्थिति एक टूटे-फूटे मन्दिर में तीन दिन और तीन रात निराहार रहकर चिन्तन में लीन रहे। चौथे दिन पाठ के लिए गुरु सेवा में उपस्थित होने पर जब दंडीजी ने तीन दिन न आने के लिए उनकी भर्त्सना की और कारण पूछा तो स्वामीजी ने प्रायश्चित की कथा आदि से अन्त तक गुरु चरणों में निवेदन कर दी। अपने आदर्श शिष्य की व्रत वार्ता को सुनकर दंडी जी को रोमांच हो आया। उनको साधुवाद दिया और बहुत प्रशंसा की।

गुरु विरजानन्द से शिक्षा ग्रहण करते हुए : शिष्य दयानन्द

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

गुरुजी का कोप

यदि कभी श्री दंडीजी पठन-पाठन में किसी कारण से क्रुद्ध हो जाते और आवेश में स्वामीजी को ताड़ना आदि भी कर देते तो वे गुरुजी के कोप को उनकी कृपा ही समझते थे। उससे चिड़ते नहीं थे। एक दिन की बात है स्वामी विरजानन्दजी ने आवेश में आकर दयानन्दजी पर लाठी का ऐसा प्रहार किया कि उनकी भुजा पर कड़ी चोट आई परन्तु पीड़ा की कोई परवाह न कर उन्होंने गुरुजी से प्रार्थना की कि महाराज मेरा शरीर कठोर है और आपके हाथ कोमल हैं। मारने से आपको दुःख हुआ होगा इसलिए मुझे मारा न कीजिये। उस दिन के घाव का चिह्न उनकी भुजा पर जीवन भर बना रहा। वे उसे जब भी देखते थे गुरुजी के उपकारों का उन्हें स्मरण हो आता था। दण्डीजी की शिष्य मण्डली में एक आभावान् विद्यार्थी था जिसका नाम था नैनसुख। उसकी धारणा शक्ति बड़ी प्रबल थी। वह दण्डीजी की दया का विशेष पात्र था। अपनी उज्जवल मेधा से उसने सुनते-सुनते ही अष्टाध्यायी और महाभाष्य कंठाग्र कर लिये थे जबकि वह पढ़ा कुछ भी नहीं था। संस्कृत में बोलने का शक्ति भी उसे मिल गई थी। स्वामी दयानन्दजी से उसका बड़ा प्रेम था। एक दिन ऐसा हुआ कि शिक्षण देते समय दण्डीजी कुछ क्रुद्ध हो गये। भर्त्सना की और स्वामीजी को एक लाठी भी लगाई। स्वामीजी तो पहले की तरह अपने पारायण में लगे रहे परन्तु नैनसुख से न रहा गया। हाथ जोड़कर दण्डीजी से उसने निवेदन किया, "स्वामीजी महाराज यह दयानन्द हमारे जैसा कोई सामान्य गृहस्थ नहीं है। ये संन्यासी हैं। इनको तो न बुरा कहना चाहिए न मारना।" दण्डीजी ने उनकी बात सुनकर कहा, 'बहुत अच्छा, आगे से हम इन्हें आदर और प्रतिष्ठापूर्वक पढ़ायेंगे।" पाठ समाप्त होने पर स्वामीजी नैनसुख से बोले, "तुमने गुरुजी से मेरे लिए क्यों कुछ कहा ? उनका हमारे साथ कोई द्वेष थोड़े ही है। ये मारते हैं तो हित-बुद्धि से प्रेरित होकर ही तो मारते हैं।"

गुरु ने निकाल दिया

एक समय की बात है दण्डीजी का कोई दूर का सम्बन्धी मथुरा आया। उसे दण्डीजी से मिलने की बड़ी इच्छा थी। परन्तु दण्डीजी ने यह कह रखा

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

था कि सिवाय विद्यार्थियों के कोई अन्य व्यक्ति उनके स्थान पर न आये। संबंधी को बड़ी मुश्किल हुई। एक दिन कहीं मार्ग में स्वामी दयानन्दजी से उसकी भेंट हुई। उसने बड़े विनय से गुरुजी से मिलाने की प्रार्थना की। स्वामीजी ने बहुत समझाया कि यदि मैं तुम्हें अपने साथ ले चलूंगा तो वे मुझपर वे अत्यन्त अप्रसन्न हो जायेंगे। परन्तु उस आगन्तुक ने उनके पैर पकड़ लिए और बोला आप उनकी अप्रसन्नता सह लीजिए पर मुझे दर्शन जरूर करा दीजिए। दयानन्दजी स्वभाव से ही बड़े दयालु थे। उसे अपने साथ कुटिया में ले आए। थोड़ी देर तक संबंधी चुप खड़ा रहकर दंडीजी के दर्शन करता रहा और अन्त में स्वामीजी का संकेत पाकर धीरे-धीरे चला गया। स्वामीजी भी उसके साथ विश्राम घाट पर जाने के लिए वहाँ से उतर आए। दोनों उतर ही रहे थे कि स्वामीजी का एक साथी मार्ग में मिल गया। उसने आकर दंडीजी से शिकायत कर दी-—"महाराज आज दयानन्द के साथ आपके पास जो व्यक्ति आया था वह कौन था ? कपड़ों से पंजाबी लगता था।' दंडीजी यह जानकर कि उनके पास कोई चुपचाप आया फिर लौट गया, बड़े क्रुद्ध हुए। स्वामी दयानन्द के आने पर उन्हें बहुत झिड़कियाँ दीं, बोले, "तूने मुझको नेत्रहीन जानकर ऐसा किया। चले जाओ यहाँ से तुम्हारे लिए दरवाजा बन्द कर दिया गया है।" स्वामीजी गुरुजी के पैर पकड़ कर क्षमा मांगने लगे पर कोई सुनवाई नहीं हुई। अन्त में नैनसुख के बहुत आग्रह करने के बाद बहुत दिनों पश्चात् दंडीजी का दरबार स्वामीजी के लिए खुला।

दंडीजी का दरबार एक दिन और उनके लिए बन्द हो गया। एक दिन दयानन्दजी ने गुरुजी की बैठक में झाड़ू देकर कूड़ा एक कोने में इकट्ठा कर दिया और झाड़ू रखकर कूड़ा फेंकने के लिए कोई चीज ढूंढ़ने लगे। इतने में श्री दंडीजी टहलते हुए उधर आ निकले और उनका पैर कूड़े पर पड़ गया। स्वामीजी को आलसी, अनुद्यमी, प्रमादी आदि बातें कहकर उन्होंने स्वामीजी के लिए दरवाजा बन्द कर दिया। उस समय उनका अध्ययन समाप्त होने में थोड़ा समय ही बच रहा था। स्वामीजी नन्दन चौबे और नैनसुख के पास गए और बोले, "गुरुजी वास्तव में कुपित तो नहीं हैं फिर भी कुछ आवेश में आकर उन्होंने मेरा आना-जाना बन्द कर दिया है। अब मेरी विद्या समाप्ति के दिन भी आ रहे हैं। मैं नहीं चाहता कि मेरे बारे में गुरुजी की उदासीनता बनी

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

रहे। आप दोनों साथ चलकर मेरा अपराध क्षमा करा दीजिये।" दोनों को साथ लेकर स्वामीजी महाराज दंडीजी के पास आए और उनका पैर पकड़कर अपराध के लिए क्षमा मांगने लगे। दंडीजी का क्रोध दूध के उबाल-सा था। वे तुरन्त शांत भी हो जाते थे। स्वामीजी पर तत्काल ही प्रसन्न भी हो गए।

गुरु-दक्षिणा

दयानन्दजी की तर्क शैली पर विरजानन्दजी बहुत मोहित थे। उन्होंने उनको 'कालजिह्व' नाम दिया हुआ था। विरजानन्दजीके अन्य शिष्यों की तर्क शक्ति प्रबल नहीं थी। दंडीजी जैसे पढ़ाते सुनते चले जाते थे, परन्तु जब दयानन्द अध्ययन करने आते तो बीच में बराबर प्रश्नोत्तर छिड़ जाते. तर्क की झड़ी लग जाती और युक्ति-प्रतियुक्तियों का तार बंध जाता था। गुरुजी प्राय: कह दिया करते थे, "दयानन्द आज तक मैंने बहुत से विद्यार्थियों को पढ़ाया परन्तु जो आनन्द तुम्हें पढ़ाने में आता है वह अन्य किसी को भी आजतक पढ़ाने में नहीं आया।" दंडीजी अपने प्रेम के पुनीत पात्र दयानन्द को पाठ काल के अतिरिक्त समय देकर और भी बहुत सारे रहस्य समझाया करते थे। एकान्त समय में गुरु-शिष्य में देर तक बातचीत होती रहती थी। उसमें प्राय: गूढ़ तत्वों की ही चर्चा चला करती थी। इस प्रकार इस अध्ययन काल में स्वामी विरजानन्दजी महाराज ने अपने अन्त:करण में संचित किए गए सभी रत्न श्री स्वामीजी को सौंप दिए और वे अति सन्तुष्ट हुए। ढ़ाई वर्ष तक गुरु चरणों में स्वामीजी ने अष्टाध्यायी, महाभाष्य, वेदान्त सूत्र और अनेक पुस्तकों का अध्ययन किया। अब उनकी इच्छा हुई कि गुरु महाराज की आज्ञा लेकर देशाटन करें। पर चलने से पहले कोई दक्षिणा तो देनी चाहिए न। क्या दें? न तो दंडीजी ही द्रव्य कुछ लेते थे और न स्वामी दयानन्द के पास कुछ था ही। वे कुछ लौंग ले गए। और चरणों में रखकर के नमस्कार करके बोले, "महाराज आपने मुझ पर असीम कृपा करके मुझे विद्या का दान दिया है उसके लिए मेरा रोम-रोम आपका धन्यवाद करता है। आज आपका आज्ञाकारी प्रिय शिष्य आपसे आज्ञा लेकर देशाटन के लिए जाना चाहता है। इस सेवक के पास ऐसी कोई वस्तु नहीं जो आपको भेंट की जाए। ये थोड़े से लौंग हैं जो सम्मानपूर्वक श्री-सेवा में समर्पित हैं।"

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

जीवन दान

सच्चे गुरुओं के लिए सच्चे शिष्य पुत्र से भी अधिक प्रिय हुआ करते हैं और दण्डी के तो कोई सन्तान भी नहीं थी इसलिए उनके लिए तो शिष्यों से ज्यादा कुछ था ही नहीं। बड़े वात्सल्य के साथ शिष्य के सिर को स्पर्श करते हुए दंडीजी बोले, "वत्स मैं तुम्हारे लिए मंगल कामना करता हूँ। ईश्वर तुम्हारी विद्या को सफल करे परन्तु दक्षिणा में यह लौंग नहीं कुछ और मांगना चाहता हूँ जो तुम्हारे पास है।" स्वामीजी बोले—"यह सेवक आपके चरणों का दास है जो भी आदेश होगा आजीवन निभाऊंगा।" यह सुनकर दंडीजी का रोम-रोम हर्षित हो गया और वे बोले, "वत्स ! भारत देश में दीन-हीन जन अनेक दुःख पा रहे हैं जाओ उनका उद्धार करो। मत-मतान्तरों के कारण प्रचलित कुरीतियों का निवारण करो। आर्य जनता की बिगड़ी हुई दशा सुधारो। आर्य सन्तान का उपकार करो। ऋषि शैली प्रचलित करके वैदिक ग्रंथों के पठन-पाठन में लोगों में प्रवृत्ति पैदा करो। लोक हित की कामना से क्रियात्मक जीवन बिताओ। प्रिय पुत्र ! गुरु दक्षिणा में मुझे यह वस्तु दान करो अन्य किसी संसारिक पदार्थ की मुझे चाह नहीं है। "दयानन्दजी ने गुरुदेव के एक-एक वचन को नत-शिर स्वीकार किया और स्वामी दयानन्द सरस्वती गुरूजी का आशीर्वाद पाकर गुरुजी के चरण-कमलों का प्रगाढ़ आलिंगन करके वहाँ से विदा हुए और आगरे जाने की तैयारी करने लगे। चलते समय शिष्य को दंडीजी ने जो अन्तिम बात कही वह यह थी, "दयानन्द! स्मरण रखना, मनुष्य कृत ग्रंथों में परमात्माओ और ऋषि मुनियों की निन्दा भरी पड़ी है परन्तु आर्ष ग्रंथों में इस दोष का लेशमात्र भी नहीं है। आर्ष और अनार्ष ग्रन्थों की यही बहुत बड़ी कसौटी है, इसे तुम कभी न छोड़ना।" संसार वेदों को भूल चुका है जाओ सर्वत्र वेद-ज्ञान फैलाकर मेरे स्वप्न पूर्ण करो।

सच्चे शिष्य दयानन्द ने अपने गुरू के ऋण को प्राण देकर भी उतारा। धन्य हैं ऐसे शिष्य और पूज्य हैं ऐसे गुरू। :

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

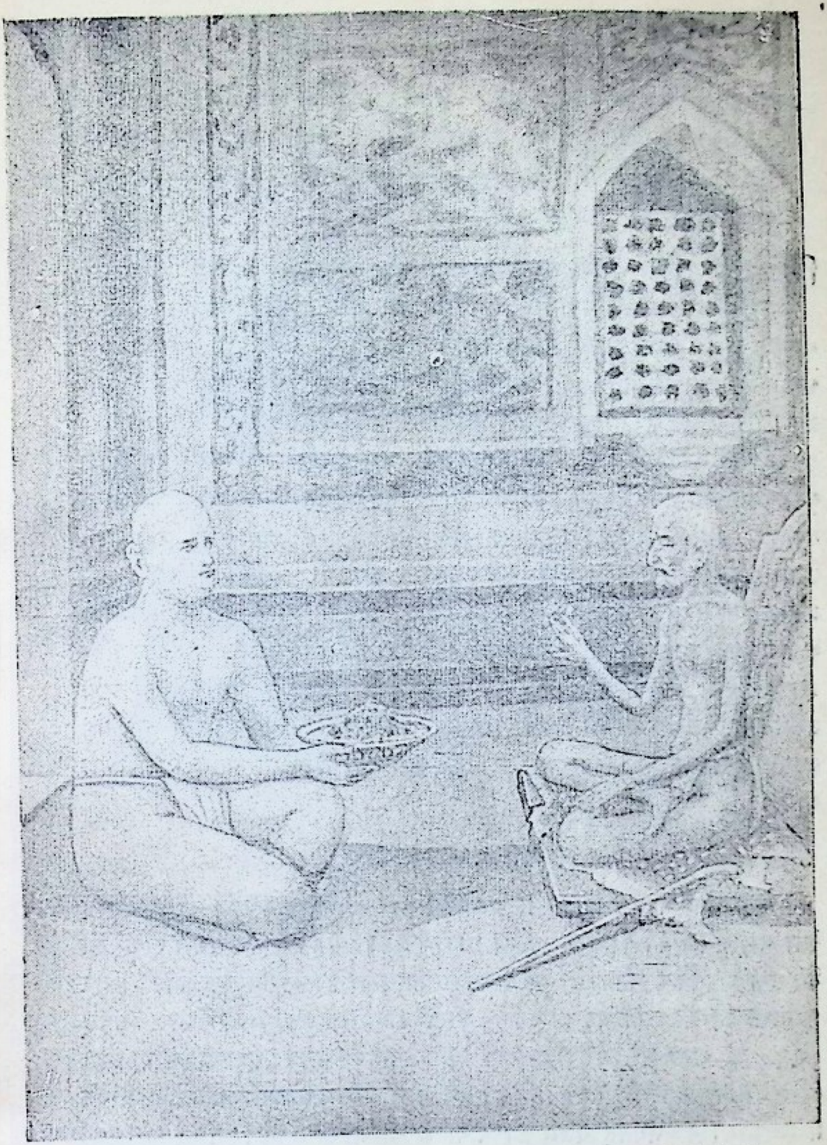

दयानन्द ! मुझे गुरु-दक्षिणा में लौंग नहीं चाहिएँ। गुरु-दक्षिणा देनी है तो···
संकल्प करो कि तुम 'वेद' ज्ञान का प्रकाश संसार में फैला कर अविद्या-अन्धकार समाप्त करोगे.........

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

कार्य क्षेत्र में अवतरण—२

जिस समय गुरू से आशीर्वाद लेकर दयानन्दजी ने कार्य क्षेत्र में पांव रखा, भारत देश अज्ञान, पराधीनता, शत्रु और अन्य दु:खों के कारण अत्यन्त व्याकुल था। हिन्दू अनेक सम्प्रदायों में बंटे हुए थे और सभी सम्प्रदायों में आपस में बहुत भिन्नता थी। इस प्रकार भारत का प्राचीन आर्य धर्म, धर्म-हीन और केवल अनाचारमय था। धर्म की प्रेरिका शक्ति समाप्त हो चुकी थी। दूसरी ओर यूरोपियन जातियाँ शिकार के लिए अपनी बाहें फैला रही थीं। यूरोपियन जातियां अपने साथ दो चीजें लाईं, ईसाइयत और पाश्चात्य सभ्यता। दूसरी तरफ इस्लाम का भी बड़े जोरों में प्रचार हो रहा था। उसमें अकबर आदि की नीतियों के कारण और भी तीव्रता आ गई। इस प्रकार एक तरह से इस्लाम और ईसाइयत दोनों ही भारत देश को निगलने के लिए प्रयत्नशील थे और ईसाइयत के कीटाणु तो हवा और पानी के साथ इस शरीर में प्रवेश कर रहे थे। ब्रह्म समाज आदि जो नये समाज आये उन्होंने इसका अनुभव तो किया परन्तु रोकने का जो यत्न किया वह यह था कि ईसाइयत के कीटाणुओं से युक्त जल को थोड़ा सा स्वादु बना दिया जाये।

आगरे में प्रचार

ऐसी दशा में जब कि कांटों और झाड़ियों के सिवाय कुछ नहीं दिखाई देता था, जंगल की राहों में कांटों और झाड़ियों में उलझ-उलझकर परीक्षा में सफल होकर निकले हुए तेजस्वी दयानन्द ने इन विषाक्त कांटों और झाड़ियों का भी सफाया करने का बीड़ा उठाया। स्वामीजी वैशाख संवत् १६२० के अन्त में आगरा आये। वहां रहकर अनेकों गृहस्थों और अन्य व्यक्तियों को सदुपदेश दिया। वे सब स्वामीजी के परमभक्त बन गये। आगरे में स्वामीजी ने भगवत् गीता की कथा करनी आरम्भ की। गीता के अर्थों का वर्णन करने की शैली, उनका श्लोक उच्चारण और व्याख्या पद्धति ऐसी

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

थी कि श्रोता मोहित होते चले जाते थे। यह कथा एक मास से अधिक काल तक प्रतिदिन रात को दो घंटे होती रही। वहीं स्वामीजी ने संध्या की एक पुस्तक का सम्पादन किया। स्वामीजी के आदेश सुनकर बहुत से व्यक्तियों ने मूर्तिपूजन छोड़ दिया। उन दिनों स्वामीजी लिहाफ के विना दूसरा कोई सिला हुआ वस्त्र नहीं पहनते थे। महाभाष्य आदि पुस्तकें उनके पास थीं और उन्हीं दिनों भागवत खण्डन पर एक पाखण्ड खण्डन नामक पुस्तक उन्होंने संस्कृत में लिखी। वेदार्थ विचार करने की आपकी बड़ी इच्छा थी। कहा जाता है पंडित सुन्दरलाल ने जयपुर से वेद मंगवाकर स्वामीजी को दिये। उन दिनों स्वामीजी नियमपूर्वक योगाभ्यास करते रहते थे। किसी दिन पहरों अचल भाव से ध्यानावस्थित रहते थे। आगरे में लोगों ने उनको १८ घंटे तक समाधिस्थ देखा था।

ग्वालियर में भागवत खण्डन

आगरे से धौलपुर, आबू पर्वत होते हुए स्वामीजी ग्वालियर में आये। उन दिनों महाराजा ने राजधानी में भागवत सप्ताह बड़ी धूमधाम से बिठलाया था। दूर-दूर के पंडित भी बुलवाये गये थे। महाराजा ने अपने कर्मचारी भेजकर भागवत सप्ताह का माहात्म्य श्री स्वामीजी से भी पुछवाया। उत्तर में स्वामीजी ने कहा ऐसे कार्यों के फल सिवाय दुख के और कुछ नहीं होते। विश्वास न हो तो करके देख लो और यह भी कहला दिया कि गायत्री का पुरश्चरण करो। स्वामीजी निमन्त्रित होने पर भी भागवत सप्ताह में सम्मिलित नहीं हुए। जिन दिनों भागवत सप्ताह हो रहा था श्री स्वामीजी दूसरी ओर भागवत खण्डन पर व्याख्यान देने लगे। उनके व्याख्यानों में भारी भीड़ होने लगी। लोगों ने सत्यता को ही स्वीकार किया। अन्त में परमात्मा की लीला ऐसी हुई कि महारानी का पंचमासिक गर्भ गिर गया। विशूचिका महारोग बड़े भयंकर रूप से सारे देश में फैला। छोटे राजकुमार जिनकी दीर्घायु की कामना से भागवत सप्ताह बिठाया गया था और जिस कुमार को सप्ताह समाप्ति पर पंडितों ने आशीर्वाद दिया था उसका देहान्त हो गया। इन सब बातों ने भी लोगों के मन पर बड़ा प्रभाव डाला स्वामीजी ने रोज शास्त्रार्थ के लिए विद्वानों को ललकारा और बहुत से विज्ञापन भी दिये पर

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

कोई उनके सामने नहीं आया।

जयपुर में वैष्णवों से शास्त्रार्थ

स्वामीजी ग्वालियर से चलकर करौली और जयपुर आये। जयपुर में भी शास्त्रार्थ इत्यादि हुए और सभी शास्त्रार्थों में स्वामीजी की विजय रही। इनका व्याख्यान सुनने के लिए लोगों में प्रबल उत्कंठा होती थी। स्वामीजी चार मास के लगभग वहां टिके। उन्होंने शिव की व्याख्या में हमेशा निराकार ईश्वर का ही वर्णन किया और प्रतिमा पूजन का जोरों से खण्डन किया। उन्हीं दिनों महाराजा रामसिंह जी वैष्णवों और शैवों के शास्त्रार्थ की तैयारी करा रहे थे। उस शास्त्रार्थ में स्वामी दयानन्दजी ने शैव सम्प्रदाय के पक्ष का अवलम्बन करके वैष्णवाचार्यों के साथ वाद किया। स्वामीजी ने जब वैष्णव धर्म की पुस्तकों से प्रमाण दे देकर उस सम्प्रदाय की समालोचना की, वैष्णव परास्त हो गये। लोगों ने कंठियां तोड़ दीं। महाराजा रामसिंह भी शैव बन गये। इनके इस शास्त्रार्थ से स्वामीजी के पांडित्य का सिक्का पंडित मात्र पर बैठ गया। उस राज्य के अनेक ठाकुर उनके भक्त हो गये।

पुष्कर के मेले में प्रचार

वहां से स्वामीजी पुष्कर पहूँचे। पुष्कर में एक वैंकट शास्त्री नाम के विद्वान् थे। लोगों ने उनसे, स्वामीजी से शास्त्रार्थ करने का आग्रह किया परन्तु शास्त्री जी टालते रहे। अन्त में एक दिन स्वामीजी खुद उनके पास जा खड़े हुए। उस समय कोई तीन-चार सौ ब्राह्मण वहां एकत्र हो गये थे। भागवत को लेकर बड़ा वाद-विवाद हुआ और अन्त में शास्त्रीजी बहुत ही प्रभावित होकर उन्हें अपने अघोरी गुरु से मिलाने ले गये। वह अघोरी बड़ा हट्टा-कट्टा लम्बा-चौड़ा मनुष्य था। जो कोई उसके पास जाता उसे वह पत्थर उठा-उठाकर मारा करता, गालियां देता, मृतकों की देहों को चिताओं पर से उठा कर खा जाया करता था और संस्कृत भाषा का बहुत बड़ा विद्वान् था। स्वामीजी देर तक बातें करते रहे। अन्त में अघोरी ने कहा, 'स्वामी दयानन्दजी का पक्ष सर्वथा सत्य है, इनसे कोई झगड़ा मत किया करो।' पुष्कर में उन दिनों मेला चल रहा था। उसमें स्वामीजी महाराज के

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

उपदेश हुआ करते थे और उनसे लोग इतने प्रभावित हुए कि लोगों ने कंठियां उतार-उतार कर मन्दिर के कोने से ढेर लगा दीं। ब्रह्माजी के मन्दिर के महन्त श्री मानपुरीजी थे। वे इनके बड़े भक्त बन गये। एक दिन बहुत से ब्राह्मणों ने स्वामीजी को शास्त्रार्थ करने के लिए गौ-घाम पर बुलाया। स्वामीजी तो तैयार थे ही तुरन्त वहां पहुँच गये। शास्त्रार्थ थोड़ी ही देर चला था कि पंडितों के पैर उखड़ गये। इतने में ही कई लठैत बीच में आ कूदे और स्वामीजी को गाली बकने लगे। वे उस समय ऊधम मचाना चाहते ही थे कि मानपुरीजी वहां आ पहुँचे। उन्होंने डांट-डपटकर उन लोगों को वहाँ से खदेड़ दिया।

दयानन्द पुराण

महाराज पुष्कर में विराजमान थे— एक दिन बूंदी के राज-पण्डित आये और मूर्ति-पूजा सिद्ध करने के लिये श्लोक पढ़ा। महाराज ने तत्क्षण एक श्लोक रच कर मूर्ति-पूजा का खण्डन किया। पण्डित ने पूछा कि यह किस ग्रन्थ का श्लोक है ? तो उन्होंने कहा कि पहले आप बताइए कि आपका श्लोक किस ग्रन्थ का है ? पण्डित ने कहा कि पद्म-पुराण का। महाराज ने कहा कि हमारा श्लोक दयानन्द पुराण का है। पण्डित कहने लगा कि वह कैसा पुराण है ? महाराज ने उत्तर में कहा कि तुम्हारे पुराणकर्त्ता तो अब जीवित नहीं हैं और दयानन्द—पुराण का कर्त्ता तुम्हारे सम्मुख और हमारे श्लोक के अनुकूल वेदादि शास्त्रों के अनेक प्रमाण हैं। यह सुन कर चुप हो गया।

अजमेर में पादरियों से टक्कर

पुष्कर से स्वामीजी अजमेर पहुँचे। अजमेर आते ही विज्ञापन लगवा दिया कि मूर्ति पूजा आदि विषयों पर यदि किसी को शंका हो तो आये, समाधान किया जायेगा। यहाँ उन्होंने शैव सम्प्रदाय का भी बहुत खण्डन किया। अजमेर से स्वामीजी का पादरी रोबिन्सन, ग्रे और शूलब्रेंड के साथ जीव, ईश्वर, सृष्टिक्रम और वेद विषय पर तीन दिन तक संवाद होता रहा। पादरियों से कोई उत्तर नहीं बन पाया। बाद में पादरी शूलब्रेंड स्वामीजी से बोला कि ऐसी बातें करेंगे तो आप जेल में चले जायेंगे। स्वामीजी मुस्कराते

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

हुए बोले, "सत्य के लिए जेल जाना कोई लज्जाजनक बात थोड़ी ही है। मैं इन बातों से सर्वथा निर्भय हूँ।" अजमेर के कमिश्नर श्री डेविडसन भी स्वामीजी से मिले। बातचीत के बीच में स्वामीजी बोले, "जैसे आपके शासन में मत-मतान्तरों के लोग भोली प्रजा को नोच-नोचकर खा रहे हैं, आपका धर्म है इसका कोई प्रबन्ध करके प्रजा की रक्षा करें।" कमिश्नर ने उत्तर दिया, "यह विषय धर्म से सम्बन्ध रखता है। शासक लोग कोई हस्तक्षेप नहीं कर सकते।"

कर्नल ब्रुक्स से गौरक्षा पर वार्ता

उन दिनों कर्नल ब्रुक्स गवर्नर जनरल के एजेंट थे। वे गेरुए कपड़े वालों से बहुत चिढ़ा करते थे। एक दिन वे लाला बंशीलाल के उद्यान में आये। स्वामीजी उस समय कुर्सी पर बैठे थे। समीप उपस्थित लोगों ने दूर से कर्नल ब्रुक्स को आते देखा तो स्वामीजी को कुर्सी हटा लेने को कहा। परन्तु स्वामीजी ने उलटे कुर्सी और भी आगे कर ली। कर्नल भीतर आ गये। लोग और भी घबड़ा गये। परन्तु स्वामी जी बोले डरो नहीं, शांत रहो। पास आते ही कर्नल टोपी उतार कर स्वामीजी की ओर बढ़ा। दोनों ने हाथ मिलाकर एक-दूसरे का सम्मान किया और फिर दोनों में बातचीत होने लगीं। स्वामीजी ने उनसे गोवध रोकने के बारे में विशेष बातचीत की। उन्होंने अगले दिन बंगले पर आने का निमंत्रण दिया। दूसरे दिन स्वामीजी कर्नल की गाड़ी में उसके बंगले पर गये। कोई पौन घंटा भर गोरक्षा विषय पर बातचीत होती रहीं पर अन्त में कर्नल बोले, "स्वामीजी महाराज गो-वध बन्द कराना मेरे अधिकार में नहीं हैं। मैं आपको चिट्ठी देता हूँ, आप लाट से मिल लें।" कर्नल इतने प्रभावित हुए कि महाराजा रामसिंहजी को भी उन्होंने लिखा कि "आपने स्वामीजी से न मिलकर बहुत कुछ खोया है।" इस पत्र को पढ़कर रामसिंहजी को बहुत ही दुःख हुआ और वे स्वामीजी को निमन्त्रित करने का प्रयत्न करने लगे।"

वहाँ से स्वामीजी कृष्णगढ़ आये और वहां से कई स्थानों पर होते हुए जयपुर चले गये। अचरौल के ठाकुरजी ने स्वामीजी के पधारने का समाचार महाराज को दे दिया। महाराजा ने राज मन्दिर पधारने की प्रार्थना की

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

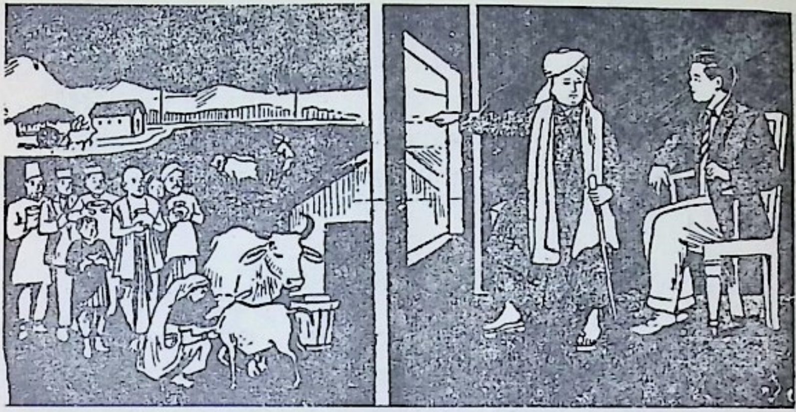

गौ-रक्षा के लिये ऋषि ने जो कार्य किया वह स्तुत्य है। कर्नल ब्रुक्स से गौ-रक्षा पर वार्ता करते हुए गो-रक्षक दयालु दयानन्द

परन्तु स्वामीजी ने कहा यदि महाराजा कोई बात करना चाहें, तो किसी समय यहाँ आयें। तत्पश्चात् महाराजा ने ठाकुर रणजीतसिंहजी को भेजा। उन्होंने कई साथी मित्रों के साथ आकर स्वामीजी से राजमन्दिर चलने का अत्याग्रह किया। स्वामीजी पहुँच भी गये। परन्तु महाराजा रामसिंह अन्तः-पुर में किसी काम से गये हुए थे। इसलिए जब एक चेले ने आकर कहा कि इस समय महाराजा का आना न हो सकेगा तो स्वामीजी वापस चले आये, फिर कभी नहीं गये।

गुरु से अन्तिम भेंट

जयपुर से स्वामीजी आगरा आये वहाँ उन दिनों बड़े समारोह के साथ एक भारी दरबार होने वाला था। दूर-दूर से राजे-महाराजे बुलाये गये थे। स्वामी जी ने भी धर्म-उपदेश के लिए ऐसे समय को बहुत उपयुक्त समझा। मौखिक उपदेश तो दिया ही, ७-८ पृष्ठ की एक छोटी-सी पुस्तक भागवत खण्डन पर लिखी। इसकी कई हजार प्रतियां छपवाकर वहाँ बंटवा दीं और कई हजार

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

कुम्भ मेले के अवसर पर हरिद्वार में बांटने के लिए साथ ले गये। आगरे से मथुरा आये और गुरुचरणों में जाकर उन्हें नमस्कार किया। उन्हें एक स्वर्ण मुद्रा और एक मलमल का थान भेंट किया। भागवत खण्डन पुस्तक का परिचय भी कराया। गुरुदेव अपने सुयोग्य शिष्य से मिलकर बड़े प्रसन्न हुए और उन्हें आशीर्वाद दिया। स्वामीजी कई दिनों तक गुरु सेवा में रहकर सन्देहास्पद विषयों को पूछते रहे। शास्त्रीय तत्व समझते रहे और फिर हरिद्वार जाने के लिए उनसे अनुमति मांगी। स्वामीजी का गुरुजी से यह अन्तिम मिलन था।

हरिद्वार में पाखंड-खंडिनी-पताका

स्वामीजी मथुरा से मेरठ होते हुए हरिद्वार आये। कुम्भ स्नान से एक मास पूर्व ही वे हरिद्वार पहुँच गये और सप्त स्रोत के पास गंगा की रेती में छप्पर डालकर मध्य में "पाखंड-खंडिनी-पताका" गाड़ दी। उनके सामने उस समय एक ओर आकर्षक उतुंग हिमालय था और दूसरी ओर स्वार्थ, अज्ञान और दंभ की लीला से बिगड़ी हुई मनुष्य प्रवृत्ति। स्वामी दयानन्द ने मेले में एकत्रित हुए हिन्दू समाज को देखा और सम्पूर्ण समाज को एक ही बीमारी का शिकार पाया। स्वामीजी महाराज के आश्रम पर झूलते हुए निराले झंडे को देखकर लोग सैकड़ों की संख्या में भीतर चले जाते और उनमें से बहुतेरे स्वामीजी की बातों को स्वीकार भी कर लेते। उस सारे महामेले में स्वामीजी का ही नाम गूंज रहा था। आजतक लोगों ने किसी संन्यासी के मुख से मूर्ति पूजन का खण्डन, श्राद्धों का निराकरण और अवतारों की निरर्थकता और पर्व स्नान माहात्म्य की असत्यता की बात नहीं सुनी थी। बहुतों ने उन्हें नास्तिक कहा, बहुतों ने उनकी निन्दा की, बहुत से ब्राह्मण और साधु शास्त्रार्थ करने के लिए उनके पास गये भी। पर दो-एक प्रश्नोत्तर में ही निरुत्तर होकर लौट आये। कुछ राजे-महाराजे भी स्वामीजी के दर्शन के लिए आये। यहाँ पर काशी के सुप्रसिद्ध पंडित स्वामी विशुद्धानन्दजी से शास्त्रार्थ हुआ। स्वामी जी ने अपने वास के दौरान बीसियों वादियों को जीता। सैकड़ों जिज्ञासुओं को समझाया, सैकड़ों पुस्तकें भागवत खण्डन की बाँटी परन्तु परिणाम देखकर उनके मन में एक उदासीनता की रेखा सी उमड़ आई। हजारों साधुओं का

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

691

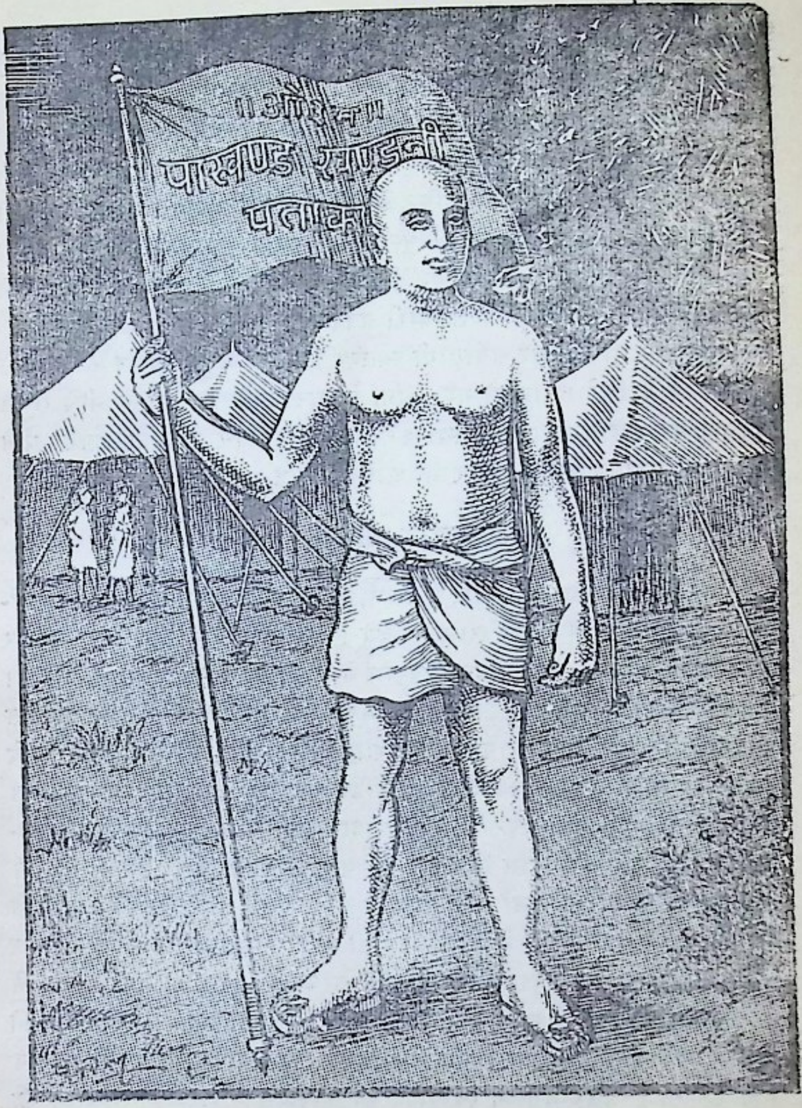

पाखंड खंडन के लिए कृत संकल्प सर्वस्व त्यागी ऋषि दयानन्द

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

मेला था परन्तु सारा बल लगाने पर भी एक भी सत्य का सहायक साधु संन्यासी उन्हें न मिला। ऐसा एक भी संन्यासी न दिखाई दिया जो राष्ट्र प्रेम और पर पीड़ा की अनुभूति से युक्त हो। उस समय सचमुच स्वामीजी ने अपने आपको अकेला अनुभव किया। उन्होंने सोचा अभी यज्ञ में कुछ कमी है। वह सर्वोपरि यज्ञ करने के लिए सिद्ध हो गये और अपने साथ की सारी सामग्री वहीं छोड़ दी। महाभाष्य की एक पुस्तक एक स्वर्ण मुद्रा और मलमल का एक थान गुरु चरणों में मथुरा भेज दिया। डेरे पर जो भी कुछ था भिखारियों को बांट दिया। एक मात्र कोपीनधारी बनकर सांसारिक वस्तुओं के इस हलके से बन्धन को भी काटकर सर्वत्यागी स्वतन्त्र दयानन्द मनुष्य जाति के बन्धनों को काटने के लिये तैयार हो गये। गंगा के पार चण्डी के पर्वत के नीचे रेतीले किनारे पर कुछ समय तक तपस्या करके उन्होंने अपने आपको आगे आने वाले धर्म महायुद्ध के लिए और भी अधिक तैयार कर लिया।

प्रचार की धूम

वहाँ से ऋषिकेश, हरिद्वार, कनखल, लंढौर आदि होते हुए स्वामीजी कर्णवास आये और वहाँ से फर्रुखाबाद पहुँचे। फर्रुखाबाद में तीन दिन रहकर फिर चासी आये। वहाँ पंडित नन्दराम ने लोगों को शंखचक्र आदि से दीक्षा देकर वैरागी बनाने का कोलाहल मचा रखा था। कोई २०-२५ सुपठित ब्राह्मण और जाट मिलकर पंडित नन्दराम को स्वामीजी की सेवा में ले आये परन्तु स्वामीजी का पांडित्य देखते ही पंडित नन्दराम वहाँ से खिसक गया और फिर बहुत बुलाने पर भी नहीं आया। वहाँ से चलकर स्वामीजी रामघाट आये। वहाँ टीकाराम नाम का एक ब्राह्मण रहता था। उसके मुंह से गायत्री का उच्चारण सुना और संध्या करने के लिए प्रेरित करके स्वामीजी ने पूरी संध्या अपने हाथों से लिख दी। धीरे-धीरे स्वामीजी से उपदेश लेकर पंडित टीकाराम अपने पुराने पूजा पाठ के कामों से विरक्त हो गया। वहाँ से वे कर्णवास आये और अपने सारे यजमानों को इकट्ठा करके स्वामीजी की विद्वत्ता की बात उन्हें बताई और कह दिया "अब आपके मन्दिर में पूजा मैं नहीं करूंगा।" इधर ये लोग स्वामीजी को कर्णवास में लाने की सोच ही रहे थे। स्वामीजी स्वयं कर्णवास में आ गये। उन्होंने देखा कि सभी क्षत्रियों ने

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

यज्ञोपवीत नहीं पहना हुआ । उन्हें यज्ञ पवीत दिये । वहाँ से स्वामीजी अनूप-शहर आये । वहाँ एक नवलजंग नामक एक महामल्ल था । वह उनका परम-भक्त बन गया । एक दिन अचानक छः-सात वाममर्गी हाथ में शराब की बोतलें लिये ऊट-पटाँग बकते हुए स्वामीजी के स्थान की ओर आये और कहने लगे, "आज हम दयानन्द को वारुणी स्नान कराकर ही छोड़ेंगे ।" और चिल्लाकर बोले, "अरे दयानन्द निकल बाहर, तुझे शुद्ध करें, वीर बनायें ।" स्वामीजी ने जब इन लोगों को इस प्रकार शराब में मस्त और बड़बड़ाते हुए आते देखा, उन्होंने नवलजंग को बुलाया और बोले, "ज़रा आकर इनका नशा तो उतार जाना ।" जैसे ही नवलजंग आया सब सिर पर पैर रखकर भागे । फिर कभी नहीं आये ।

यहाँ अम्बादत्त नाम का एक मथुरावासी पंडित भागवत कथा करने के लिए आया हुआ था । उससे स्वामीजी का बड़ा मनोरंजक शास्त्रार्थ हुआ जिसमें वह बुरी तरह पराजित हुआ । इसका अन्य लोगों पर बड़ा प्रभाव पड़ा और उन्होंने अपने सब शालीग्राम गंगा में बहा दिये और कंठियाँ तोड़ डालीं । यहाँ स्वामीजी ने रामलीला का भी खण्डन किया ।

पान में विष

उन दिनों सैयद मुहम्मद वहाँ के तहसीलदार थे । वे भी एक प्रकार से स्वामीजी के भक्तों में ही सम्मिलित हो गये । एक दिन एक ब्राह्मण स्वामीजी के पास आया और उन्हें सम्मान के साथ एक पान दिया सरल स्वभाव होने के कारण उन्होंने पान मुंह में रख लिया और ज्यों ही उसका रस लिया वे जान गये कि इसमें विष है । उस ब्राह्मण से तो उन्होंने कुछ नहीं कहा, यौगिक क्रिया करके उस विष को बाहर निकालने के लिए वे गंगा पार चले गये । इधर जब सैयद मुहम्मद को पता चला तो उसने उस ब्राह्मण को पकड़ मंग-वाया और जेल में डाल दिया और स्वामीजी के दर्शनार्थ चला । मार्ग में उसके हृदय में वे विचार आये कि आज मैंने स्वामीजी के शत्रु को दण्ड देकर बदला चुकाया है ये ज़रूर आशीर्वाद देंगे । परन्तु ज्यों ही वे स्वामीजी के पास पहुँचे उन्होंने मुंह घुमा लिया और उससे बोले तक नहीं । तहसीलदार को बड़ा

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

आश्चर्य हुआ। पूछने पर स्वामीजी बोले आज आपने एक मनुष्य को कैद किया है। मैं संसार में मनुष्यों को बंधवाने नहीं आया अपितु कैद से छुड़वाने आया हूँ। यदि दुष्ट अपनी दुष्टता नहीं छोड़ते तो, हम अपनी श्रेष्ठता क्यों छोड़ें ? यह सुनकर तहसीलदार रोमांचित हो गया। उन्होंने आज तक क्षमा का ऐसा धनी, शान्त पुरुष दूसरा नहीं देखा था। उसने जाते ही ब्राह्मण को मुक्त कर दिया।

साकारवाद पर शास्त्रार्थ

स्वामीजी रामघाट आए और गंगा की बाजू पर आसन जमा लिया। बाद में बनखंडी महादेव में चले गए और बहुत से पण्डित वहाँ पर भी शास्त्रार्थ आदि के लिए आए। जिनको स्वामीजी ने युक्ति और प्रमाणों से परास्त किया। सबसे पहले शास्त्रार्थ कृष्णानन्द जी के साथ हुआ जो तीन दिन तक चला। पहले तो वेदांत को ही लेकर के शास्त्रार्थ हुआ पर एक दिन ऐसा हुआ कि शास्त्रार्थ के समय किसी ने कृष्णानन्दजी से कहा, "महाराज महादेवजी पर जल चढ़ा आऊँ।" स्वामीजी ने बीच में ही कह दिया, "वहाँ तो पत्थर है। महादेव कहाँ है ?" इससे चिढ़कर कृष्णानन्दजी ने साकारवाद को शास्त्रार्थ का विषय बनाया और स्वामीजी ने ऐसी युक्तियाँ और प्रमाण दिये कि कृष्णानन्दजी को चुप हो जाना पड़ा। प्रायः सभी लोग स्वामीजी के उपदेशों की सत्यता को स्वीकार तो कर लेते परन्तु आजीविका को देखते हुए इन वेद विरोधी कर्मों को छोड़ने का साहस नहीं करते थे।

गायत्री का प्रचार

रामघाट से स्वामीजी बेलौन और खेरा आए। वहाँ जो भी कोई स्वामीजी की संगति में आता उसे नित्य कर्म करने के लिए बल देते। जो यह कहता कि मुझे गायत्री पाठ नहीं आता, उसे स्वयं सिखाने लग जाते। वहाँ पंडित इन्द्रमणि नामक एक सज्जन थे। उन्होंने गायत्री की अनेक प्रतियां लिखकर स्वामीजी के पास रख दीं। स्वामीजी उन्हें लोगों में बांटते थे और उनके नीचे हजार का अंक लिख देते थे। जिसका अर्थ यह था कि हजार बार जप करना चाहिए। वहां से स्वामीजी कर्णवास आए। उनके

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

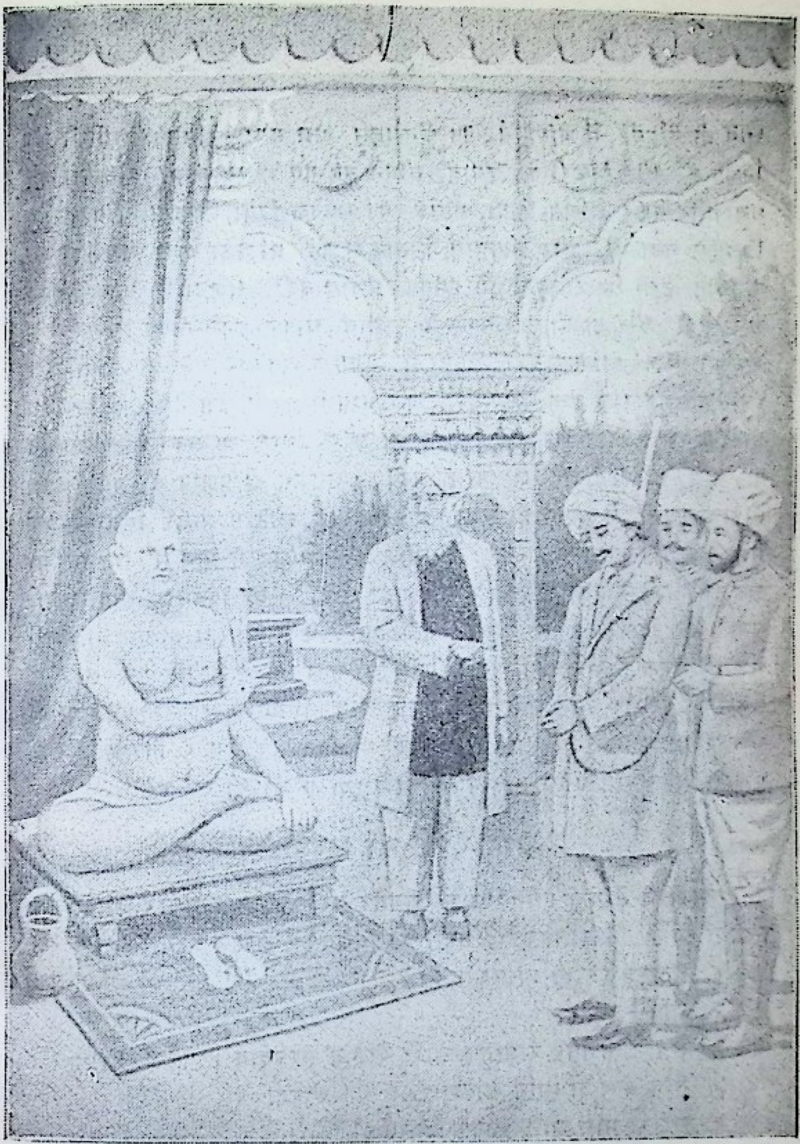

पान में विष देने वाले को जब तहसीलदार गिरफ्तार कर ऋषि सम्मुख लाये तब दयानन्द ने कहा, छोड़ दो इसे ! मैं संसार को कैद कराने नहीं, कैद से छुड़ाने आया हूँ ···

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

आते ही पंडितों में शास्त्रार्थ का कोलाहल मच गया। फिर स्वामीजी की विजय हुई और ठाकुरों के उत्साह चौगुने बढ़ गए। स्वामीजी ने बहुतों को यज्ञोपवीत देकर दीक्षित किया, गायत्री का उपदेश दिया, ठाकुरों में यह काम बिलकुल नया था, और कर्णवास के ठाकुरों की प्रतिष्ठा बहुत थी। इसका फल यह हुआ कि राजपूतों में इसका प्रभाव बड़ी उत्तेजना के साथ फैलता चला गया और दो-दो सौ कोस से राजपूत आकर उनसे दीक्षा लेने लगे। राजपूत पंक्ति बांधकर बड़ी संख्या में गंगा के किनारे खड़े हो जाते और स्वामीजी महाराज उन्हें यज्ञोपवीत देकर गायत्री का उपदेश देते। यहां पंडित हीरावल्लभ से जो वहुत बड़े विद्वान् थे और जिन्हें ऋग्वेद और यजुर्वेद कंठाग्र थे स्वामीजी का शास्त्रार्थ हुआ। लगभग दो हजार की भीड़ थी। हीरावल्लभजी ने आते ही सभा के बीच एक छोटे से सुन्दर सिंहासन पर मूर्तियां स्थापित कर ऊँचे स्वर से प्रतिज्ञा की, "अब मैं यहां से तब उठूँगा जब स्वामीजी के हाथ से इन्हें भोग लगवा लूँगा। छः दिन तक बाद चलता रहा। एक दिन तो ९ घंटे बिना विराम शास्त्रार्थ होता रहा। अन्त में सारी सभा के समक्ष उसने कहा, 'स्वामीजी जो कुछ कहते हैं वह सब सत्य है, प्रमाणित है और उसने उसी समय मूर्तियों को सिंहासन से उठाकर गंगा में फेंक दिया और उनकी जगह पर वेद स्थापित कर दिए। हीराबल्लभ के परास्त हो जाने से अनेक सज्जनों की मूर्तिपूजा से आस्था उठ गई।

आठ गप्पों का खण्डन

स्वामीजी ने यहाँ सूर्यग्रहण के अवसर पर एक नया प्रचार आन्दोलन चलाया जिसमें निम्नलिखित ८ गप्पों का विशेषकर खण्डन किया।

१. अठारह पुराण व्यासकृत हैं।
२. मूर्ति पूजन।
३. शैव-शाक्त और रामानुज आदि वैष्णव सम्प्रदाय।
४. तन्त्र ग्रन्थ वाममार्ग आदि।
५. मदिरा मांस आदि मादक वस्तुएँ।
६. व्यभिचार।
७. चोरी करना।

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

८. छल-कपट, अभिमान, झूठ आदि।

एक सज्जन के पूछने पर कि ग्रहण लगा हो तो भोजन किस समय करना चाहिए। स्वामीजी ने उत्तर दिया जब भूख लगे खा लेना चाहिए।

लाला इन्द्रमणिजी ने स्वामीजी से एक दिन कहा, आप अवधूत होकर इस खण्डन-मण्डन के झगड़े में क्यों फँस गए हैं। स्वामीजी ने उत्तर दिया, "मेरे लिए यह कार्य झगड़ा नहीं है अपितु ऋषि ऋण का उतारना है। आर्य सन्तान को ऋषियों के मार्ग से हटाकर कुपथगामी बना दिया गया है। मैंने प्रण कर लिया है कि इसे सन्मार्ग पर लाने का प्राण-पण से प्रयत्न करूँगा।"

ब्रह्मचर्य का प्रताप

स्वामीजी बड़े तपस्वी थे, उन्होंने भूख-प्यास, शीत-उष्ण आदि सब द्वन्द्व जीते हुए थे। एक दिन प्रातःकाल अत्यन्त शीतल पछवा हवा बड़ी तेज बह

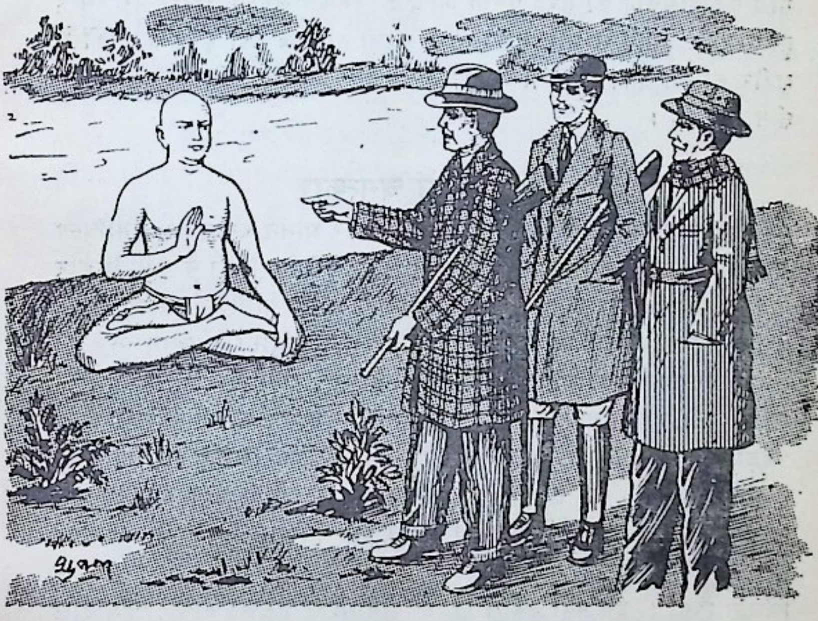

क्या आपके शरीर को ठण्ड नहीं लगती ? (पृष्ठ-५२)

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

रही थी। स्वामीजी स्नान ध्यान से निवृत्त होकर कुटिया के बाहर पद्मासन में बैठे थे और दर्शन को आए हुए ठाकुर लोग स्वामीजी के प्रवचन सुन रहे थे। यद्यपि उन सम्पन्न लोगों ने रूई और ऊन के बहुत से वस्त्र पहन रखे थे। पर ठंड से उनके अंग ठिठुरे जा रहे थे। शरीर कांप रहा था। नाक और आँख से पानी बह रहा था। हाथ-पाँव सुन्न होते जा रहे थे। पर दयानन्दजी निश्चल भाव से उपदेश कार्य में लगे थे। सभी आश्चर्य चकित थे। ठाकुर गोपाल सिंह ने खड़े होकर हाथ जोड़कर पूछा, भगवन् इस भयंकर ठंड में हम सबके शरीर सिकुड़े जा रहे हैं। पर आप पर इसका कोई असर नहीं दिखाई देता ? स्वामीजी मुस्कराकर बोले, "यह ब्रह्मचर्य और योगाभ्यास के कारण है। उसने कहा, "हम कैसे जानें ?" उस समय स्वामी जी ने अपने हाथों के अंगूठे घुटने में रखकर ऐसे दबाए कि तत्काल ही उनके माथे पर ओसकण की तरह पसीने की बूँदें चमकने लगीं। शरीर पर रमाई हुई मिट्टी पसीने से भीग गई। ऐसी बहती हुई तेज ठंडी हवा के झोंकों में शरीर का इस प्रकार पसीना-पसीना हो जाना दर्शकों के लिए एक कल्पनातीत दृश्य था।

अभ्यास का चमत्कार

एक रात स्वामीजी गंगा के दूसरे किनारे पर आसन लगाए हुए समाधिस्थ थे। उसी समय बदायूँ के कलेक्टर अपने किसी यूरोपीय मित्रों के साथ शिकार के लिए गंगातीर पर आए। अचानक उनकी दृष्टि स्वामीजी पर जा पड़ी। वे मित्रों के साथ वहां आ पहुँचे। बड़ी देर तक वे संन्यासी के स्थान, रूप को समाधि निमग्नता को और तपस्या को देखते रहे। अन्त में जब स्वामीजी ने आँखें खोलीं, उनका सत्कार किया और चलते समय कलेक्टर विनयपूर्वक बोले, "बड़ा आश्चर्य है इतनी ठंड पड़ रही है, नदी का किनारा है, रात का समय है और आप बर्फ सी ठंडी रेत पर लंगोट मात्र लगाए मग्न बैठे हैं। क्या आपको ठंड नहीं लगती ? स्वामीजी उत्तर देने ही वाले थे कि कलेक्टर का मित्र बीच में बोल उठा, "हट्टा-कट्टा आदमी है। खाने को अच्छा माल मिलता होगा। इसे क्या ठंड लगेगी।" स्वामीजी हंसकर बोले, "हम दाल चपाती खाने वाले क्या माल खायेंगे ? बहुत अधिक हुआ तो दूध पी लिया।

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

परन्तु आप मांस, अंडे आदि पौष्टिक पदार्थ खाते हैं और मदिरा पान में भी आपको कोई अड़चन नहीं है, इसलिए यदि माल खाकर ठंड सही जाती हो तो कपड़े उतार कर आइए और थोड़ी देर मेरे साथ बैठ जाइए। "इसपर वह शर्मिन्दा हो गया और बात बदल कर बोला, "अच्छा तो बताइए आपको ठंड क्यों नहीं लगती ? उत्तर में स्वामीजी बोले, "इसका एक कारण तो अभ्यास है। देखिए आपका मुंह हमेशा नंगा रहता है और आपको उसे ढंकने की आवश्यकता अब भी नहीं प्रतीत होती। कलेक्टर महाशय ने अपने मित्रों को संकेत से बहुत बोलने से रोक दिया और वे चले गए।

लोहे की पिंडलियाँ

स्वामीजी इसी प्रकार राजपूतों को यज्ञोपवीत धारण कराते हुए सहस्रों मनुष्यों को उपदेश देते हुए फर्रूखाबाद तक गए और वहां से फिर चासी लौट आए। चासी में ओंकारदास नाम का एक व्यक्ति गंगा स्नान के लिए आया हुआ था। उसने भी स्वामीजी की कुटिया के निकट अपना डेरा डाल दिया। वह बड़ा व्यायाम करनेवाला था। इसीलिए बड़ा मजबूत सुगठित और बलवान था। शाम होने पर उसकी इच्छा हुई कि पांव दबाकर स्वामीजी की सेवा की जाए। इससे स्वामीजी के बल का भी पता चल जाएगा। जाकर के स्वामीजी से प्रार्थना की। स्वामीजी बोले, "हमारे पांव दबे-दबाए हैं, काहे को कष्ट करते हो।" परन्तु वह माना नहीं, और चरण सेवा में लग ही गया। ज्यों ही उसने पिंडलियों पर हाथ लगाया, उसे वे पिंडलियां लोहे की सी लगीं। हाथ ही नहीं धंसता था। सारा जोर लगाने पर भी मांस हाथों में नहीं आता था। ओंकारदास थोड़ी ही देर में ऊपर से नीचे तक पसीने से तरबतर होकर हांपता हुआ पांव-दबाना छोड़कर अलग हो गया। उसने स्वामीजी जैसा बलिष्ठ व्यक्ति अपने सारे जन्म में नहीं देखा था।

चपत का चमत्कार

एक जाट जिसका नाम छत्रसिंह था स्वामीजी का बड़ा प्रेमी था। परन्तु था पक्का नवीन मायावादी। एक दिन स्वामीजी के पास आया और अद्वैतवाद को लेकर बातचीत करने लगा। बातचीत के बीच जब छत्रसिंह ने कहा,

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

स्वामीजी आप चाहे कुछ भी कहिए, यह संसार है मिथ्या। स्वामीजी ने हाथ को थोड़ा सा आगे बढ़ाकर छत्रसिंह के मुंह पर एक चपत लगाई। चपत खाते ही वह चौंक पड़ा और मलता हुआ बोला, "महाराज सिद्धांत भेद होने पर भी आप जैसे ज्ञानी लोगों को आवेश में आकर थप्पड़ मार देना शोभा नहीं देता। स्वामीजी मुस्कराते हुए बोले, चौधरी जी ब्रह्म के सिवाय सब मिथ्या है। आप भी मिथ्या, मैं भी मिथ्या, मेरा थप्पड़ भी मिथ्या तो गाल काहे को मलते हो ? आपको इस मिथ्या का अनुभव कैसे हो गया ! यह सुनकर छत्रसिंह ने स्वामीजी के चरण पकड़ लिए और बोला, महाराज आपने आज मेरी आँखें खोल दीं।

रोटी—नाई की या गेहूँ की

चासी में स्वामीजी लगभग चार-पांच महीने रहे और उसके बाद वे अनूपशहर चले आए। अनूपशहर में उमेदा नाम का एक नाई रहता था। वह भी स्वामीजी का बड़ा भक्त बन गया था। एक दिन वह भक्ति भावना से थाल में भोजन परोसकर स्वामीजी की सेवा में लाया। ज्यों ही स्वामीजी खाने लगे वहां कोई बीस-पच्चीस ब्राह्मण बैठे हुए थे। वे कह उठे, स्वामीजी क्या करते हो, यह रोटी तो नाई की है। महाराज हंसते हुए बोले, "नहीं यह रोटी तो गेहूँ की है, मैं इसे अवश्य खाऊंगा।"

मूर्ति पूजा और पुराण विरोध

इस प्रकार उन्होंने छूआछूत का भी सक्रिय रूप से विरोध किया। स्वामी जी सामगान के बड़े अच्छे गायक थे। उनका कंठ स्वर भी बहुत सुन्दर था। स्वामीजी ने अनूपशहर में सामगान भी सुनाया। उसके बाद स्वामीजी गढ़िया आ गये। दैवयोग से वहीं कैलाश पर्वतजी आ निकले। सायंकाल के समय गंगातीर पर वह अपना नित्य कर्म कर रहे थे कि उनके सिर पर एक संन्यासी खड़ा दिखाई दिया। पूछा कौन है ? उत्तर मिला, "मैं दयानन्द सरस्वती हूँ। सुनते ही उन्होंने स्वामीजी को अपने पास बिठा लिया और सब वृतान्त पूछने लगे। वृतान्त सुनाते हुए स्वामीजी बोले, कैलाश पर्वतजी मैं आपसे सहायता लेने आया हूँ। वे बोले, "कैसी सहायता !" स्वामीजी बोले, 'रामानुज वल्लभ

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

आदि सम्प्रदायों ने प्राचीन धर्म-कर्म नीति-रीति को नष्ट-भ्रष्ट कर दिया है। इसलिए आप इनके खण्डन में मेरे सहायक बनिये। कैलाशजी बोले, आपका विचार उत्तम है, इन मतों का खण्डन अत्यावश्यक है। मैं आपको हर प्रकार की सहायता देने के लिए तैयार हूँ पर आप पहले मेरी दो बातें स्वीकार कर लीजिये। एक तो मूर्तिपूजा का खंडन छोड़ दीजिये। दूसरे आप पुराणों का खंडन भी छोड़ दीजिये। यह न कहिए कि ये व्यासकृत नहीं हैं और स्वार्थी लोगों के बनाये हुए हैं। स्वामीजी बोले "महात्मन् इन सम्प्रदायों का आधार, यही मूर्ति पूजा और पुराण हैं। जब तक इनका खंडन न होगा आर्ष ग्रंथों का आदर नहीं होगा। आप संन्यासी हैं। निर्भयता से लोगों में सत्य का प्रचार कीजिये। इसी वाद-प्रतिवाद में सारी रात बीत गई और सवेरा हो गया। स्वामीजी निराश होकर जाने के लिए प्रस्तुत हो गये और कैलाश पर्वतजी के बहुत आग्रह करने पर भी यह कहते हुए चल पड़े। मैंने सोचा था कि आप सत्य में मेरी सहायता करेंगे सो आपने नहीं की। ऐसी अवस्था में ईश्वर ही मेरी सहायता करेगा।

स्वामीजी वहाँ से चलकर अपने भक्तों के आग्रह से सोरों पधारें। गंगाजी के तीर पर गोसाईजी के मन्दिर में ठहरे और अगले दिन अंबागढ़ के स्थान में चले गए। सोरों में कुछ उपद्रवी लोगों ने आपस-मिलकर स्वामाजी को विष देकर मार डालने अथवा पानी में डुबा देने का षड्यन्त्र रचा। एक रात वे मिलकर आये। इस समय स्वामी जी के समीपवर्ती स्थान में एक और साधु सुख से सो रहा था। उन्होंने उसी को दयानन्द समझकर खटिया सहित उठा लिया और ले जाकर गंगाजी की धारा में फेंक दिया। जब उसने डूबते हुए चिल्लाकर बचाने की याचना की तब उनको पता चला कि यह तो दयानन्द नहीं है। वह साधु जल में से निकाल लिया गया।

सहन शीलता

श्री स्वामीजी एक दिन उपदेश दे रहे थे और श्रोता दत्तचित्त होकर उनके उपदेश सुन रहे थे। उसी समय वहां एक हट्टा-कट्टा पहलवान आ पहुँचा। एक मोटा सोटा कन्धे पर रखे सभा को चीरते हुए सीधे स्वामीजी की ओर बढ़ गया। उसका चेहरा क्रोध के मारे तमतमा रहा था, आँखें लाल थीं।

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

माथे पद त्योरियाँ चढ़ी थीं। होंट चबाता और दाँतों को पीसता हुआ बोला, अरे साधु तू ठाकुर पूजा का खण्डन करता है, गंगा-मैया की निंदा करता है, देवताओं के विरुद्ध बोलता है। झटपट बता, तेरे किस अंग पर यह सोटा मारकर तेरी समाप्ति कर दूं। यह सुनते ही सारी सभा सन्नाटे में आ गई परन्तु स्वामीजी प्रशांत भाव से मुस्कराते हुए बोले। भद्र, यदि तेरे विचार में मेरा धर्म प्रचार करना कोई अपराध है तो इसका प्रेरक मेरा मस्तिष्क है। यही मुझे खण्डन की बातें सुझाता है। इसलिए यदि तुम अपराधी को दण्ड देना चाहते हो तो मेरे सिर पर सोटा मारं। इन वाक्यों के साथ ही स्वामी जी ने जब उसकी ओर आँखें डालकर देखा, वह बलिष्ठ व्यक्ति ठडा पड़ गया। पैरों पर गिर पड़ा और स्वामीजी से बारबार रो-रोकर क्षमायाचना करने लगा। स्वामीजी ने उसे आश्वासन दिया और उसके अपराध को क्षमा कर दिया। इस दृश्य को देख लोग स्वामीजी की सहनशीलता की बड़ी प्रशंसा करने लगे और उनकी सब ओर धाक जम गई।

राव कर्णसिंह का क्रोध

वहाँ से स्वामीजी अनेक जगहों से होते हुए फिर कर्णवास में आये और वहीं अपनी कुटिया में ठहरे। उसी महीने में गंगा स्नान का मेला था। हजारों नर-नारी आये हुए थे। राव करणसिंह भी वहाँ स्नानार्थ आये हुए थे। उनकी वहां ससुराल थी। स्वामीजी की कुटिया से थोड़ी दूर पर वे उतरे हुए थे। रात को करणसिंह के निवास पर रास होने लगी। कुछ पंडित स्वामीजी को बुलाने आये। स्वामीजी बोले, 'हम ऐसे निन्दनीय काम में कभी सम्मिलित नहीं हो सकते तुम लोग जो अपने पूर्वजों के स्वांग बनाकर देखते हो यह बहुत ही लज्जास्पद और दुःख की बात है। दूसरे दिन पंडितों ने राव करणसिंह के पास जाकर यह बात सुनाई और उन्हें भड़का दिया। वह भी उत्तेजित होकर पंडितों और नौकरों के साथ स्वामीजी की कुटिया पर आ पहुँचे। उस समय श्रोता एकाग्रचित होकर उपदेश सुन रहे थे। स्वामीजी महाराज ने सेना सहित रावजी को आये हुए देखकर उनका सत्कार किया। लेकिन राव अपनी गर्दन ऐंठे हुए बोले, 'कहाँ बैठें, स्वामीजी जान गये कि अहंकार बोल रहा है। उत्तर दिया जहाँ इच्छा हो बैठ जाइये। राव बोले जहाँ तुम बैठे हो वहीं बैठेंगे।

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

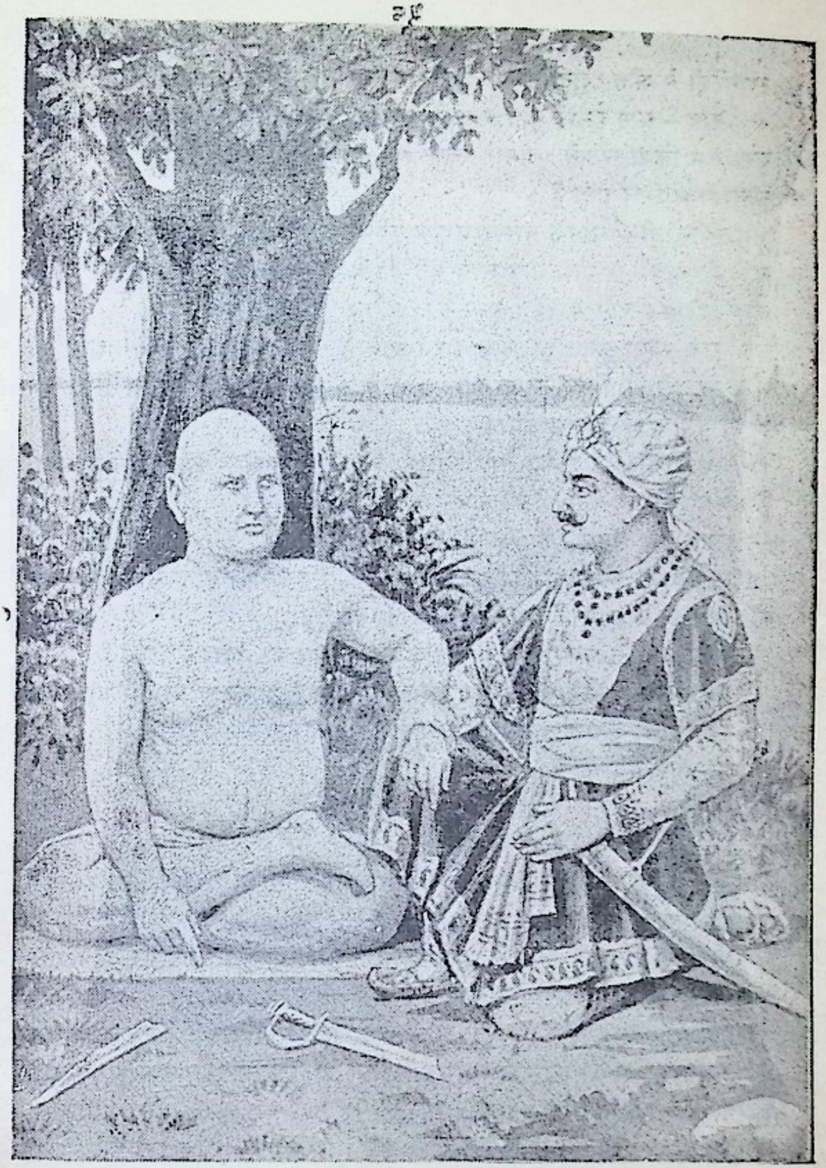

राव कर्णसिंह के बल का भारी अभिमान तलवार के टुकड़े कर ऋषि ने भंग कर दिया ।

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

राव कर्णसिंह के बल का भारी अभिमान तलवार के टुकड़े कर
महर्षि ने अंत कर दिया।

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

स्वामीजी ने शीतलपाटी हटा ली और बोले, आइये यहीं बैठिये।

राव—आप हमारे यहाँ रास में क्यों नहीं आये ? संन्यासी होकर ऐसा बुरा कर्म किया आपने। हमारे स्थान पर जब रासलीला होती है तो पंडित संन्यासी शामिल होते हैं।

स्वामीजी—आपके सामने आपके पूर्वजों के रूप बनाकर दुश्चरित्र मनुष्यों आते हैं, नाचते हैं और आप लोग बैठे-बैठे देखा करते हैं। उस समय आप लोगों को शर्म नहीं आती। आप कैसे क्षत्रिय हैं ?

राव—हम तुमसे बातचीत करने आये हैं। हमने सुना है कि तुम अवतारों और गंगाजी की निन्दा किया करते हो। याद रखो यदि मेरे सामने निंदा की तो मैं बुरी तरह पेश आऊँगा।

स्वामीजी—मैं निन्दा नहीं करता। मैं जो चीज जैसी है वैसी ही कहता हूँ। गंगा का भी वैसे ही वर्णन करता हूँ।

राव—तो फिर गंगा कितनी है ?

स्वामीजी अपना कमण्डल उठाकर बोले, मेरे लिए तो इतना ही पानी काफी है इसलिए मेरे लिए गंगाजी इतनी ही हैं।

स्वामीजी ने राव से पूछा, आपके मस्तक पर यह रेखा सी क्या है ?

राव—यह श्री है। जो इस श्री को धारण नहीं करता वह चाण्डाल है।

स्वामीजी—आप कब से वैष्णव हुए हैं ?

—कुछ वर्षों से।

—क्या आप के पिताजी वैष्णव थे ?

—नहीं वे नहीं थे।

—तब तो आप ही के कथनानुसार आपके पिता और कुछ साल पहले आप भी चाण्डाल सिद्ध हो गए।

—इस बात पर राव को क्रोध आ गया। और वे तलवार पर हाथ रखकर बोले, मुंह संभाल कर बोलो। स्वामीजी के साथ टीकाराम बैठे हुए थे। राव को क्रोधित और उनके साथी दस-बारह आदमियों को शस्त्र सन्नद्ध देखकर वे भयभीत हो गए। पर स्वामीजी टीकाराम से बोले; डरते क्यों हो। कोई चिन्ता की बात नहीं। हमने जो कुछ कहा है, सत्य कहा है। जैसे किसी नाग को छेड़ दिया हो, राव क्रोध में तड़पने लगे। आँखों में खून उतर आया और

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

दुष्ट वचन कहने लगे। पर स्वामीजी हँसते हुए बोले, 'राव, यदि शास्त्रार्थ ही करना हो तो वृन्दावन से रंगाचार्यजी को बुला भेजिये। उसमें जो भी हार जाये वह दूसरे के सिद्धान्त को स्वीकार कर ले। यह प्रतिज्ञा हो जानी चाहिए।

राव—तू क्या रंगाचार्य से वाद-विवाद करेगा। तेरे जैसे तो उनकी जूतियां झाड़ते हैं। ऐसा कहते-कहते बारबार राव अपना दायां हाथ तलवार पर ले जाते। यह देख स्वामीजी हँसते हुए बोले, रावजी क्या बारबार तलवार का भय दिखलाते हो। शास्त्रार्थ करना हो तो अपने गुरुजी को यहाँ ले आइये हम तैयार हैं और यदि शस्त्रार्थ ही करना हो तो संन्यासियों से क्यों टकराते हो। जयपुर, जोधपुर से जा भिड़ो। फिर क्या था राव आपे से बाहर हो गये। आँखों से चिंगारियाँ फूटने लगीं और तलवार लेकर खरी-खोटी सुनाते हुए वे स्वामीजी की ओर लपके। स्वामीजी ने उन्हें हाथ से ढकेल दिया। राव लुढ़क गये। फिर संभल कर चौगुने क्रोध से महाराज पर तलवार का वार करने के लिए आगे बढ़े। वे तलवार चलाना ही चाहते थे कि स्वामीजी ने झपट कर उसे उनके हाथ से छीन लिया और जमीन पर दबा कर दो टुकड़े कर दिए और बोले, मैं संन्यासी हूँ, तुम्हारे किसी अत्याचार से चिढ़कर तुम्हारा अनिष्ट चिन्तन नहीं करूँगा। जाओ ईश्वर तुम्हें सम्मति प्रदान करे।

राव विदा हो गये और स्वामीजी के साहस और निर्भीकता का प्रभाव सोरों के लोगों पर पड़ा।

व्याकरण सूर्य अस्त

जिन दिनों स्वामीजी शाहबाजपुर में थे कासगंज वासियों ने सुना कि स्वामीजी के पूज्य गुरू श्री विरजानन्दजी का स्वर्गवास हो गया है। उन्होंने स्वामीजी का पता लगाकर उनको इस बात की सूचना दी। यह दुःखद समाचार सुनते ही स्वामीजी एक दम सन्न रह गए और फिर बोले आज व्याकरण का सूर्य अस्त हो गया। जिस महापुरुष के मुंह पर अपने सगे-सम्बन्धियों की मृत्यु या घर-बार को त्यागने के समय भी व्याकुलता के कोई चिन्ह नहीं दिखाई दिये। अपने गुरु की मृत्यु पर वही इतने दुखी हुए, यह वास्तव में स्वामीजी के अपने आचार्य के प्रति प्रेम को प्रकाशित करता है।

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

कोपीनधारी दयानन्द

गंगातीर पर विचरते हुए स्वामीजी का जीवन एक उग्र तपस्वी का जीवन था। शरीर पर सिवा लंगोट के कुछ नहीं होता था। इसी दशा में उन्होंने गंगा की रेती में पौष और माघ की ठंडी रातें काटीं, वैसाख और जेठ की कड़ी धूप और लूएं सहन कीं। सावन भादों की झड़ियाँ झेली। वे एकांत स्थान में जाकर स्नान किया करते। कौपीन धोकर सूखने डाल देते और स्वयं सिद्धासन लगाकर बालू पर बैठ जाते। जब कौपीन सूख जाती तो फिर उसे बांधकर मनुष्यों के आने-जाने के स्थान पर आते। स्वामीजी का रात का समय प्रायः तुरिया अवस्था में बीतता। कई परीक्षक लोग आधी रात तीसरे पहर इन्हें देखने गए। परन्तु स्वामीजी को ध्यानावस्थित पाया। वे प्रायः मांगने नहीं जाते थे। इसलिए रूखा-सूखा जैसा भी अन्न कोई पहले लाकर दे देता उसे ही स्वीकार कर लेते थे। स्वामीजी महाराज अपने आने का समाचार किसी को नहीं देते थे और प्रायः अचानक ही आ पहुँचते थे। स्थान स्थान पर उनके शिष्य थे और अति प्रेमी शिष्य थे परन्तु स्वामीजी प्रस्थान के समय भी चुपचाप चले जाते थे कि किसी को पता तक नहीं लगता था।

लम्बी दाढ़ी के क्या लाभ ?

फर्रूखाबाद की एक घटना है कि एक दिन तीसरे पहर चार-पांच मुसलमान स्वामीजी के पास आकर पूछने लगे कि आपके विचार में परमेश्वर ने मुहम्मद को हमारे लिए भेजा है या नहीं ? स्वामीजी उत्तर देते समय बोले, कि हमारे कथन से आप नाराज न होइएगा। हम तो मुहम्मद को अच्छा नहीं समझते। आप लोगो ने भी अच्छा नहीं किया जो उसके अनुयायी बन गए। जब चोटी के बाल कटवा डाले थे तो इतनी लम्बी दाड़ी रखने से क्या लाभ ?

दयालु दयानन्द

एक दिन ऐसा हुआ कि हजारों व्यक्ति स्वामी जी का उपदेश सुन रहे थे। उस समय एक पंडित ने खड़े होकर मूर्ति पूजा पर प्रश्न करना आरम्भ कर दिया। स्वामी जी भी सन्तोषजनक उत्तर दे रहे थे। बीच में ही काली के उपासक, शराब में मस्त एक ब्राह्मण ने उठकर दुर्वचन कहते हुए स्वामी-

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

जी पर जूता फेंका, जूता स्वामी जी तक न पहुंचकर बीच में ही गिर पड़ा। परन्तु इससे वहां बैठे लोगों की आँखों में खून उतर आया। उन्होंने उसे पकड़ लिया, लगे पीटने। स्वामी जी ने जब उसे पिटते देखा उन्हें उस पर बड़ी दया आई और बोले, हमें इसकी बात से कोई दुख नहीं हुआ और यदि जूता लग भी जाता तो भी कौन सा रामबाण था। इसने जो कुछ किया है अज्ञान और शराब के वश में किया है। इस पर दया करो और छोड़ दो। स्वामी जी के कहने से उसे छोड़ दिया गया।

शिवालय के स्थान पर पाठशाला

फर्रुखाबाद में स्वामी जी पाठशाला की स्थापना करने का प्रयत्न कर रहे थे। वहाँ के लाला बंसीलालजी एक प्रतिष्ठित पुरुष थे। उन्होंने एक शिवालय बनवाया। उसमें शिव की मूर्ति स्थापित करने को ही थे कि स्वामी जी का उपदेश सुनकर उनका निश्चय बदल गया। मूर्तिपूजा उन्हें वेद विरुद्ध दिखाई देने लगी और उन्होंने स्वामीजी से प्रार्थना करके शिवालय के स्थान पर पाठशाला स्थापित कर दी।

कानपुर में शास्त्रार्थ

जगह-जगह घूमते हुए वर्षा ऋतु के आरम्भ में स्वामी जी कानपुर आये। यहां उन्होंने विज्ञापन छपवाकर कई गप्पों का खण्डन किया। कानपुर में दो बड़े प्रतिष्ठित व्यक्ति थे। प्रयाग नारायण और गुरुप्रसाद। इन दोनों ने कैलाश और बैकुंठ नाम के दो मन्दिर बनवाये थे। जब वे दोनों स्वामी जी से मिले तो स्वामी जी ने उन्हें आदेश दिया। आपने लाखों रुपये लगाकर मन्दिर खड़े किये हैं। परन्तु यह तो बताइये कि इससे लाभ क्या होता है? अनाधिकारियों को खिला-पिलाकर ईंट-पत्थरों में व्यय करके इतना रुपया बर्बाद करने की बजाय बालक-बालिकाओं की पाठशाला खोल देते, देश में शिल्प-शालाएं स्थापित करते और समाज हित का काम करते तो कितना अच्छा होता। इस उपदेश से वे दोनों बहुत गुस्से हुए और उन्होंने शास्त्रार्थ के लिए लक्ष्मण शास्त्री और हलधर ओझा को तैयार कर लिया। काफी दिन शास्त्रार्थ चला लेकिन बीच में ही प्रतिनिधियों ने गड़बड़ करके बाहर जाकर अपने आपको

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

विजयी घोषित कर दिया और बाद में सहायक कलेक्टर मि० थेन जो कि संस्कृत भाषा के ज्ञाता थे और जिन्हें सर्व-सम्मति से उस शास्त्रार्थ का मध्यस्थ नियत किया गया था। उसके हस्ताक्षर से एक व्यवस्था लिखवाई गई जिस में मि० थेन ने लिखा कि मेरी सम्मति में शास्त्रार्थ के समय स्वामीजी दयानन्द सरस्वती संन्यासी की विजय हुई। उनकी युक्तियां वेदानुकूल थीं और इस व्यवस्था को समाचारपत्रों में छपवाकर प्रचारित किया। इससे स्वामीजी की सत्यता का सिक्का बैठ गया और कानपुर के लोग बड़े प्रभावित हुए।

कुकर्मी का भोजन नहीं खाना

एक दिन साहू श्यामसुन्दर ने, जो मुरादाबाद के रईस थे, परन्तु वेश्यागमनादि दुर्व्यसनों में ग्रस्त थे, स्वामीजी से प्रार्थना की कि महाराज आप मेरे घर पर चलकर भोजन कीजिये। स्वामीजी ने इस प्रार्थना को अस्वीकार किया। परन्तु उसी समय जब एक दूसरे सज्जन ने यही प्रार्थना की तो उसे स्वीकार कर लिया। साहू श्यामसुन्दर ने स्वामी जी को उपालम्भ दिया तो उस समय तो महाराज चुप रहे, किन्तु व्याख्यान में इस घटना का जिक्र करके और साहू साहब को सम्बोधन करके कहा कि जब तक तू कुकर्म न छोड़ेगा, हम तेरे घर पर जाकर भोजन न करेंगे।

रामलीला का विरोध

आश्विन वदी १ सं० १९२६ को श्री स्वामी जी रामनगर पहुँचे। पहली रात को, राजवाटिका के समीप, मिट्टी के एक ढेले को सिर के नीचे रख रेती ही में सो रहे, सवेरे नित्य कर्मों से निवृत्त हो जब एक स्थान पर विराजमान हुए तो दर्शकों का आना जाना आरम्भ हो गया। गंगा के तट पर राजा की हस्तिशाला थी। स्वामी जी उसी के एक स्थान में टिक गए। मूर्ति-पूजन का खण्डन रात-दिन होता रहता था। साथ ही लोगों को संन्ध्या आदि कर्म करने की प्रेरणा भी होती रही।

महाराज ईश्वरीनारायण सिंह जी को भी पता लग गया कि अतुल प्रतिभा का धनी संन्यासी यहाँ ठहरा हुआ है और प्रतिमा-पूजन आदि को वेदविरुद्ध बताता है। उन्होंने स्वामी जी के भोजन का पूर्ण प्रबन्ध करने की

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

आज्ञा कर दी और स्वामी जी को लिवा लाने के लिए एक चौबे को भेजा। महाराज ने कहा कि मुझे महाराज के समीप जाने की कोई आवश्यकता नहीं, परन्तु यदि उन्हें कुछ पूछना है तो वे, जब चाहें आ सकते हैं।

महाराजा ने स्वामी जी को राम-लीला देखने के लिए भी आहूत किया। परन्तु स्वामी जी वहाँ नहीं गये और बोले कि ऐसी लीलायें देखना संन्यासियों का काम नहीं।

काशी में

रामनगर में निवास करके स्वामी जी ने काशी के पण्डितों के विद्या-बल का, शास्त्र-सामर्थ्य और गति-मति का पूर्ण परिमाण जान लिया। उनकी कोटियों के दुर्गों के भेदों को समझ लिया। पौराणिक महादुर्ग के दो धुरंधर विद्वान् वीर—पण्डित ज्योति:स्वरूप और जवाहरदास जी—अपने पोषक बना लिए, और फिर एक अस्त्र-शस्त्र सम्पन्न सेनापति की भाँति, शास्त्रसंनद्ध होकर काशी जाने के लिए उद्यत हो गए। रामनगर से जब स्वामी जी चलने लगे तो महाराज ईश्वरीनारायणसिंह जी ने उन्हें कहला भेजा कि यहाँ से हमारी नौका में बैठकर जाइए और काशी जी में जाकर हमारे ही उद्यान में निवास कीजिएगा। परन्तु महाराज उनकी दोनों बातों को अस्वीकार कर यहाँ से चल पड़े।

स्वामी दयानन्द जी का काशी में आने का यह प्रयोजन था कि यहाँ के पण्डित समूह में उत्तेजना उत्पन्न करके उनमें आन्दोलन का भाव उत्पन्न करें। उन्हें जागृत अवस्था में लायें। जिससे काशी-वासी पण्डितगण अपने महत्त्व को, अपने सामर्थ्य को, अपने कर्त्तव्य-कर्म को और निरन्तर चले आने वाले अपने विमल यश को जान जायँ; अपने चित्त-दर्पण पर से पौराणिक परदे को उठाकर वैदिक धर्म के सच्चे स्वरूप का दर्शन कर सकें, आर्य जाति की वास्तविक दशा को अच्छी तरह देख सकें।

कार्तिक वदी २ सं० १९२६ को श्री स्वामी जी ने काशी नगर में राजा माधोसिंह के आनंदोद्यान में आसन किया। उनके शुभागमन का समाचार सारी काशी नगरी में तुरन्त फैल गया। पण्डित श्री जवाहरदास जी और ज्योति:स्वरूप जी को ज्योंही समाचार प्राप्त हुआ वे तत्काल महाराज के

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

स्थान पर मिलने आए। अन्य पण्डित लोग भी मण्डलियाँ बना कर आने और प्रश्न पूछकर अपने भ्रम निवारण कराने लगे। महाराज के समीप दिन भर विद्यार्थियों की, पण्डितों की, वाद-विवाद प्रिय विद्वानों और जिज्ञासु जनों की भारी भीड़ लगी रहती थी। लोग चिढ़ाने और खिजाने की भी चेष्टा करते थे। वे अकेले अपने अलौकिक साहस से आठ-आठ घण्टे तक लगातार वादी-दिग्गजों के साथ जूझते रहते थे, श्रोताओं को उपदेश देते चले जाते थे।

शास्त्रार्थ का आह्वान : दुष्टों के लिए हुङ्कारनाद

महाराज ने काशी-नरेश को कहला भेजा, 'आपका कर्त्तव्य है कि मूर्ति-पूजा आदि विषयों पर शास्त्रार्थ कराकर सत्यासत्य का निर्णय कराएँ।" इधर महाराजा स्वयं भी अखण्ड पुराण-खण्डन से घबरा उठे थे। इसलिए उन्होंने पण्डितों को बुलाकर शास्त्र-समर के लिए सुसज्जित होने की प्रेरणा की। पण्डितों ने महाराज से निवेदन किया कि स्वामी दयानन्द वेदों के प्रमाण पूछा करता है, इसलिए वेदों के प्रमाण आदि एकत्रित करने के लिए पन्द्रह दिन का अवकाश मिलना चाहिए। पण्डितों को मुंह-मांगा अवकाश मिल गया और वे शास्त्रार्थ में सफलता लाभ करने के ढंग सोचने लगे। स्वामी जी का विद्या-बल जांचने के लिए विद्यार्थी और पण्डित भी आते थे और अनेक प्रकार से प्रश्न करते करते अन्त में हार जाते थे; परन्तु वे उस अथाह ज्ञान-गंगा की थाह नहीं पा सकते थे। कहते हैं कि एक दिन, राजाराम शास्त्री भी गेरुएवस्त्र-धारण करके स्वामी जी के पाण्डित्य की परीक्षा लेने आए; परन्तु आगे वह पानी न था, जिसकी पेंदी तक वे पहुँच सकते।

पण्डित-मण्डिली ने कुछ बातें जानने के लिए शालिग्राम राजशास्त्री आदि चार पण्डितों को स्वामी जी के निकट भेजा। उन्होंने आकर नमस्कार आदि के अनन्तर कुछ प्रश्न किए, परन्तु उस समय उनको उत्तर देना उचित न समझा गया अतः वे लौट गए। नगर के कोतवाल महाशय स्वामीजी का बड़ा आदर करते थे। उनके आग्रह करने पर स्वामी जी ने पण्डितों को उत्तर देना मान लिया।

उन शास्त्रियों ने फिर आकर पूछा कि आप कितने ग्रंथ प्रामणिक मानते हैं? स्वामीजी ने उत्तर में चार वेद, चार उपवेद, छः वेदांग, छः उपांग, और

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

मनुस्मृति ये २१ ग्रंथ लिख दिये । उन्होंने फिर पूछा कि यही ग्रन्थ प्रामाणिक हैं इसमें क्या प्रमाण है ? मनुस्मृति में कितने श्लोक मानते हो ?

स्वामीजी ने कहा कि इन प्रश्नों का उत्तर शास्त्रार्थ के समय दिया जायगा । तत्पश्चात् पण्डित लोग वहाँ से चले गए ।

महाराजा ईश्वरीनारायणसिह ने पण्डितों की दान-दक्षिणा का सारा बोझा अपने ऊपर ले लिया और शास्त्रार्थ की तिथि कार्तिक सुदी द्वादशी संवत् १९२६ नियत कर दी । इसकी सूचना कलेक्टर महाशय को भी दी गई । इस पर उन्होंने कहा कि शास्त्रार्थ यदि आदित्यवार को होता तो हम भी सम्मिलित हो सकते थे । परन्तु वहाँ तो सोच समझकर, इसीलिए मंगलवार नियत हुआ कि राजकर्मचारियों की उपस्थिति में गोलमाल करना कठिन हो जायेगा । शास्त्रार्थ किस स्थान पर हो इसका निश्चय करने के लिए कोतवाल रघुनाथसहाय स्वामी जी के समीप आए । पूछने पर उन्होंने उनसे कहा कि विवश करके हमें कोई चाहे कहीं ले जाय परन्तु मैं संन्यासी हूँ, अपनी इच्छा से किसी के स्थान पर जाकर उत्तर-प्रत्युत्तर नहीं करूंगा । मैं शास्त्रार्थ के लिए किसी के भी स्थान पर नहीं जाया करता । यहाँ जिनका जी चाहे मेरे ही आसन के पास आकर प्रश्न पूछें ।

स्वामी जी का उत्तर सुन कर काशीराज ने भी आनन्द-उद्यान में अपने दल-बल सहित जाना स्वीकार कर लिया ।

स्वामी दयानन्द के साथ, काशी के सारे पण्डितों का शास्त्रार्थ होगा, इस समाचार की सारे नगर में धूम मच गई । घाटों पर, अन्न शालाओं में, पाठशालाओं में, मन्दिरों में, गृहस्थों के घरों में, गली-कूचे में, बाजार और कचहरी में जहाँ जाओ इसी नूतन विषय पर बात होती सुनाई देती थी । महात्मा जवाहरदास जी ने स्वामी जी को कहा—"काशी में तो अनेक पण्डित हैं, आप किसे-किसे जीतेंगे ? सबको कैसे परास्त करेंगे ?" उन्होंने उत्तर दिया, "काशी के सकल विद्वन्मण्डल में दक्षिणी बालशास्त्री ही ऐसा है, जो कुछ काल तक हमारे साथ वार्तालाप कर सकेगा । शेष तो सब काक-भाषा में—नवीन न्यायादि में—ही निपुण हैं । वेदार्थ में उनकी गति नहीं है ।"

कार्तिक सुदी द्वादशी, मंगलवार के दिन, प्रातःकाल ही से सारे काशी नगर में एक विचित्र हलचल मच गई । काशी नरेश के यहाँ से पालकियाँ,

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

चंवर, छत्र इत्यादि पण्डितों के निवास-स्थानों पर पहुँचाए जा रहे थे। विश्वनाथ और दुर्गा आदि के मन्दिरों में विजय के लिए प्रार्थनाएँ हो रही थीं। पण्डित लोग परस्पर मिलकर स्वामी जी को जीतने के लिए न्याय की पक्तियाँ, व्याकरण की फक्किकाएँ, वेदान्त की कोटियाँ, चातुर्य की अनेक चालें और प्रवचना की चोटें चलाने के ढंग सोच रहे थे; श्रुति, स्मृति आदि के प्रमाण एकत्रित करने में लगे थे।

काशीधाम में जहाँ प्रवर पण्डित निवास करते हैं वहाँ परले सिरे के दुर्दण्ड उपद्रवियों की कुछ न्यूनता नहीं। उस समय ऐसे लोग भी स्वामी-चरणों को पीड़ा देने के लिए, अपने षड्यन्त्र का ताना-बाना तन रहे थे।

पूर्वोक्त दृश्य को देख कर भक्त बलदेव का हृदय थरथरा उठा। उसने अति शीघ्रता से स्वामी जी के निकट पहुँचकर निवेदन किया—'महाराज! आज आपके स्थान पर सहस्रों मनुष्यों का जमघटा लगेगा। उसमें केवल हुल्लड़ मचाने के लिए भी कुछ उद्दण्ड जन आएंगे। महाराज ने मुस्कराकर कहा—"बलदेव! कुछ भी चिन्ता न कीजिए। योगीजनों का यह दृढ़ विश्वास है कि अविद्या की तमोराशि को सत्य का सूर्य, अकेला ही तुरन्त जीत लेता है। बलदेव! जो मनुष्य पक्षपात का परित्याग करके केवल लोकहित के लिए, ईश्वर की आज्ञानुसार सत्योपदेश करता है उसे भय कहाँ है? चिन्ता किस बात की है? एक मैं—आतमा—हूँ, एक परमात्मा है और एक ही धर्म्म है। दूसरा है कौन, जिससे डरें और काँपें? उन सबको आ जाने दो जो कुछ होगा उसी समय देख लिया जाएगा।"

महाराज ने इस प्रकार बलदेव को धैर्य्य प्रदान किया। फिर क्षौर कराकर स्नान किया। तत्पश्चात्, वे भोजन पाकर चटाई पर बैठ गए।

उधर पण्डितों को सवेरे से सुसज्जित होते दिन का तीसरा पहर आ गया। उस दिन पाठशालाओं में अनध्याय किया गया था। इसलिए नए और पुराने सभी विद्यार्थी, लम्बी-लम्बी पंक्तियाँ बाँध कर अपने-अपने गुरुओं के निवास स्थानों के आगे उपस्थित हो गए और जयध्वनि से ऊँची अट्टालिकाओं को प्रतिध्वनित करने लगे। नियत समय पर, शकुन मना और मंगलोपचार कर सभी पण्डितगण अपनी-अपनी पालकियों में आरूढ़ हो गए। उनके सिरों पर छत्र और चंवर झूलने लगे। गुरुजन की आज्ञा से विद्यार्थीगण, जय-नाद से

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

मन्दिर-मालाओं को और बाजार के दोनों ओर की दुकानों को निनादित करते पालकियों के आगे-आगे चलने लगे। पण्डितों की चढ़ाई को देखकर सारा नगर चलायमान हो गया। नाना भाँति के साम्प्रदायिक चिह्नों से सुसज्जित साधु-संन्यासी भी टोलियाँ बनाकर उसी ओर चलने लगे। ऐसा प्रतीत होता था कि सब सम्प्रदायों की समुच्चित शक्ति अकेले दयानन्द पर चढ़ आई है। सारा पौराणिक बल, एकाकी परमहंस पर एक बार ही टूट पड़ा है।

काशी-नरेश सहित सैकड़ों विद्वान् अद्वितीय दयानन्द से शास्त्रार्थ करने पर उतारू हुए। उस पण्डित-सैन्य के प्रसिद्ध महारथी, स्वामी विशुद्धानन्द जी, बालशास्त्री, शिवसहाय, माधवाचार्य, वामनाचार्य्य, ताराचरण, जयनारायण तर्कवाचस्पति, राधामोहन तर्कवागीश और अम्बिकादत्त जी आदि सत्ताईस-अठाईस विद्वान् थे। ये लोग अपनी-अपनी सेना-पंक्ति का संचालन करते बढ़ते चले आ रहे थे। परन्तु कोतवाल महाशय इन सब के पहिले ही श्री स्वामी जी के पास पहुँच गए। उन्होंने एक कोठरी से द्वार के निकट आसन बिछाकर उस पर स्वामी जी को बैठा दिया और उनके सामने एक आसन प्रतिपक्षी पण्डितों के लिए लगा दिया। काशी-नरेश के लिए भी एक अलग आसन स्थापित किया गया। कोतवाल महाशय का, इस प्रकार केवल तीन ही आसन लगाने का तात्पर्य यह था कि स्वामी जी के समीप एक समय में केवल एक ही पण्डित बैठे, जिससे कोई कोलाहल न होने पाए।

कोतवाल अभी आसन-व्यवस्था कर ही चुके थे कि इतने में उमड़ा हुआ पण्डित-पूर आ पहुँचा, और लगा सारे स्थान को प्लावित करने। उन्होंने आते ही भीतर आने के सभी मार्ग रोक लिए। वे स्वामी जी के सहायक पण्डित जवाहरदास जी तथा पण्डित ज्योतिःस्वरूप जी आदि को भी नहीं आने देते थे। स्वामी जी को एक भक्त ने पत्र लिख कर सूचित किया हमें जान-बूझकर भीतर आने से रोका जाता है। स्वामी जी ने तब कोतवाल को कहकर अपने सहायक परमहंसों को भीतर बुला लिया और पण्डित जवाहरदास जी तथा पण्डित ज्योतिःस्वरूप जी को अपने निकट बैठाया।

पण्डित ज्योतिःस्वरूप जी एक प्रतिष्ठित और धुरन्धर विद्वान् थे। उनकी विद्या का लोहा सारे पण्डित मानते थे। उन्होंने स्वामी जी के समीप बैठते समय यह कह भी दिया, "पण्डित लोग पहले हम से तो शास्त्रार्थ कर लें।

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

यदि फिर भी उनमें कुछ शक्ति शेष रह जाय तो पीछे से भले ही स्वामी जी से प्रश्नोत्तर करने को समुद्यत हों।"

ज्योति:स्वरूप जी काशीवासी पण्डितों की नस-नस और नाड़ी-नाड़ी को जानते थे। वे यह भी जानते थे कि कौन कितने पानी में है। इसलिए, उन्हें स्वामी जी के निकट बैठा देखकर पण्डितों का माथा ठनक गया। उनको अपने भेदों और चालों के प्रकट हो जाने का खटका हो गया। वे यह सोच ही रहे थे कि ज्योति:स्वरूप जी के पंजे से कैसे छूटें कि उसी समय, महाराज ईश्वरीनारायणसिंह आ पहुँचे। महाराजा को आते देख सारे पण्डितों ने उठकर उनको आशीर्वाद दिया और वे उनके साथ ही आगे बढ़ आए, यहाँ तक कि उन्होंने स्वामी जी को घेर लिया।

यदि वे लोग इस पहिले नियम को तोड़ने पर ही सन्तोष करते तो भी कोई बात न थी, परन्तु उनकी आँखों में तो ज्योति:स्वरूप जी का वहाँ बैठना काँटे की भाँति रड़क रहा था। उन्होंने आशीर्वाद देते समय महाराजा से कह दिया—"एक तो दयानन्द स्वयं सिंह के सदृश हैं, उसका परास्त करना दुष्कर है, दूसरे व्याघ्र समान ज्योति:स्वरूप उसके साथ बैठ गया है। उसकी उपस्थिति में तो किसी भी चाल से जय-लाभ करना सम्भव नहीं।

महाराज ने मर्म को समझ लिया और बैठते ही श्री जवाहरदास तथा श्री ज्योति:स्वरूप जी को कहा कि यह स्थान पण्डितों के लिए नियत है। आप इससे कुछ पीछे हट कर बैठें। इतने से भी प्रतिपक्षियों की सन्तुष्टि नहीं हुई। उनके संकेत से महाराजा ने ज्योति:स्वरूप जी को पकड़वा कर वहाँ से बाहर कर दिया।

स्वामी जी ने अपने सहायकों को अपमानित होते देखकर इस अन्याय का विरोध किया और उनकी इस धींगा-धींगी पर घृणा प्रकट की। परन्तु, वे तो सभी एक ही रंग में रंगे हुए थे। इसलिए फल कुछ भी न निकला। कोतवाल ने भी उपालम्भ रूप से कहा कि हमारा किया नियम तोड़ दिया गया है, और इतने पण्डित अकेले स्वामी जी को घेर कर बैठ गए हैं, यह सब अनुचित है। परन्तु उस समय तो उचितानुचित की चर्चा कोई भी न सुनता था।

श्री स्वामी जी ने महाराजा को कहा कि अपने सरस्वती-भण्डार से पुस्तकें मंगा लीजिए। महाराजा के भाई ने कहा कि पुस्तकें क्या करनी हैं ? यों ही

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

शास्त्रार्थ होगा। स्वामी जी ने फिर कहा कि क्या वेद मंगा लिए हैं ? इस पर महाराजा ने कहा कि वेद की पुस्तकों की कोई आवश्यकता नहीं, वे तो हमारे पण्डितों के कण्ठाग्र हैं।

तत्पश्चात् कोतवाल, श्री रघुनाथसहाय जी ने सबको सुना कर कहा— "शास्त्रार्थ का यह नियम निश्चित हो गया है कि श्री स्वामी जी के साथ एक समय में एक ही पण्डित शास्त्रार्थ करेगा। इस बीच में दूसरा कोई भी न बोले।"

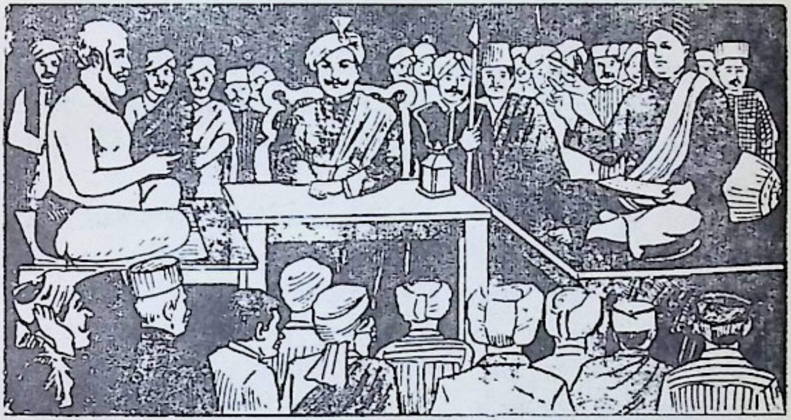

काशी नरेश की अध्यक्षता में बनारस के पन्डितों से महर्षी **का शास्त्रार्थ:**
एक ओर सारे पण्डित, एक ओर अकेलदयानन्द।

चार घण्टों तक निरन्तर शास्त्र-समर में पौराणिक दल का प्रत्येक अगुआ बढ़कर स्वामी जी से युद्ध करता रहा और अन्त में महाराज की अकाट्य युक्तियों के तीक्ष्ण तीरों से, उनके प्रबल प्रमाणों के परमास्त्रों से हत-प्रतिहत होकर—परास्त होकर—पीछे लौट आता रहा। इतनी बड़ी संख्या में, ऐसी बड़ी सभा में, इतना बड़ा उद्योग करने पर भी इतने बड़े विद्वानों का, इस प्रकार, ऐसा पराजय इस नगरी में पहले कदाचित् ही हुआ होगा।

सारे महारथी सकल सामर्थ्य से भी जब सफल न हुए तो काशी के महा-

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

मल्लों ने कूटनीति और दांव-पेच चलाने की सोची। उस समय सूर्य अस्त हो गया। धीरे-धीरे अन्धकार गाढ़तर होता चला जा रहा था। ऐसे समय में, माधवाचार्य ने वेद के नाम से दो पन्ने निकाल कर पण्डितों के मध्य में रख दिये और कहा—"यहाँ पर लिखा है कि, यज्ञ की समाप्ति पर यजमान दसवें दिन पुराणों का पाठ श्रवण करे। अब स्वामी जी ! बताइये कि यहाँ 'पुराण' किसका विशेषण है ?

स्वामी जी: – "आप पाठ पढ़ कर तो सुनाइये।"

विशुद्धानन्द जी ने पन्ने पढ़कर स्वामी जी की ओर किये और कहा—आप ही पढ़ लीजिये।"

स्वामी जी ने पन्ने विशुद्धानन्द जी को लौटा दिये और कहा कि आप ही पढ़कर सुनाइये; विशुद्धानन्द जी ने फिर उन्हें स्वामी जी के हाथ में दे दिया और कहा कि मैं चश्मे के बिना नहीं पढ़ सकता, इसलिए आप ही को पढ़ना होगा।

स्वामी जी ने वे पन्ने हाथ में ले लिये परन्तु अन्धेरे के कारण अक्षर स्पष्ट नहीं दिखाई देते थे, इसलिए दीपक मंगाया गया। उन पत्रों पर वेद का कोई नाम न था। मण्डल, अध्याय और मन्त्र आदि का भी कोई पता न लगता था। इसलिए स्वामी जी "दशमेऽहनि किंचित्पुराणमाचक्षीत" इस पाठ के पूर्वापर को ग्रन्थ के नाम और प्रकरण को सोचने लगे। स्वामी जी को विचारते हुए कुछ बहुत पल न होने पाये थे कि श्री विशुद्धानन्द जी यह कह कर उठ खड़े हुए कि अब सन्ध्या का समय हो गया है; इन्हें अधिक कष्ट भी नहीं देना चाहिये। परन्तु स्वामी जी उनका हाथ पकड़ कर बल देते थे कि बैठ जाइये। निर्णय किये विना, बीच ही में उठ खड़े होना आप-ऐसे विद्वानों को कदापि उचित नहीं। परन्तु विशुद्धानन्द जी ने बैठना स्वीकार न किया और उपहास में स्वामी जी की पीठ पर हाथ फेर कर कहने लगे कि अब बैठिये, जो कुछ होना था सो तो हो चुका।

विशुद्धानन्द जी के सङ्केत से महाराजा ईश्वरीनारायणसिंह जी भी उठ खड़े हुए और अपनी जय प्रख्यात करने के लिए कर-तालिका बजाने लगे। महाराजा के अनुकरण में सारे पण्डित तालियाँ पीटते और जय-जयनाद करते हुए एकाएक उठ खड़े हुए। **पचास-साठ सहस्र मनुष्यों के सभा-सागर में बड़ा**

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

भारी क्षोभ उत्पन्न हो गया। सर्वत्र गड़-बड़ मच गई। उस समय, अविवेकी मनुष्यों ने स्वामी जी महाराज पर ईंटें मारीं, पत्थर और कङ्कर फेंके, गोबर और जूते उछाले, अन्य अनेकविध अवहेलना और अपमान किया, परन्तु महाराज के प्रशान्त चित्त-दर्पण पर उदासीनता की यत्किंचित् भी छाया न आई।

कोतवाल महाशय ने उद्दण्ड जनों को वहां से खदेड़ दिया और महाराज को कहा कि ताली पीटने का कार्य आपने अनुचित किया है। उन्होंने उत्तर दिया कि प्रतिमा-पूजन करना हमारा-तुम्हारा परस्पर का धर्म्म है। उसकी रक्षा के लिए शत्रु से जैसे भी जय लाभ हो करना चाहिये।

पक्षपाती लोगों और अबोध जन-समुदाय ने अपनी बड़ी भारी जीत समझी। उन लोगों ने सारे नगर को जयकार से गुंजा दिया। परन्तु फिर भी ऐसे बीसियों विचारवान् मनुष्य वहीं उपस्थित थे कि जिन्होंने पण्डितों की चाल को ताड़ लिया, और स्वामी जी के साथ जो अनीति, अन्याय और धोखा किया गया था, उस पर घृणा प्रकट की।

पण्डित ईश्वरसिंह नाम के एक निर्मल सन्त काशी में वास करते थे। वे वेदान्त के निष्ठावान् विद्वान् थे। उन्होंने उस दिन आनन्दोद्यान से लौटता हुआ जन-समुदाय देखा। उसमें विद्यार्थी, पण्डित और साधारण लोग स्वामी महाराज को अनेक कु-वचन बोलते हुए जा रहे थे। ईश्वरसिंह जी ने वहाँ यह भी सुना कि स्वामी जी पर लोगों ने आज ईंटें, पत्थर, गोबर और जूते फेंके हैं, उन्हें अगणित अपशब्द कहे हैं। उनके चित्त में, उसी समय, यह संकल्प उत्पन्न हुआ कि चलो इसी समय चलकर दयानन्द जी की दशा देखें। यदि इस महा निरादर से, घोर अपमान से, विपरीत नीति से, निष्ठुर अन्याय से उनका चित्त विचलित न हुआ तो समझेंगे किवह सच्चा ब्रह्मज्ञानी और एक पहुँचा हुआ महात्मा है।

जिस समय ईश्वरसिंह जी आनन्दोद्यान में पहुँचे तो महाराज चांद की चांदनी में टहल रहे थे। ईश्वरसिंह जी को आते देखकर स्वामी जी ने मुस्कराते हुए, बड़े आदर से उनका स्वागत किया। दोनों मिलकर बड़ी रात तक आत्मा और परमात्मा-सम्बन्धी विषयों पर वार्तालाप करते रहे। इतनी लम्बी बातचीत में, ईश्वरसिंह जी को स्वामी जी के चन्द्रसमान चमकते हुए

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

मुखमण्डल पर उदासीनता का एक भी धब्बा दिखाई न दिया। उनकी मुस्कराहट की चन्द्रछटा में उन्होंने किंचितमात्र भी न्यूनता न पाई। उनके हृदयगत साहस और उत्साह की ज्वालमाला-संकुल ज्वलन्त अग्नि से एक बार भी तो लम्बी सांस का धुआं न निकला। ध्यानपूर्वक देखने पर भी उनके विमल चिदाकाश में, निराशा-बदली की एक भी टुकड़ी न दीख पड़ी। उन्होंने लोगों के अन्याय और अत्याचार की कुछ भी तो चर्चा न चलाई।

पण्डित ईश्वरसिंह जी ने स्वामी दयानन्द के चरण छूकर कहा—"महाराज! आज तक मैं आपको वेद-शास्त्र का ज्ञाता, एक पण्डित मात्र समझता रहा हूँ। परन्तु आज पण्डितों के घृणित उत्पात से, अपमान से, और विरोध की घोर आँधी से आपके हृदय-सागर में राग-द्वेष की एक भी लहर उठते न देख, मुझे विश्वास हो गया है कि आप वीतराग महात्मा और सिद्ध पुरुष हैं।" तत्पश्चात् सन्त ईश्वरसिंह जी महाराज से विदा होकर अपने स्थान को चले आये।

स्वामी जी महाराज शास्त्रार्थ के पश्चात् भी सत्योपदेश देते रहे और अनेक सज्जन उनके सत्सङ्ग से लाभ उठाते रहे। यद्यपि काशी में घोषणा हो गई थी कि दयानन्द के पास कोई न जाय और जो जायगा वह पातकी हो जायगा, परन्तु जिज्ञासुओं ने जाना न छोड़ा। वाद-विवाद करने वाले पण्डित भी आते ही रहे।

इस्लाम का विरोध

काशी में स्वामी जी मुसलमानी मत की भी त्रुटियाँ दिखाया करते थे। इससे कुछ मुसलमान बहुत रुष्ट हो गये थे। एक दिन सायं-काल, महाराज गङ्गा-तट पर आसन लगाये बैठे थे। उसी समय, दैव-योग से मुसलमानों की एक मण्डली भी वहाँ आ निकली। उस टोली में बहुत से मनुष्यों ने स्वामी जी को पहचान कर कहा कि यह वही बाबा है, जो कुछ दिन हुए हमारे मन के विरुद्ध व्याख्यान दे रहा था। उनमें से दो मनुष्य बहुत अधिक आवेश में आकर आगे बढ़े और स्वामी जी को उठाकर गङ्गा में फेंकने का यत्न करने लगे। उन दोनों व्यक्तियों ने दोनों हाथों से स्वामी जी की दोनों भुजायें, कन्धों के पास से दृढ़तापूर्वक पकड़ लीं। वे उन्हें झुलाकर गङ्गा धारा में

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

फेंकना ही चाहते थे कि स्वामी जी ने अपनी दोनों भुजायें सिकोड़ कर अपने शरीर के साथ लगा लीं और वे बलपूर्वक आगे को उछल कर दोनों मनुष्यों हित पानी में कूद पड़े। उन दोनों व्यक्तियों के हाथ कुछ काल तक तो शिकञ्जे में कसे रहे, परन्तु नदी में डुबकी लगाते समय, महाराज ने उन पर दया दिखाकर उन्हें मुक्त कर दिया। वे दोनों मनुष्य बड़ी कठिनता से पानी से बाहर निकले और अपने साथियों के साथ, हाथ में मिट्टी के ढेले आदि लिये, बड़ी देरतक नदी-तट पर खड़े देखते रहे कि वह बाबा सिर निकाले तो उसे मारें! स्वामी जी भी उनकी इच्छा को जानते थे। इसलिए, वे प्राणों को रोक पानी की पेंदी पर पद्मासन लगाकर बैठे रहे। अंधेरा हो जाने पर उस मण्डली ने मन में समझ लिया कि वह बाबा डूब गया है। इसलिए वे चले गये और स्वामी जी भी जल से निकल अपने आसन पर आ विराजे।

निर्भयता

बनारस के बहुत से गुण्डे स्वामी जी के वध के लिए षड्यन्त्र रच रहे थे। उनकी इस दुर्भावना का पता, घुणाक्षर-न्याय से, बाबा श्री जवाहरदास जी को भी लग गया। वे दौड़े हुए स्वामी जी के पास आये और समाचार सुनाकर बड़ी चिन्ता प्रकाशित करने लगे। स्वामी जी ने उन्हें कहा—"आप घबराये नहीं, यह कोई नई बात नहीं है। मेरे साथ तो ऐसी बातें बहुत बीत चुकी हैं। जिन दिनों मैं घर में रहता था, उन दिनों, हमारे एक पड़ोसी भूमिहार ने हमारे एक खेत पर अपना अधिकार कर लिया। पिता जी ने जब पड़ोसी की इस धींगा-धींगी की बात मुझे सुनाई तो मैं आवेश से हाथ में तलवार लेकर उनपर जाटूटा। यद्यपि वे कई मनुष्य थे, परन्तु मेरे साहस के आगे उनके पाँव उखड़ गये और वे भाग निकले। अब भी, यदि यहाँ के गुण्डे इकट्ठे दस-पन्द्रह भी मुझ पर आक्रमण करेंगे तो उनको शान्त करने के लिए मैं अकेला ही पर्याप्त हूँ।"

हुङ्कारनाद

महाराज का हुंकारनाद ऐसा ऊंचा और तीव्र होता था कि पास बैठों को कानों में उगलियाँ दे लेनी पड़ती थीं। एक दिन महाराज गम्भीर मुद्रा में हंस

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

और हस्ती की चाल चलते भ्रमण करने जा रहे थे। उसी समय एक हट्टा-कट्टा, डण्डपेल, महामल्ल समान, बलवान् मनुष्य उनके पीछे हो लिया। उसके हाथ में एक सुदृढ़ लठ्ठ भी था। जब महाराज ने पीछे पलट कर दृष्टि फिराई तो वह मनुष्य उ हें घातक स्वभाव का जान पड़ा। श्री महाराज ने, वहाँ ठहरकर हुंकारनाद ऐसा गुँजाया कि वह उद्दण्ड मनुष्य भयभीत होकर, चीत्कार करता हुआ पिछले पाँव भाग गया।

प्रयाग के कुंभ मेले में

संवत् १६२६ के माघ मास में स्वामी जी प्रयाग आये और गंगा के किनारे ही टिक गए। वहां बड़ी धूमधाम से अपने प्रचार का प्रारम्भ कर दिया। सारे मेले में स्वामी जी के प्रचार की काफी धूम थी और लोग उनके प्रचार से काफी प्रभावित हो रहे थे। एक दिन स्वामी जी गंगातट पर बैठे हुए प्रकृति का स्वाभाविक सौन्दर्य देख रहे थे। उस समय उनके सामने एक स्त्री मरा हुआ बच्चा हाथों में उठाये गंगा में प्रविष्ट हुई। कुछ गहरे जल में जाकर उसने बच्चे के शरीर पर लपेटा हुआ कपड़ा उतार लिया और बालक के निर्जीव शरीर को हाय-हाय करके पानी में छोड़ दिया। स्वामी जी महाराज ने जब देखा कि वह बच्चे के शरीर पर लपेटे हुए कपड़े को धोकर वायु में सुखाती और रोती हुई घर को जा रही है तो उन्हें बड़ा दुःख हुआ। और सोचने लगे कि मेरा देश इतना निर्धन और कंगाल है कि माता अपने कलेजे के टुकड़े को तो नदी में बहा चली है पर उसके वस्त्र इसलिए नहीं बहाये कि मिलना कठिन है। तब से स्वामी जी ने प्रण किया कि कुछ काल में इन्हीं की लोगों की भाषा में प्रचार करके इनका दुःख दूर करने का प्रयत्न करूंगा।

मस्तक-शृङ्गार या आत्म-शृङ्गार

प्रयाग में महाराज के पास नाना प्रकार के तिलकधारी लोग बैठे थे, और स्वामीजी उन्हें कह रहे थे—मस्तक का शृंगार करने की अपेक्षा ईश्वरोपासना द्वारा आत्मशृंगार किया करो। ऐसा तिलक लगाने से तुम्हारा क्या प्रयोजन है ? आडम्बर रचना महात्माओं का काम नहीं है–शोक, महाशोक !

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

तिलक आदि चिन्ह बनाने में लोगों की रुचि है, योगाभ्यास में नहीं। मूर्खों ! जितने समय में तुम यह तिलक लगाते रहे, इतने समय में गायत्री क्यों न जप ली।

स्वामीजी पर मंत्र प्रयोग

प्रयाग से स्वामी जी मिर्जापुर आये। वहां बालकृष्ण दास नाम का एक वैरागी महन्त रहता था। उसने महाभारत में प्रक्षिप्त निकालने के प्रयत्न में भगवद्गीता को भी निकाल दिया। एक धनी व्यक्ति जिसका नाम सुगन्धि लाल था गीता का बड़ा भक्त था। उसने स्वामी जी से आकर कहा, स्वामी जी बोले गीता को प्रक्षिप्त कहना सत्य नहीं है। अगर वे चाहें तो इसपर मुझसे शास्त्रार्थ कर लें। पर वे महन्त नहीं आये। उन्हीं दिनों एक ओझा मन्त्र शास्त्री मिर्जापुर में आकर ठहरा हुआ था। उसने प्रसिद्ध कर दिया कि मेरे पास भी सिद्ध मन्त्र-तन्त्र हैं। यदि कोई उन्हें पुरषचरण करायें तो २१वें दिन निश्चय ही दयानन्द का देहपात हो जायेगा। एक सेठ ने ओझा जी से कह दिया कि जो भी खर्च हो मुझसे ले जाइए लेकिन उस दयानन्द को मार डालिये। वह मन्त्र शास्त्री स्वामी जी पर मन्त्र प्रयोग करने लगा। इसकी खबर लोगों ने स्वामी जी को भी दे दी। परन्तु वे जरा भी विचलित नहीं हुए। दैवयोग ऐसा हुआ कि मंत्र प्रयोग करते हुए अभी तीन-चार दिन भी नहीं हो पाये थे कि यह प्रयोग कराने वाले सेठ के गले पर एक फोड़ा निकल आया और वह दिनों दिन भयंकर होता चला गया। यहां तक की उसको खाने पीने, थूकने ओर बोलने में भी बड़ा कष्ट होने लगा। जब ओझा उसके पास गया और बोला कि सेठ जी प्रयोग समाप्ति का दिन आ गया है और बलिदान की सामग्री तैयार कर दीजिये। सेठ जी बोले, भई मैंने कहा था दयानन्द का सिर गिराने को तुम तो मेरा ही गिराने लगे। कृपा करके पुरषचरण बन्द कर दो। आखिर उसे बन्द कर देना पड़ा।

स्वामी जी की हुंकार गर्जना भी बड़ी तेज हुआ करती थी। मिर्जापुर की बात है एक रात छोटू गिर ने जो कि स्वामी जी से बहुत द्वेष करता था दो बलिष्ठ आदमी स्वामी जी को तंग करने के लिए भेजे। उस समय वे कुछ शास्त्रीय रहस्य समझा रहे थे। ये गुंडे जाकर बारबार हंसने लगे। एक-दो

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

बार तो स्वामी जी ने उन्हें कोमल शब्दों में समझाया कि जब टलने में नहीं आये तो स्वामी जी ने जोर की हुंकार गर्जना की। ऐसी जोर की आवाज सुनकर दोनों ही गुंडे मूर्छित होकर जमीन पर गिर पड़े। उन्हें जल के छींटे देकर सचेत किया गया। उस समय वे पसीना-पसीना हो रहे थे। स्वामी जी ने उन्हें समझाया, संन्यासी लोग किसी को मारा पीटा नहीं करते इसलिए डरो मत। अपने कपड़े संभाल लो और चले जाओ।

काशी नरेश का प्रायश्चित

जब स्वामीजी मिर्जापुर में पाठशाला स्थापित करने के बाद फिर काशी लौटे तो महाराजा ईश्वरी नारायणसिंहजी ने अपने किये का प्रायश्चित करने के लिए स्वामी जी को अपने महल में बुलवाया। स्वामी जी के आते ही महाराज उठ खड़े हुए। स्वामी जी का स्वागत किया और सम्मानपूर्वक भीतर लाकर उन्हें सोने के सिंहासन हर बैठाया और माला आदि से उनका सत्कार किया। और बोले हमारे कुल में मूर्तिपूजा की परम्परा चली आती है और मैं भी बचपन से ही कुल धर्म का पालन कर रहा हूँ। इसी धर्मानुराग के कारण शास्त्रार्थ में मुझसे आपकी अवज्ञा हुई। आप संन्यासी हैं, क्षमा कर दीजिये। स्वामी जी ने गम्भीर भाव से कहा, हमारे मन में इन बातों का लेश मात्र भी संस्कार नहीं है। बाद में और भी बहुत सी बातें होती रहीं और महाराज ने अन्त में बहुत सी रजत मुद्राएं आदि देकर स्वामी जी को विदा किया।

मनकी बात जान ली

स्वामी जी के निकटवासी भक्त इस बात का विश्वास करते थे कि स्वामी जी चाहें तो उनके मनोरथों और संकल्पों को जान सकते हैं। एक दिन की बात है वहां स्वामी जी के रसोइये का चाचा आया। और रसोइये से कहने लगा कि स्वामी जी के भोजन कर चुकने पर ही तुम भोजन करते होंगे। इस प्रकार तो रसोई झूठी हो जाती है। इसलिए तुम लकीर निकाल लिया करो और उस लकीर से बाहर ही उन्हें भोजन दिया करो। उस समय स्वामी जी स्नान करने गए हुए थे। जब स्नान करके आये तो चौके के बाहर ही बैठ गए और कहने लगे हमें भोजन यहीं दे दो। रसोइया बोला, भगवन् आगे तो आप

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

चौके में बैठकर भोजन करते थे। अब क्या बात हो गई कि आप चौके से बाहर बैठ गए हो। स्वामी जी बोले, 'तुम्हें और तुम्हारे चाचा को बिरादरी से बाहर निकाले जाने का भय है न। और मैं कहीं भी भोजन पा लूं, मुझे किसी का डर नहीं है। सुनते ही रसोइये को जैसे काठ मार गया। उसे बड़ा आश्चर्य हुआ कि उन्होंने हमारे मन की बात कैसे जान ली ?

दलितों की चिंता से विकल

एक रात्रि को महाराज उठ कर इधर-उधर टहलने लगे। उनके पाँव की आहट सुन कर एक कर्मचारी की भी आँख खुल गई। उसने पूछा, "महाराज कोई कष्ट है ?" उन्होंने एक लम्बी साँस खीची और बोले साइई लोग दलितों को ईसाई बनाने का भरसक यत्न कर रहे हैं और रुपया पानी की तरह बहा रहे हैं। इधर हिन्दूओं के धर्म नेता हैं जो कुम्भकर्ण की नींद सो रहे हैं, यही चिन्ता मुझे विकल कर रही है।" यह घटना दानापुर की है।

श्री केशवचन्द्र सेन से भेंट

स्थान-स्थान पर घूमते हुए स्वामी जी महाराज संवत् १९२९ में कलकत्ता पहुँचे। स्वामी जी के पधारने का समाचार सारे नगर में फैल गया और वहां पर भी सत्संग उपदेश आदि होने लगे। स्वामी जी ने यहां योगाभ्यास करने और गायत्री का अध्ययन करने का उपदेश दिया। बहुत से आसन भी लगाकर दिखाये। जिस समय स्वामी जी कलकत्ता में थे तब श्री केशवचन्द्र सेन वहां नहीं थे। इसलिए जब वे आये तो महाराज से मिलने के लिए प्रमोद कानन में गए। स्वामी जी ने उनका नाम आदि कुछ नहीं पूछा। बातचीत के बीच सेन स्वामी जी से बोले—आप कभी केशवचन्द्र सेन से भी मिले हैं।

—हां, मिला हूँ।

—वह तो कलकते में नहीं थे। आप उनसे कब मिले ?

—स्वामी जी हंसकर बोले, अभी मिल रहा हूं और आप ही केशवचन्द्र सेन हैं।

—यह आपने कैसे जान लिया कि मैं ही केशवचन्द्र सेन हूं ? स्वामी जी ने उत्तर दिया जैसी बात आपने की है ऐसी किसी दूसरे की नहीं हो सकती।

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

स्वामीजी की इस उहा शक्ति से वे बड़े प्रसन्न हुए जब उनकी उक्तियाँ सुनीं और अपरिमित प्रतिभा का परिचय पाया तो सेन बोले, शोक है कि वेदों का अद्वितीय विद्वान अंग्रेजी नहीं जानता अन्यथा इंग्लैंड जाते समय भी मेरा इच्छानुकूल साथी होता। स्वामीजी भी हंसकर बोले, शोक है कि ब्रह्म समाज का नेता संस्कृत नहीं जानता और लोगों को उस भाषा में उपदेश देता है जिसे वह समझते ही नहीं हैं। पर स्वामीजी ने सेन की दो बातें स्वीकार कर लीं। एक देश भाषा में व्याख्यान देना और दूसरी सभा आदि में वस्त्र आदि धारण करके जाना।

मुसलमान का आदर

एक दिन स्वामीजी अपने स्थान पर विराजमान थे, उनके पास अनेक जिज्ञासु लोग अपना सन्देह मिटा रहे थे। उस समय एक मुसलमान सज्जन वहाँ आये। वे सत्संग में तो आना चाहते थे परन्तु मकान के भीतर आने में झिझक रहे थे। स्वामीजी ने उन्हें आदर से कहा, बिना संकोच भीतर चले आइये और पास आकर बैठिए। मैं ऐसे तुच्छ भेद-भाव को अच्छा नहीं समझता। उस मुसलमान सज्जन को स्वामीजी के सत्संग में बहुत प्रसन्नता हुई।

स्वामीजी बहुत रात रहते उठ जाते और ध्यानारूढ़ हो जाते, फिर शौच आदि के लिए बाहर दूर जाते, स्नान कुएं पर करते। नित्य कर्मों से निवृत्त होकर ११ बजे तक सत्संग लगाते। उसके बाद भोजन करके थोड़ा विश्राम करते और फिर उपदेश कार्य में लग जाते। रात के ८ बजे तक सत्संग लगा रहता। इस प्रकार स्वामी जी तीन महीने तक कलकत्ता वासियों को कृतार्थ करते रहे।

सर सैयद अहमद खाँ से भेंट

हुगली से स्वामीजी भागलपुर, छपरा, मिर्जापुर और कानपुर होते हुए फर्रूखाबाद आये और पाठशाला में ठहरे। इस बार स्वामीजी की भेंट संयुक्त प्रान्त (अब उत्तर प्रदेश) के छोटे मेयर महोदय से और उसी प्रान्त के शिक्षा विभाग के डाइरेक्टर कमसन से हुई। स्वामीजी के हृदय में गो-रक्षा के लिए

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

बड़ा गहरा भाव था इसलिए बातचीत में उन्होंने लाट महोदय से कहा अब आप स्वदेश यात्रा करने वाले हैं वहां जाकर आप भारत सचिव की सभा में सम्मिलित होंगे। उस समय भारत के हित का ध्यान अवश्य रखियेगा। गो-वध बन्द कराने का जरूर प्रबन्ध करियेगा। यहीं स्वामीजी की सरसैयद अहमद खां से भेंट हुई और बड़े स्नेहपूर्ण वातावरण में दोनों की बातचीत हुई। सरसैयद अहमद खां स्वामीजी की सेवा में प्रायः रोज ही आया करते थे। उन्हें स्वामीजी से बड़ा अनुराग हो गया था और स्वामीजी भी उन्हें बहुत आदर देते थे।

वृन्दावन में शास्त्रार्थ का चैलेंज

वहाँ से स्वामी जी अलीगढ़, हाथरस, आदि होते हुए वृन्दावन आये और उनका विचार था कि रंगाचार्य से शास्त्रार्थ किया जाये। स्वामी जी की आज्ञा से श्री महबूब मसीह जो चुंगी के सुपरिटेंडेंट थे और स्वामी जी के बड़े भक्त थे ने आर्य भाषा और उर्दू में विज्ञापन छपाकर वृन्दावन में सब जगह लगवा दिये। इसमें कहा गया था कि मूर्तिपूजन और अवतारवाद सिद्ध करने का जिसे भी साहस हो वह आकर शास्त्रार्थ कर ले। रंगाचार्य जी के पास अलग से एक लिखित पत्र भी भेजा गया। रंगाचार्य जी टाल गये और बुद्धिमान लोगों को पूर्ण विश्वास हो गया कि रंगाचार्य जी स्वामी जी के सामने आने से डरते हैं।

मथुरा में

जिन दिनों स्वामी जी मथुरा में थे। मथुरा की पण्डित मण्डली शुरू में तो शास्त्रार्थ करने की बड़ी गप्पें हांकती रही परन्तु उनके सम्मुख कोई नहीं आया। एक दिन कुछ मनुष्यों की उत्तेजना से ४००-५०० पंडित मोटे-मोटे लठ्ठ लिये स्वामी जी के निवास स्थान पर आ पहुँचे। स्वामी जी के सेवकों ने पंडों को ठीक करने के लिये उनसे आज्ञा माँगी परन्तु स्वामी जी बोले इन पंडा लोगों की धर्मान्धता पर आप लोगों को कभी क्रोध नहीं करना चाहिए। हमारे यहाँ आने का इतना तो लाभ हो ही गया कि इन आलसियों में कुछ तो चेतना आई। अन्यथा ये तो खा-पीकर पड़े रहते हैं।

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

मथुरा में एक मांगेलाल नाम का दुष्ट मुबीन था जो स्वामी जी का बड़ा कट्टर द्वेषी बन गया। उसने उनके नाम पर लांछन लगाने की सोची। एक दिन जब स्वामी जी सेठ लक्ष्मीदास के मकान पर व्याख्यान दे रहे थे। एक कसाई और एक शराब वाला वहाँ आया और बोला, ऐ स्वामी, तुम्हारी तरफ हमारा बहुत दिनों का लेखा हो गया है। दाम देकर चुका क्यों नहीं देते हो। यह सुनते ही वहाँ उपस्थित लोगों की आँखों में खून उतर आया। पर स्वामी जी ने सबको शान्त किया और सभा समाप्त होने के बाद बुलाकर पूछने पर उन्होंने सच्ची बात बता दी और स्वामीजी से क्षमा माँगी।

योगबल का चमत्कार

प्रचार करते हुए स्वामी जी काशी और प्रयाग आये। इस पर अनेक भद्र पुरुषों ने स्वामी जी से योग के साधन सीखे और उनको बड़ा भारी लाभ हुआ। पंडित ठाकुरप्रसाद जी के हृदय में स्वामी जी की योग मुद्रा देखने की बड़ी प्रबल इच्छा हुई। एक दिन स्वामी जी के सेवकों से पूछ कर वे उस कुटिया के भीतर दरवाजे पर जा खड़े हुए जिसके अन्दर स्वामी जी ध्याना-वस्थित थे। दरवाजे बन्द थे लेकिन उनके छिद्रों में से महाराज की आकृति स्पष्ट दिखाई पड़ती थीं। वे बहुत देर तक स्वामी जी के दर्शन करते रहे। उन्होंने यह भी देखा कि महाराज धीरे-धीरे भूमि से ऊपर उठ कर आकाश में स्थित हो गये हैं।

विष मिश्रित मिठाई

एक दिन रायबहादुर पण्डित सुन्दरलाल मित्रों के साथ स्वामी जी के पास गये। स्वामी जी उस समय ध्यान में थे इसलिए वे सब चुपचाप बैठे रहे। कोई आध घण्टे के बाद स्वामी जी भीतर से बाहर आये। सब सज्जनों ने झुककर नमस्कार किया। उस समय स्वामी जी अपने आप ही हँस रहे थे। पण्डित सुन्दर लाल जी ने पूछा, स्वामी जी आप किस बात पर हँस रहे हैं। वे बोले, एक आदमी इधर आ रहा है, कुछ देर ठहर जाइये। उसके आने पर आपको एक तमाशा दिखाई देगा। कोई आधी घड़ी के बाद ही एक ब्राह्मण मिठाई लेकर आ पहुँचा और स्वामी जी नमो नारायण, करके उसने

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

मिठाई भेंट की और बोला इसमें से कुछ थोड़ा भोग लगाइये। स्वामी जी ने उससे कहा लो थोड़ी सी मिठाई तुम भी खाओ। पर उसने न ली। पर स्वामी जी ने उसे डाँट कर कहा, लेते क्यों नहीं हो। वह काँप तो गया पर मिठाई लेने से झिझकता ही रहा। स्वामी जी बोले यह ब्राह्मण हमारे लिए विष-मिश्रित मिठाई लाया है। पण्डित सुन्दरलाल जी पुलिस को बुलाने लगे। परन्तु स्वामी जी ने रोक दिया और बोले, देखो यह अपने पाप के कारण कितना काँप रहा है। इसे काफी दण्ड मिल गया है। इसलिए पुलिस न बुलायें। उस ब्राह्मण को छोड़ दिया गया। बाद में जानने के लिए उस मिठाई में से थोड़ा-सा अंश पण्डित सुन्दरलाल जी ने वहाँ एक कुत्ते के सामने फेंका। वह कुत्ता मिठाई खाते ही छटपटाते हुए मर गया।

बम्बई में वैष्णव मत का खण्डन

जिन दिनों स्वामी जी गंगातीर पर धर्म प्रचार कर रहे थे। बम्बईवासी उनको बुलाने के लिए बड़े प्रयत्नशील थे। स्वामी जी के भक्त श्री सेवकलाल जी ने काशी शास्त्रार्थ छपा कर इतना बाँटा कि सर्व साधारण को भी महाराज के गुणों का ज्ञान हो गया। जिस समय महाराज बम्बई के रेलवे स्टेशन पर पहुँचे उनके स्वागत के लिए अनेक सज्जन वहाँ उपस्थित थे।

स्वामी जी ने वहाँ वैष्णवों के 'तन, मन, धन अर्पण' का घोर खण्डन किया। इस खण्डन से जीवनजी गोसाईं नामक व्यक्ति स्वामी जी का द्वेषी हो गया। उसने एक दिन स्वामी जी के सेवक बलदेव को गुप्तरूप से बुलाकर कहा। यदि तुम किसी तरह विष आदि देकर स्वामी जी को समाप्त कर दो तो हम तुम्हें एक हजार रुपये देंगे। जीवनजी ने एक हजार रुपये देने के लिये एक पत्र भी लिखकर दे दिया। और ५ रुपये तथा ५ सेर मिठाई उसी समय उसको भेंट की। ज्यों ही बलदेव लौटकर डेरे पर आया स्वामी जी ने उससे पूछा क्या आज तुम गोकुलियों के यहाँ गये थे ? बलदेव बोला, जी, हाँ, मैं गया था। स्वामी जी ने फिर पूछा, सच-सच बताओ वहाँ क्या ठहराकर आये हो। उसने सारी बात महाराज जी को बता दी। स्वामी जी ने कहा, देखो जिसे परमेश्वर न मारे उसे कोई भी नहीं मार सकता। बनारस में मुझे हलाहल विष दिया गया, राव करणसिंह ने पान में विष दिया था।

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

अन्य भी अनेक स्थानों में मुझ पर विष के भयंकर प्रयोग किये गये परन्तु मेरा प्राणान्त नहीं हुआ। याद रखो अब भी मैं मारा नहीं जाऊंगा। बलदेव स्वामी जी के चरणों को पकड़कर क्षमा माँगने लगा और प्रण किया कि फिर कभी गोसाइयों के पास न जाऊँगा।

बम्बई में आर्यसमाज की स्थापना का प्रथम प्रयास

बम्बई के अनेक सज्जन स्वामी जी के व्याख्यान सुनकर उनके अनुयायी बन गये थे। उन सबने यह सोचा कि स्वामी जी के विचारों का प्रचार करने और उनको स्थिर रखने के लिए कोई सत्संग स्थापित करना चाहिए। इसलिये मार्गशीर्ष संवत् १९३१ में बहुत से सज्जन मिलकर स्वामी जी के पास आये और बोले, हम आपके उपदेशों से पूरा लाभ उठाने के लिए सत्संग की स्थापना करना चाहते हैं। कृपया आप ही उसका नामकरण कर दीजिये। प्रेमियों के उत्साह भरे बचन सुनकर स्वामी जी को प्रसन्नता हुई और आँखें बन्द करके ध्यान में लीन हो गये। फिर थोड़ी देर बाद बोले इस सत्संग का शुभ नाम आर्य समाज ही रखना उचित है। भक्तों ने बड़े आदर के साथ इस नाम को स्वीकार किया। उसी समय २५ सत्संगियों के नाम लिखे गए। परन्तु कई कारणों से तब आर्य समाज की स्थापना न हो सकी।

बम्बई में स्वामी जी के तीसरे भाषण में साम्प्रदायिक लोगों ने बड़ा शोर मचाया। ईंट, पत्थर और धूल फेंकने लगे। सहायकों ने स्वामी जी से व्याख्यान बन्द कर देने की प्रार्थना की, पर स्वामी जी ने कहा: "अपने भाइयों के फेंके हुए ये ईंट पत्थर मेरे लिए पुष्प वर्षा हैं। व्याख्यान तो मैं समय पर ही समाप्त करूँगा।"

जन्म-प्रान्त गुजरात में

सूरत से चलकर स्वामी जी भरुच पहुँचे, वहाँ नर्मदा के किनारे आश्रम में उन्होंने निवास किया। वहाँ एक माधव राव त्र्यम्बक नाम का एक दक्षिणी पंडित था। उसके बहुत से शिष्य थे, वह एक दिन अपने सभी शिष्यों के साथ सभा-स्थल पर आया। मूर्ति पूजा पर शास्त्रार्थ करने के लिए तैयार हुआ पर थोड़ी ही देर में स्वामी जी की युक्ति-प्रतियुक्ति से हार कर चलता

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

बना। एक दिन भरुच के प्रसिद्ध वकील श्री जेठालाल जी स्वामी जी से कहने लगे : "महाराज यदि आप शास्त्रों द्वारा मूर्ति पूजा का मंडन करने लग जायें तो हम आपको शंकर का अवतार मानने लग जायेंगे।" स्वामी जी ने उत्तर में कहा, "मुझे विश्वनाथ की पदवी का लालच काशी नरेश ने भी दिया था, परन्तु मैं किसी भी सांसारिक वासना से वशीभूत होकर सत्य का परित्याग कभी नहीं कर सकता। इन वचनों ने जेठालाल के मन पर गहरा प्रभाव डाला।

स्त्रियों के मुख्य धर्म

महाराज भड़ोच में अमृत-वर्षा कर रहे थे तो एक दिन बहुत से भार्गव ब्राह्मण और स्त्रियाँ स्वामीजी का उपदेश सुनने के लिए आये स्त्रियों में अधिक संख्या अद्वैतानन्द की चेलियों की थी। स्वामीजी स्त्रियों से वार्तालाप करना नहीं चाहते थे, किन्तु उनके विशेष आग्रह और अनुरोध पर एक पर्दा उनके और अपने बीच डालकर उन्हें यह उपदेश दिया कि पति-सेवा ही करना तुम्हारा धर्म है और पतियों से ही उपदेश लेना तुम्हारा कर्त्तव्य है। मन्दिरों आदि स्थानों में आना-जाना और साधु संन्यासियों के दर्शन के लिए इधर-उधर घूमना स्त्री जाति के लिए अत्यन्त अनुचित है। स्त्री जाति का मुख्य धर्म पति-सेवा और उत्तम रीति से सन्तति का पालन पोषण ही है।

आर्य समाज का संगठन

दूसरी बार जब महाराज बम्बई में आए तो स्वामी जी के अनुयायियों ने आर्य समाज की स्थापना के लिए प्रार्थना की और माघ, १९३१ में एक साधारण सभा बुलाकर आर्य समाज के नियमों और उद्देश्यों पर विचार करने के लिए एक उप-सभा बनाई। जब लोगों में थोड़ी सी निराशा-सी आने लगी तो स्वामी जी ने उपदेशों से फिर उत्तेजित किया और तब सर्वसम्मति से श्री पानाचन्द्र आनन्दचन्द पारीख को नियम बनाने के लिए चुना गया।

पारिख महाशय ने थोड़े ही दिनों में आर्य समाज के नियम बनाकर सभा के सामने रख दिये। उन्हें स्वामी जी ने भी अनुमोदित किया। स्वामी जी के

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

आदेशानुसार चैत्र सुदी १, संवत् १९३२ शनिवार को बम्बई नगर के गिरगांव मोहल्ले में डा० मानिकचन्द्र की वाटिका में सायंकाल आर्यसमाज की शुभ स्थापना हुई।

कुछ नियम

उस समय बनाये गए नियमों में से कुछ मुख्य नियम हैं :—

(१) प्रत्येक सभासद् न्यायपूर्वक पुरुषार्थ से जितना धन प्राप्त करे उस में से शतांश 'आर्यसमाज', 'आर्य विद्यालय' और 'आर्य प्रकाश' पत्र के प्रचार और उन्नति के लिए आर्यसमाज के कोष में दें।

(२) जो मनुष्य इन कार्यों की उन्नति और प्रचार करने का जितना प्रयत्न करे उसका उतना ही अधिक सत्कार उत्साह-वृद्धि के लिए होना चाहिए।

(३) इस समाज में प्रधानादि सब सभासदों को परस्पर प्रीतिपूर्वक, अभिमान, हठ, दुराग्रह और क्रोधादि दुर्गुणों को छोड़कर उपकार और सुहृद्भाव से निर्वैर होकर स्वात्मवत् सबके साथ बर्तना होगा।

(४) विचार के समय सब व्यवहार में जो न्याययुक्त, सर्वाहित साधक सत्य बात स्थिर हो वह सब सभासदों पर प्रकाशित करके वही बात मानी जाय।

(५) जो मनुष्य इन नियमों के अनुकूल आचरण करने वाला, धर्मात्मा, सदाचारी हो उसको उत्तम सभासदों में प्रविष्ट करना, इसके विपरीत को साधारण समाज में रखना और अत्यन्त प्रत्यक्ष दुष्ट को समाज से निकाल ही देना। परन्तु यह काम पक्षपात से नहीं करना, किन्तु ये दोनों श्रेष्ठ सभासदों के विचार ही से किये जाएँ, अन्यथा नहीं।

(६) जब तक नौकरी करने और कराने वाला आर्यसमाजस्थ मिलें तब तक और की नौकरी न करे और न किसी अन्य को नौकर रखे। वे दोनों परस्पर स्वामी-सेवक भाव से यथावत् वर्तें।

(७) जब विवाह, जन्म-मरण, अथवा अन्य कोई दान करने का अवसर उपस्थित हों तब आर्यसमाज के निमित्त धन आदि दान किया करें। ऐसा धर्म का काम दूसरा कोई नहीं है, ऐसे समझकर इसको कभी न भूलें।

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

भारत के जंगी लाट से वार्ता करते हुए महर्षि दयानन्द

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

बम्बई नगर में सत्यार्थ प्रकाश पहले ही छप रहा था। संस्कार-विधि और आर्याविनय ये दो ग्रन्थ मुद्रित कराये गये। वेदाभ्यास करने का उद्योग भी प्रारम्भ हो गया।

पूना में १५ व्याख्यान

महादेव गोविन्द रानडे पूना में जज थे। उन्होंने स्वामी जी को पूना आने के लिए कहा। स्वामी जी पूना आये और वहाँ उनके १५ व्याख्यान बड़ी धूमधाम से हुए। इन व्याख्यानों से लोग इतने प्रभावित हुए कि स्थान-स्थान पर स्वामी जी की चर्चा होने लगी। महाराज के व्याख्यानों में रानाडे जी भी निरन्तर आया करते थे। व्याख्यानों के प्रबन्ध में भी उनका ही अधिक हाथ था।

दिल्ली दरबार

स्वामीजी महाराज अनेक स्थानों पर होते हुए दिसम्बर मास के अन्त में अलीगढ़ से दिल्ली आये। दिल्ली में महाराणी विक्टोरिया के राज्य-अभिषेक के उपलक्ष्य में एक बड़ा दरबार होने वाला था। कहा जाता है कि महाराजा इन्दौर ने ऐसे अवसर पर धर्म-प्रचार करने के लिए स्वामीजी को निमन्त्रित किया था। वे राज-मण्डल में भी उनके भाषण कराना चाहते थे। प्रचार और निवास आदि के लिए शेरमल के अनार बाग में तंबू लगा दिये गये। बाग के दरवाजे पर "स्वामी दयानन्द सरस्वती का निवास-स्थान" लिखकर लटका दिया गया। स्वामीजी के भक्त भी इन्हीं के साथ ठहरे हुए थे। स्वामीजी के सत्संग में हजारों मनुष्यों की भीड़ होने लगी। सभी मतों और जातियों के लोग स्वामीजी के निकट आते जाते थे।

एक दिन महाराज ने अपने स्थान पर, भारत के भिन्न-भिन्न मतों और जातीय विभागों के नेताओं की एक सभा बुलाई उनके निमन्त्रण पर पंजाब के प्रसिद्ध सुधारक कन्हैयालाल अलखधारी, श्री नवीनचन्द्र राय, श्री हरिश्चन्द्र चिन्तामणि, सर सय्यद अहमद, श्री केशवचन्द्र सेन और श्री इन्द्रमन, ये ६ सज्जन वहाँ पधारे। स्वामीजी के साथ सबने मिलकर भारत के हित के साधनोपाय सोचे। इस समाज में स्वामीजी ने एक प्रस्ताव रखा कि हम

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

भारतवासी सब, परस्पर एक-मत होकर एक ही रीति से देश का सुधार करें तो आशा है, भारत देश सुधर जायेगा। उन्होंने श्री केशवचन्द्र सेन आदि सज्जनों को यह भी कहा कि अलग-अलग सभा बनाने की बजाय यदि हम मिलकर एक ही धर्म का प्रचार करें तो बहुत ही अच्छा है। परन्तु कई मौलिक मन्तव्यों में मतभेद होने के कारण वे सब एकता के सूत्र में बंध न सके।

चांदापुर मेले में

उसके बाद स्वामी जी सहारनपुर गये और वहाँ से चांदापुर आये। चांदापुर में ब्रह्म-मेला मनाने का उद्योग हो रहा था। मेले के स्थान पर ही एक स्वच्छ और उत्तम तम्बू में उनका डेंरा लगा दिया गया। १९ मार्च को मेला भरने लगा। मौलवी और पादरी अपने दल-बल सहित बड़ी धूम-धाम से उसी तिथि को वहाँ पहुँच गये। दर्शकों कों संख्या भी ५० हजार से ऊपर ही थी। रात के समय, कुछ डरते-डरते से श्री इन्द्रमन जी स्वामी जी से आ कर बोले कि महाराज मौलवीयों की मण्डली आ पहुँची है। मेले में दर्शक मुसलमानों की संख्या भी काफी बड़ी होगी। ये लोग झटपट भड़क उठते हैं, इसलिए आप वाद के समय, अति कोमल शब्दों में काम लीजियेगा। स्वामी जी ने उत्तर दिया : "असत्य का समर्थन करना मेरे लिए असम्भव है। सत्य मेरा बनाया हुआ नहीं है। वह सनातन है और ईश्वर का है। उस सत्य को यथावत् प्रगट करने में मैं किसी से, थोड़ा भी नहीं डरता। आप भी न डरिये।"

२० मार्च को, जिस बात के लिए यह मेला जुड़ा था, सबेरे ७-३० बजे पण्डित, मौलवी और पादरी सभी सभा मण्डप में आये और अपनी कुर्सियों पर बैठ गये। बात की बात में वह विशाल मण्डप दर्शकों से ठसाठस भर गया। समय, योजनानुसार ये ५ प्रश्न सब धर्मावलम्बियों के आगे रखकर उनका उत्तर मांगा :—

(१) सृष्टि को ईश्वर ने किस वस्तु से, कब और क्यों रचा ?
(२) ईश्वर सर्वव्यापक है अथवा नहीं ?
(३) ईश्वर न्यायकारी और दयालु किस प्रकार हैं ?
(४) वेद, बाइबल और कुरान के ईश्वर-वाक्य होने में क्या युक्ति है ?

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

(५) मुक्ति क्या हैं और किस प्रकार प्राप्त हो सकती है ?

पादरी और मौलवी साहब द्वारा दिये गये इन पाँचों प्रश्नों के उत्तर से जनता सन्तुष्ट नहीं हुई। जब स्वामी जी महाराज ने वेदों के अनुसार इनके उत्तर दिए और बाद में मौलवियों और पादरियों की शंकाओं का समाधान किया। दोपहर को दूसरी सभा में भी किसी और के तैयार न होने से स्वामी जी ही बोले और इस प्रकार चांदापुर के मेले में वेदों के सामने बाईबिल और कुरान की ज्योति मन्द पड़ गई।

शाक्त लोगों द्वारा हत्या का षड्यन्त्र

एक दिन, बक्षीराम जी मुरादाबादी और श्री इन्द्रमन जी स्वामी जी के निकट बैठे हुए बातें कर रहे थे। उस समय श्री महाराज ने उनको अपनी बीती कथा सुनाई, "जिन दिनों मैं एकाकी घूमता था, उन दिनों में मेरा एक ऐसे स्थान पर जाना हुआ जहाँ सभी शाक्त बसते थे। उन्होंने मेरी बड़ी सेवा-शुश्रूषा की। जब कई दिन के निवास के अनन्तर मैं वहां से चलने लगा तो उन लोगों ने अत्याग्रह से मुझे ठहरा लिया। मैं समझता रहा कि वे भक्ति-भाव से मुझे ठहराते हैं। ऐसे ही बहुत दिन बीत जाने पर उनका पर्व दिन आ गया। उस दिन सारे शाक्त, देवी के मन्दिर में एकत्र होकर गीत गाने लगे। उस दिन उन्होंने मुझे भी कहा कि आज हमारे मन्दिर में महोत्सव है, आप वहां अवश्य चलिए। मैंने बहुत समझाया कि देवी के दर्शनों में मेरा निश्चय नहीं परन्तु वे एक न सुनते थे। पांव पकड़ कर कहने लगे कि यदि आज पर्व के दिन आप मन्दिर में न पधारेंगे तो हमारा सारा उत्साह भंग हो जायेगा। आप मूर्ति को नमस्कार आदि कुछ भी न करना परन्तु हमारे लिये चले तो चलिए।

"वह मन्दिर, नगर से बाहर एक उजाड़ स्थान में था। उनके विवश करने पर मुझे उस मन्दिर में जाना पड़ा। उस समय वहां, आंगन में होम हो रहा था और लोग उत्सव मना रहे थे। मुझे वे दुर्गा की मूर्ति दिखलाने के बहाने भीतर ले गए। मैं सहज स्वभाव से दुर्गा की प्रतिमा के सम्मुख जा खड़ा हुआ। मूर्ति के पास ही एक बलिष्ठ व्यक्ति नंगी तलवार लिये खड़ा था। वहाँ, वे लोग मुझे कहने लगे कि "महात्मा जी! माता के आगे झुक कर

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

नमस्कार अवश्य कीजिए।" मैंने उनको स्पष्ट शब्दों में कहा कि मुझ से ऐसी आशा करना दुराशामात्र है। मेरे वचनों से पुजारी चिढ़ गया और पास आकर मेरी ग्रीवा को पकड़ कर मेरे सिर को नीचा करने लगा। उसके इस बर्ताव से मैं चकित हो गया, परन्तु ज्यों ही मैंने दृष्टि फिराई तो क्या देखता हूँ कि वह खड्गधारी मेरे पास आ गया है और मेरी ग्रीवा पर खड्ग बरसाना ही चाहता है।

'इस दृश्य को देखकर मैं तुरन्त सावधान हो गया। मैंने झपट कर उसके हाथ से खड्ग छीन लिया। पुजारी तो मेरे बायें हाथ के एक ही धक्के से मन्दिर की दीवाल से जा टकराया। मैं तलवार लिये मन्दिर के आंगन में आ गया। उस समय आंगन के सभी लोग कुल्हाड़ा, छुरी आदि शस्त्र लेकर मुझ पर टूट पड़े। द्वार की ओर देखा तो उसको ताला लगा हुआ था। अपने आपको बलिदान से बचाने के लिए, मैं उछलकर दीवाल पर चढ़ गया और परले पार कूद कर भाग निकला। उस स्थान के समीप ही एक वन था। दिन भर तो मैं वहां छुपा बैठा रहा, परन्तु जब रात का राज्य विस्तृत हो गया तो रातों-रात ग्रामान्तर में जा पहुँचा। उस दिन से मैंने शाक्त लोगों का कभी भी विश्वास नहीं किया।"

पंजाब में प्रचार

वैशाख, १९३४ में स्वामी जी लुधियाना आये। व्याख्यान आदि होते थे। पण्डितों से वेदभाष्य भी वहां लिखवाया करते थे। लुधियाना में स्वामी जी महाराज ने कुछेक आप-बीतियाँ सुनाईं। जिनमें से एक यह थी :—

"एक बार मैं अपनी कुटी में आसन रमाये बैठा था। उसके पास ही कुछ साधु रहते थे। वे अकारण ही मेरे द्वेषी बन गये। जब रात आई और अंधेरा हो गया तो वे साधु मेरी कुटिया पर आये और वध करने का उपाय सोचने लगे। उनकी बातें मुझे सुनाई पड़ती थीं। थोड़ी देर तक विचार करने के बाद उन्होंने मेरी झोंपड़ी में आग लगा दी। घास-फूस की वह कुटिया आग की लपटों से भस्म होने लगी तो मैं छप्पर को उठाकर बाहर निकल आया।

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

लाहौर में आर्यसमाज

स्वामी जी लुधियाना से लाहौर आये, और इनके बुलाने में ब्रह्म-समाजियों का ज्यादा हाथ था। स्वामी जी के दो व्याख्यान ब्रह्मसमाजियों ने अपने धर्म मन्दिर में कराये, परन्तु ये दोनों व्याख्यान ब्रह्मसमाजियों के मन्तव्य के बिलकुल विरुद्ध थे। इसलिए उन्हें वे बहुत बुरे लगे। वे ऐसे अधीर हुए कि स्वामी जी का विरोध करने पर उतर आये।

स्वामी जी के भाषण में निर्मूल कल्पनाओं की समालोचना होती थी। इससे बहुत-से पण्डित भी उनके विरुद्ध हो गये। बाद में उनके भक्त-जन उनको डा० रहीमखाँ की कोठी में ले आये। स्वामी जी के प्रचार से अनेक सज्जन उनके अनुयायी बन गये और आर्यसमाज की स्थापना का उद्योग होने लगा। उस समय यह आवश्यक समझा गया कि समाज की स्थापना के पूर्व समाज के पुराने नियमों का नूतन संस्कार किया जाय और वहाँ बम्बई के उन नियमों को संशोधित करके दस नियम बनाये गये, तो आजकल प्रचलित हैं।

समाज का पहला सतसंग डा० रहीमखाँ की कोठी में स्वामी जी के ही पास लगाया गया। इसपर महाराज ने आशीर्वाद देते हुए कहा कि "अब यह समाज अवश्य ही फूले-फलेगा।"

एक दिन स्वामी जी ने कहा—"वैदिक धर्म-प्रचार का कार्य बहुत बड़ा है। हम जानते हैं कि वह हमारे इस सारे जीवन में पूर्ण न हो सकेगा। परन्तु चाहे दूसरा जन्म धारण करना पड़े, मैं इस महत् कार्य को अवश्य पूर्ण करूंगा।

प्रभु से कोई महान् नहीं

एक दिन, महाराज आर्य समाज के साप्ताहिक सत्संग में उस समय पधारे, जब प्रार्थना और उपासना हो रही थी। गुरुदेव को आते देख सारे सभासदों ने उनका अभ्युत्थानपूर्वक स्वागत किया। जब प्रार्थना समाप्त हो चुकी तो महाराज ने उपदेश दिया—"उपासना के समय उपासक जन ईश्वर के सत्संग में निमग्न होते हैं, उस प्रभु से महान् कोई भी वस्तु नहीं है इसलिए उपासना-काल में चाहे कितना ही बड़ा मनुष्य क्यों न आये, उठना नहीं चाहिए ऐसे समय में किसी व्यक्ति के लिए अभ्युत्थान आदि आदर करना उपासना-धर्म

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

का निरादर है।" सब सभासदों ने विनीतभाव से श्री-वचनों को स्वीकार किया।

नया पन्थ नहीं

यद्यपि, आर्य-समाज में संशोधन और परिवर्तन आदि के सारे अधिकार स्वामी जी के हाथ में थे, परन्तु वे इतने निरभिमान और निर्लेप थे कि जिसका दूसरा दृष्टान्त मिलना अति दुर्लभ है। आर्य-समाज लाहौर के साधारण अधिवेशन में महाशय शारदाप्रसाद जी ने प्रस्ताव किया—"आर्य-समाज के संस्थापक की पदवी से विभूषित किया जाय।" सब सभासदों ने इस प्रस्ताव का सुप्रसन्नता से अनुमोदन किया। स्वामी जी महाराज ने हंसकर कहा—"मैंने कोई नया पन्थ चलाकर गुरु-गद्दी का मठ नहीं बनाया है। मैं तो लोगों को मतवादियों के मठों से स्वतन्त्र करना चाहता हूँ। ऐसी पदवियों से अन्त में हानियाँ ही हुआ करती हैं।"

अद्भुत शक्ति

अमृतसर से एक दिन स्वामी जी महाराज अपने निवास-स्थान के एक कमरे में बैठे पण्डितों से वेद-भाष्य लिखवा रहे थे। बीच में एकाएक उठ खड़े हुए और कर्मचारियों को कहने लगे कि पुस्तकादि सभी उपकरण, झट-पट, इस कमरे से बाहर निकाल दो। कर्मचारियों ने उनकी आज्ञा का पालन तो किया, परन्तु वे मन ही मन यह कहते रहे कि स्वामी जी ने यह कष्ट व्यर्थ ही दिया है। जब सारे उपकरण दूसरे कमरे में पहुँच गये तो प्रथम कमरे की छत धड़ाम से भूमि पर गिर पड़ी। उस समय कर्मचारियों को महाराज की आज्ञा की उपयुक्तता का निश्चय, अति विस्मय के साथ हुआ।

श्री स्वामी जी एक समय उपदेश दे रहे थे। उस समय एक ओर से घोर आंधी, धूलिराशि से भूतलाकाश को एकाकार करती, उमड़ी चली आती दिखाई दी। पवन भी प्रचण्ड रूप धारण करने लगा। झंझावात के उत्पात से जैसे मानसरोवर क्षुभित हो, ऐसे ही वह सत्संग-सरोवर चलायमान हो गया। उठने के लिए लोग दायें-बायें झांकने लगे। उस समय महाराज ने मेज पर करतल-प्रहार कर उच्च स्वर से कहा कि धैर्य रखिए, हिलिये नहीं, यहां

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

आंधी नहीं आयगी। महाराज के कथन से लोग शान्त हो गये और सचमुच आंधी भी वहां नहीं आई।

ब्रह्मचर्य का बल

जालंधर में एक दिन सरदार विक्रमसिंह जी ने निवेदन किया कि सुनते हैं कि ब्रह्मचर्य से मनुष्य महाबली बन जाता है, क्या यह सत्य है? स्वामी जी ने उत्तर दिया कि ब्रह्मचर्य धारण करने का जो महत्व शास्त्रों ने वर्णन किया है वह सर्वथा सत्य है। तब सरदार महाशय बोले कि महाराज! आप भी तो ब्रह्मचारी हैं। हमें आप में कोई विशेष बल तो प्रतीत नहीं होता। महाराज ने इस बात का कोई उत्तर न दिया। सरदार महाशय बड़ी देर तक सत्संग में बैठे रहे। चलते समय जब नमस्कार करके गाड़ी में आरूढ़ हुए तो महाराज ने उनकी गाड़ी को पीछे से पकड़ लिया। विक्रमसिंह जी ने घोड़ों को बहुतेरे कोड़े लगाये परन्तु वे गाड़ी को न खींच सके। सरदार महाशय ने पीछे की ओर मुड़कर देखा तो महाराज ने गाड़ी को छोड़ दिया और कहा कि ब्रह्मचर्य के बल का प्रमाण आपको मिल गया। सरदार महाशय उनके इस सामर्थ्य पर अति विस्मित हुए।

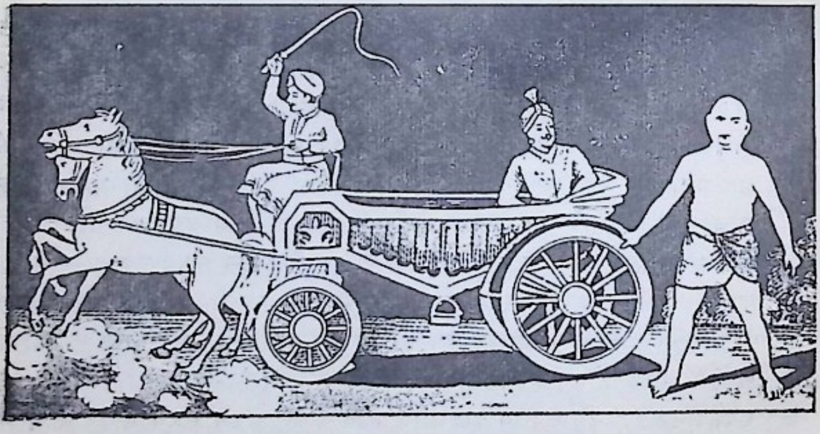

जालन्धर में ब्रह्मचर्य बल का अपूर्व प्रदर्शन

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

अमृतसर में शास्त्रार्थ

पंजाब में स्थान-स्थान पर प्रचार करते हुए स्वामीजी फिर अमृतसर में पधारे और सरदार भगवानसिंह के मकान में ठहरे। पण्डितों ने इस बार भी विरोध आरम्भ कर दिया। वे शास्त्रार्थ करने के लिए उद्योग करने लगे। आर्यसमाज अमृतसर की ओर से विज्ञापन द्वारा उनको शास्त्रार्थ के लिए आहूत भी किया गया। शास्त्रार्थ करने का स्थान सरदार भगवानसिंह जी का मकान निश्चित हुआ। उस दिन उस मकान में छः-सात सहस्त्र मनुष्य एकत्र हो गये। नगर के सभी प्रतिष्ठित पुरुष भी उपस्थित हुए। आमने-सामने दो चौकियाँ लगा दीं गई, जिससे वादी और प्रतिवादी को प्रश्नोत्तर करने में सुगमता हो और दूसरा कोई बीच में गड़बड़ भी न कर सके।

नियत समय पर स्वामीजी तो जाकर एक कुर्सी पर विराजमान हो गये, परन्तु प्रतिपक्षियों के आने का कोई पता तक न था। बड़ी देर तक प्रतीक्षा करने पर एक व्यक्ति ने आकर कहा कि पण्डित लोग बाहर खड़े हैं और भीतर आने के लिए आज्ञा माँगते हैं। उत्तर में कहा गया कि वे लोग बिना संकोच, अति प्रसन्नता से पधारें। उन्हीं की तो प्रतीक्षा करते, यह समय होने को आया है।

थोड़ी देर में पण्डित-दल जय-जय नाँद गुंजाता हुआ भीतर प्रविष्ट हुआ। सात-आठ पण्डित तिलक लगाये और बगल में पुस्तकें दबाये अकड़कर स्वामी जी के सम्मुख बैठे गये। इतने में ही उनके चेले-चाँटों ने चारों ओर से ईंट-पत्थर फेंकने आरम्भ कर दिये। सभा-स्थान को धूलि-वर्षा से धूआँ-धार बना दिया। बड़ा भारी क्षोभ उत्पन्न हुआ। ऐसे समय में, जब पुलिस के काण्स्टेबल प्रबन्ध करने के लिए आगे बढ़े तो पण्डित देवता, एक-एक करके चुपके से चम्पत हो गये। उस समय, भगवान् दयानन्द के भक्त अपने भक्ति-भाजन का निरादर होते देखकर, कोपावेश से शान्त न रह सके। वे चाहते थे कि उदण्ड और दुष्ट जनों को वहीं दण्डित किया जाय, परन्तु स्वामीजी ने उनको शान्ति प्रदान करते हुए कहा कि—'मत-मदिरा से उन्मत्तजनों पर कोप नहीं करना चाहिए। हमारा काम एक वैद्य का है। उन्मत्त मनुष्य को वैद्य औषध देता है, न कि उसकी लीला पर उसे मार-पीट करता है। निश्चय

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

जानिए आज जो लोग मुझ पर ईंट, पत्थर और धूल बरसाते हैं वही लोग आप पर कभी पुष्प-वर्षा करने लग जायेंगे।

ईंट मारने वालों को लड्डू

अमृतसर में एक बाल-पाठशाला के अध्यापक ने एक दिन अपने छात्रों से कहा कि आज स्वामीजी की कथा में चलेंगे। तुम अपनी झोलियों में ईंट, रोड़े और कंकर भरकर मेरे साथ चलना और मैं संकेत करूं तो तुम कथा कहने वाले पर ईंट, रोड़े और कंकर फेंक देना मैं तुम्हें लड्डू दूंगा। अबोध—बालकों ने अपनी झोलियां भर लीं और अध्यापक के साथ चल पड़े। व्याख्यान रात्रि के ८ बजे समाप्त हुआ करता था। जब कुछ-कुछ अन्धेरा हो गया तो अध्यापक का संकेत पाकर बालक महाराज पर ईंट, रोड़े, कंकर फेंकने लगे, सभा में हलचल मच गई, किन्तु महाराज ने सब को शांत कर दिया। पुलिस कुछ बालकों को पकड़ कर उनके सामने लाई तो बालक फूट-फूट कर रोने लगे। महाराज ने उन्हें ढाढ़स बंधा कर उनसे ऐसा कार्य करने का कारण पूछा, तो उन्होंने सारा वृत्तान्त सच-सच कह दिया। तब महाराज ने बाजार से लड्डू मंगाकर बालकों को दिये और कहा कि तुम्हारा अध्यापक शायद तुम्हें लड्डू न दे, इसलिए मैं ही दिये देता हूँ।

माली के रूप में

जब महाराज अपने डेरे पर पधारे तो एक भक्त ने कहा—"महाराज आज दुष्ट लोगों ने आप पर बहुत धूल-राख फेंकी और आपका घोर अपमान किया।" महाराज ने कहा—"परोपकार और परहित करते समय अपना मानापमान और पराई निन्दा का परित्याग करना ही पड़ता है। इसके बिना सुधार नहीं हो सकता। मैंने आर्यसमाज का उद्यान लगाया है। इससे मेरी अवस्था एक माली की है। पौधों में खाद डालते समय, राख और मिट्टी माली के सिर पर भी पड़ जाया करती है। मुझ पर धूल-राख चाहे जितनी पड़े, मुझे इसका कुछ भी ध्यान नहीं। परन्तु वाटिका हरी-भरी बनी रहे और निर्विघ्न फूले-फले।

जिस कोठी में महाराज विराजमान थे उसी एक के कमरे में रुड़की आर्यं-

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

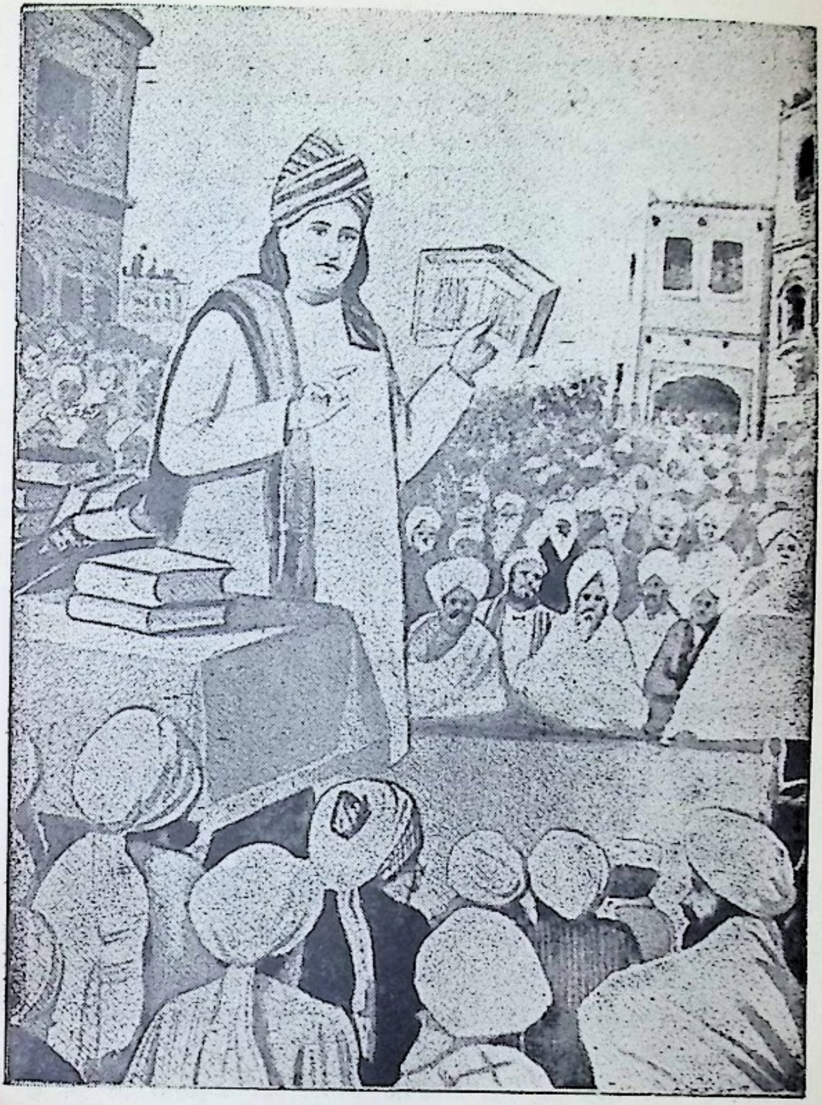

अमृतसर में वेदों का प्रचार करते हुए महर्षि दयानन्द

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

समाज की अन्तरंग सभा हो रही थी। सभासद् अभी सभा के कार्यों को यथावत् परिचालन करने में प्रवीण न हुए थे, इसलिए उन्होंने श्री स्वामीजी से निवेदन किया कि सभा में पधार कर शुभ सम्मति से हमें कृतार्थ कीजिए। उन्होंने उत्तर दिया कि सभासद् हुए बिना मैं सम्मति नहीं दे सकता। इस पर तत्काल उन्हें प्रतिष्ठित सभासद् बनाया गया। उस समय स्वामीजी ने उपदेश दिया—'सभा में हठ और दुराग्रह नहीं करना चाहिए। अपने पक्ष की पुष्टि में चाहे जितनी युक्तियां दो, परन्तु प्रकृति और हृदय में ऐंठन न आने दो। किसी बात को पकड़कर इतना नहीं खींचना चाहिए कि परस्पर के भ्रातृ-भाव के तार ही टूट जायँ। बहुमतानुसार जो मत स्वीकृत हो जाय, उस पर फिर हठ नहीं करना चाहिए। अन्तरंग सभा के कार्यों को प्रकाशित करना उचित नहीं है। वह मनुष्य अतीव तुच्छ और ओछा होता है जो किसी गुप्त सम्मति का गोपन नहीं कर सकता। ऐसा मनुष्य विश्वास पात्र भी नहीं रहता।

आर्यसमाज का सदस्य बनाने पर प्रसन्नता

महाराज के जेहलम त्याग से एक दिन पूर्व लाला गंगाराम धम ने एक सज्जन से आर्यसमाज की सभा-सदी का आवेदन पत्र लिखाया, वह उनकी जेब में पड़ा था। अगले दिन जब वह अन्य लोग महाराज को स्टेशन पर पहुँचाने गये तो उन्होंने वह पत्र आर्यसमाज के मन्त्री को दिया। महाराज ने पूछा कि कैसा काग़ज है, तो उन्होंने बतलाया कि एक सज्जन का सभासदी के लिए प्रार्थना पत्र है। महाराज गाड़ी में बैठे, परन्तु इन शब्दों को सुनकर इतने हर्षित हुए कि गाड़ी से बाहर आ गये और प्रेम से लाला गंगाराम को गले लगा लिया।

मनुष्य की मनुष्यता

एक दिन दो उच्च राज-कर्मचारी स्वामीजी से मिले और कहने लगे कि महाराज खण्डन में क्या धरा है, इस से लोग उत्तेजित होते हैं। हम तो उसी कर्म को अच्छा समझते हैं कि जिसमें अपना भला हो। परहित चिन्तन और परोपकार तो ढकोसला है। महाराज ने उत्तर दिया, अपनी भलाई का काम तो गधे और अन्य पशु, पक्षी भी करते हैं, मनुष्य की मनुष्यता तो इसी में है कि दूसरों का उपकार करे।

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

वायसराय से भेंट

लार्ड नार्थ ब्रुक गवर्नर जनरल व वायसराय से सन् १८७३ में ऋषि दयानन्द की निम्न प्रमाणिक व रेकार्ड हुई भेंट सम्पन्न हुई, जिसमें स्वामी जी की असाधारण दूरदर्शिता तथा देशभक्ति का परिचय मिलता है। यह भेंट- इंग्लैंड के लार्ड बिशप द्वारा आयोजित की गई थी, जो कलकत्ता में ठहरे थे। यह श्रेष्ठ ईसाई पादरी, कुछ बार ऋषि दयानन्द की भाषण सभाओं में, अध्यक्ष भी बन चुका था और स्वामीजी की अद्वितीय विद्वत्ता का बड़ा भारी समर्थक था। इस भेंट से स्वतन्त्रता प्राप्ति के लिये स्वामीजी के हृदय में विद्यमान दृढ़तम भावना का प्रमाण मिलता है। यह भेंट दुभाषिये के द्वारा हुई थी।

साधारण शिष्टाचार के पश्चात् वायसराय ने स्वामीजी से पूछा—पंडित दयानन्द ! मुझे सूचना मिली है कि आप द्वारा दूसरे मत-मतान्तरों व धर्मों की कड़ी आलोचना, उनके हृदय में क्षोभ उत्पन्न करती है और आपके विरुद्ध भयानक विचार उत्पन्न करती है, विशेषतः मुस्लिम और ईसाई जनता के। क्या आप अपने शत्रुओं से किसी प्रकार का खतरा अनुभव करते हैं ? अर्थात् क्या आप सरकार से अपनी सुरक्षा का कोई प्रबन्ध चाहते हैं।

स्वामी दयानन्द—मुझे अपने विचारों के प्रचार करने की अंग्रेजी राज्य में पूरी स्वतन्त्रता है। मुझे व्यक्तिगत रूप में किसी प्रकार का खतरा नहीं है।

वायसराय—यदि ऐसा है तो क्या आप अपने देश में अंग्रेजी शासन द्वारा उपलब्ध उपकारों का भी वर्णन किया करेंगे ? और अपने व्याख्यानों में जो ईश्वर प्रार्थना आप किया करते हैं, उसमें देश पर अखण्ड अंग्रेजी शासन के लिए प्रार्थना भी किया करेंगे ?

स्वामी दयानन्द—मैं ऐसी किसी बात को मानने में असमर्थ हूँ, क्योंकि यह मेरा दृढ़ विश्वास है कि मेरे देशवासियों को अबाध राजनीतिक उन्नति और संसार के राज्यों में समानता का दर्जा पाने के लिए शीघ्र पूर्ण स्वतन्त्रता मिलनी चाहिए। श्रीमान् जी ! **ईश्वर से नित्य सायं प्रातः उसकी अपार कृपा से इस देश की विदेशियों की दासता से मुक्ति की ही मैं प्रार्थना**

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

करता हूँ।

ऋषि दयानन्द के विचारों के इस प्रकार प्रदर्शन से वायसराय घबरा गये और तुरन्त वार्तालाप बन्द कर दिया।

लार्ड नार्थ ब्रूक ने यह घटना अपनी एक साप्ताहिक डायरी में इण्डिया आफिस लण्डन में भेजी और मलका सरकार के सेक्रैटरी असिस्टेंट को लिखा कि उसने इस बागी फकीर की कड़ी निगरानी करने के लिए गुतचर नियुक्त करने के आदेश दे दिये हैं।

हिन्दी राष्ट्रभाषा

स्वामी दयानन्द जी ने अनेक ग्रंथ लिखे, पर वे सब आर्य भाषा में ही लिखे, गुर्जर भाषा में एक भी नहीं लिखा। अपने जन्म-प्रान्त में भी वे अपनी मातृ-भाषा को छोड़कर, आर्य भाषा में ही व्याख्यान देते रहे। इसलिए मुक्त कण्ठ से कहना पड़ता है कि आर्य समाज की मौलिक जड़ में जीवन डालने वाले श्री दयानन्द जी ही थे।

हरिद्वार में एक दिन महाराज अपने आसन पर बैठे सत्संगियों को समझा रहे थे। बीच में एक सज्जन ने निवेदन किया—"यदि आप अपनी पुस्तकों का अनुवाद कराकर फारसी अक्षरों में छपवा दें, तो पंजाबादि प्रान्तों में जो लोग नागरी अक्षर नहीं जानते उनको आर्य धर्म को जानने की बड़ी सुविधा हो जाय।"

महारज ने उत्तर दिया—"अनुवाद तो विदेशियों के लिए हुआ करता है। नागरी के अक्षर थोड़े दिनों में सीखे जा सकते हैं। आर्यभाषा का सीखना भी कोई कठिन काम है? फारसी और अरबी शब्दों को छोड़कर, ब्रह्मवर्त की सभ्य भाषा ही आर्य भाषा है। यह अति कोमल और सुगम है। जो इस देश में उत्पन्न होकर अपनी भाषा के सीखने में कुछ भी परिश्रम नहीं करता, उससे और क्या आशा की जा सकती है? उसमें धर्म-लगन है, इसका भी क्या प्रमाण है? आप तो अनुवाद की सम्मति देते हैं, परन्तु—दयानन्द के नेत्र तो वह दिन देखना चाहते हैं कि जब काश्मीर से कन्या-कुमारी तक और अटक से कटक तक नागरी अक्षरों का प्रचार होगा। मैंने आर्यावर्त भर में भाषा का ऐक्य सम्पादन करने के लिए ही अपने सकल ग्रंथ

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

आर्यभाषा में लिखे और प्रकाशित किये हैं।"

अल्काट तथा ब्लैवट्स्की स्वामीजी के चरणों में

सहारनपुर में वैशाख सुदी १३ से ज्येष्ठ वदी २ तक स्वामी जी के तथा उनके शिष्यों के व्याख्यान बड़ी धूम से हुए। कर्नल महाशय और मैडम ने भाषणों में भलीभाँति वेद का महत्व गान किया और क्रिश्चियन धर्म की त्रुटियां प्रदर्शित कीं। इन व्याख्यानों में यूरोपियन भी बहुत आते थे। कर्नल अल्काट और मैडम ब्लैवट्स्की स्वामी जी के स्थान पर जाकर सत्संग में ज्ञान-चर्चा करते, आत्मा-सम्बन्धी प्रश्न पूछते और योगाभ्यास की विधियां सुनते थे। वे दोनों अपने को "आर्य" कहते। नीचे बैठकर भोजन पाते। उन्होंने 'ओ३म्' का पदक और यज्ञोपवीत धारण किया हुआ था। वे महाराज को गुरू मानते थे और उनके प्रति अति-विनय प्रदर्शित करते थे।

महाराज एक दिन श्रीयुत छेदीलाल जी की कोठी में आसनारूढ़ थे। उसी समय अल्काट महाशय और ब्लैवट्स्की महाशया भी आ गईं। उन्होंने महाराज को भक्ति भाव से नम्रीभूत नमस्कार किया। योग-चर्चा चलने पर, अल्काट महाशय ने विनय की—"भगवन्! सुना है कि शंकराचार्य अपने कलेवर से आत्मा को निकाल कर परकाया में प्रवेश कर जाते थे। इसमें आपकी क्या सम्मति है?" स्वामी जी ने उत्तर दिया—"शंकराचार्य का परकाया-प्रवेश करना एक ऐतिहासिक विषय है। उसके सत्यासत्य में, कुछ कहा नहीं जा सकता। हां, इतना तो मैं भी दिखा सकता हूँ कि चाहे जिस अंग में, अपनी सारी जीवन-शक्ति को केन्द्रित कर दूँ। इसमें शेष सारा शरीर जीवन-शून्य हो जायगा। परकाया प्रवेश तो इससे आगे एक पाँव उठाना मात्र ही है।" अल्काट महाशय अपने गुरु के ऐसे योग-बल को जान कर अतीव हर्षित हुए।

कायमगंज के निवासी, श्री रामलाल जी वर्षा ऋतु के कष्ट झेलते हुए, मुरादाबाद में इसलिए आकर ठहरे थे कि स्वामी जी से यज्ञोपवीत धारण करें। महाराज ने रामलाल के धर्मभाव और दृढ़ धारणा को देखकर शुभ समय पर विधिपूर्वक, उसे यज्ञोपवीत प्रदान किया है। गायत्री का उपदेश करके शुभ शिक्षा दी।

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

दुखी कौन, सुखी कौन ?

किसी किसी दिन महाराज व्याख्यान में शिक्षाप्रद कहानी भी सुना देते थे। एक दिन सहारनपुर में व्याख्यान देते हुए और यह बतलाते हुए कि दुखी कौन और सुखी कौन है, महाराज ने यह कहानी सुनाई—"एक धनाढय महाजन था। उसका एक मुकद्दमा अदालत में चल रहा था। मुकद्दमे की पेशी की तारीख से कई दिन पहले ही उसे इस चिन्ता ने आ घेरा कि देखें उस दिन क्या होगा ? इस चिन्ता के कारण उसे नींद तक न आती थी। उसके नौकर चाकर अपना काम करके चले जाते और निश्चित होकर सुख की नींद सोते, परन्तु वह सारी रात पलंग पर करवटें बदलता रहता। पेशी के दिन वह पालकी में बैठकर अदालत में गया। कहार तो पालकी रख कर चिलम पीने लगे, उन्हें किसी बात की चिन्ता न थी, परन्तु महाजन चिंतित और उदास ही रहा।" इससे सिद्ध होता है कि धन से सुख नहीं।

शरीर पर विष का प्रभाव

महाशय रामलाल ने गुरुदेव के उपदेशामृत को सिर-आँखों पर स्वीकार किया, अन्तःकरण में बसा लिया। रामलाल जी दस दिन पर्यन्त श्री चरण-शरण में सत्संग लाभ करते रहे। एक दिन उन्होंने बद्धांजलि होकर विनय की—"भगवान् ! आपके आरोग्य पर कोई आघात हुआ जान पड़ता है।" महाराज ने कहा..."इस देह को कई बार विकट तथा विषम विष दिया गया है। ऐसे कालकूट विषों को, कितना ही योग-क्रियाओं से वमन तथा बस्ति-कर्म्म द्वारा, निकाल दिया जाए परन्तु रक्त में मिश्रित हुआ हलाहल विष सर्वांश में नहीं निकालता। उसका प्रभाव कुछ-न-कुछ बना ही रहता है। यही कारण है जो मेरे स्वास्थ्य की आधार-शिला हिल गई है। यदि मुझ पर ऐसे भीषण विष-प्रयोग न किए जाते तो शरीर पर शिथिलता का चिह्न, एक शताब्दी में तो कदापि न दीख पड़ता और न ही इतनी देर तक जरा-रोग इसके पास फटकने पाता।"

माता-पिता की सेवा नहीं की

रामलाल जी ने फिर प्रार्थना की—"गुरुदेव ! जब आप, अपने जनों को

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

नैराश्यनिशा दिखाने वाला शब्द कहने लग गये हैं तो आप ऐसे सुयोग्य शिष्य क्यों नहीं बनाते जो नौका के निपुण नाविक बन सकें, जो सर्वस्व स्वाहा करके भी आपके उद्देश्य की पालना करें ?"

महाराज ने गम्भीर भाव से कहा—"वत्स ! मैंने पहले-पहल पाठशालायें चलाकर अनेक पंडित शिष्य बनाए। वे लोग मेरे सम्मुख तो बहुतेरी विनय-अनुनय प्रदर्शित करते परन्तु मुझ से पृथक् होकर वैसे-के-वैसे पौराणिक बने रहते। कई एक तो मेरे प्रतिकूल अपनी चालों का ताना-बाना तनने लग जाते। अब तो मुझे निश्चय हो गया है कि इस जन्म में, सुयोग्य शिष्य नहीं मिलेगा। इसका प्रवल कारण भी है। मैं तीव्र वैराग्य-वश, यौवन-काल ही में, अपने पूज्य माता-पितादि परिवार-परिजन का परित्याग कर मृत्यु को जीतने के लिए योगाभ्यास करता रहा हूँ। मैंने घर छोड़ते समय माता की ममता का कोई ध्यान नहीं किया। पितृ-ऋण भी नहीं उतारा। ये ऐसे कर्म हैं जो मुझे सुयोग्य शिष्य मिलने के मार्ग में प्रवल प्रतिबन्धक हैं। परन्तु निराशा की कोई बात नहीं है। आर्यसमाज में ऐसे जन अवश्य प्रकट होंगे, जो मेरे परम लक्ष्य का पूर्णता से पालन करेंगे।"

गिरजाघर में उपदेश

पादरी स्काट के साथ महाराज की प्रीति थी। बरेली में स्काट महाशय, अत्यादर से प्रतिदिन व्याख्यान में आते थे। वह पहला ही दिन था कि उनके निरन्तर आने में अन्तर पड़ा। स्वामी जी ने व्याख्यान के पश्चात् पूछा कि भक्त स्काट नहीं आये ? किसी ने उत्तर दिया कि आदित्यवार को उनका गिर्जा होता है, इसीलिए वे नहीं आ सके। भवन के बाहर आकर महाराज ने कहा कि चलो, आज भक्त स्काट का गिर्जा देख आयें। तीन-चार सौ मनुष्यों के साथ स्वामी जी गिर्जे में पहुँचे। स्वामी जी को आते देख स्काट महाशय तत्काल वेदी पर से नीचे उतर आये और प्रार्थनापूर्वक महाराज को वेदी पर ले जाकर उपदेश के लिए विनय की। उनके आग्रह पर स्वामी जी ने वहाँ कोई एक घड़ी पर्यन्त उपदेश दिया और मनुष्यों को ईश्वर न मानने में दोष दिखाये। लोगों ने उनके भाषण को एकाग्रचित होकर श्रवण किया।

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

सिंह-गर्जना

बरेली में जब खण्डन का खड्ग चला, तो और तो और, कमिश्नर-कलक्टर इत्यादि भी रुष्ट हो गये। उन्होंने लाला लक्ष्मीनारायण को, जिसके पास स्वामीजी ठहरे हुए थे, कहा कि स्वामीजी को रोको, परन्तु स्वामीजी तक यह बात पहुँचाये कौन ? निदान कांपते-डरते यह बात महाराज के कानों तक पहुँचाई गई। उस दिन के व्याख्यान में भी सब सरकारी हाकिम आये हुए थे। महाराज ने सत्य का महत्व वर्णन करते हुए कहा कि लोग कहते हैं कि सत्य को प्रकट न करो, कलक्टर क्रूद्ध होगा, कमिश्नर अप्रसन्न होगा, गवर्नर पीड़ा देगा—अरे चक्रवर्ती राजा क्यों न हो, हम तो सत्य ही कहेंगे। इतना कह कर महाराज ने एक उपनिषद्वाक्य पढ़ा, जिसमें कहा गया था कि ात्मा को कोई हथियार छेदन नहीं कर सकता, न उसे आग ही जला सकती है और फिर गरज कर बोले—"यह शरीर तो अनित्य है। इसकी रक्षा में प्रवृत्त होकर अधर्म करना व्यर्थ है। इसे जिस मनुष्य का जी चाहे नष्ट कर दे" और फिर चारों ओर अपने नेत्रों की ज्योति डाल कर, सिंहनाद करते हुए कहा—परन्तु मुझे वह शूरवीर दिखलाओ जो यह कहता हो कि वह मेरे आत्मा का नाश कर सकता है। जब तक ऐसा वीर इस संसार में दिखाई नहीं देता, तब तक मैं यह सोचने के लिये भी तैयार नहीं हूँ कि मैं सत्य को दबाऊंगा या नहीं ?

मुंशीराम प्रभावित हुए

जिन दिनों में महाराज बरेली में धर्म-प्रचार कर रहे थे उन्हीं दिनों युवक मुंशीरामजी के पिता यहाँ नगर के कोतवाल थे। युवक अपने पिता के पास ही आया हुआ था। उस समय वह राजकीय महाविद्यालय में अध्ययन करता था। ईश्वर और वेद में उसका विश्वास न था। धर्म-कर्म में भी उसकी धारणा न थी।

मुंशीरामजी के पिता पुराण-धर्म में बड़े निष्ठावान् थे। प्रतिदिन तीन घन्टे तक पूजा-पाठ का परायण करते। उन्होंने स्वामीजी का पहला व्याख्यान श्रवण किया और घर पर आकर अपने पुत्र से कहा—"मुन्शीराम ! यहां एक

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

दण्डी स्वामी आये हैं। बड़े विद्वान् और योगीराज हैं। उनके उपदेश सुनने से तुम्हारे सारे संशय अवश्य दूर हो जायेंगे।" पुत्र ने कहा—"बहुत अच्छा, कल मैं आपके साथ अवश्य चलूंगा। परन्तु उनके मन में यही धारणा बनी रही कि वह संस्कृत-मात्र जानने वाला साधु कोई बुद्धि की बात क्या बता सकेगा? आगामी दिन जब सत्संग में गये तो महाराज के दर्शन से ही वे प्रभावित हो गये। स्काट महाशय आदि योरुपीय सज्जनों के हृदय में स्वामीजी का महत्व देख, उनमें और भी लगन बढ़ी। परन्तु जब पाव घड़ी पर्यन्त उपदेश सुन लिया तो मुंशीरामजी की विचार परम्परा में बड़ा भारी पलटा आ गया। वे भगवान् के यौक्तिक कथनों पर आश्चर्यचकित हो गए। दैव-योग से उस दिन उपदेश भी परमात्मादेव के 'ओ३म्' नाम पर था। वह व्याख्यान उनके लिए अभूतपूर्व था। इसलिए उनको अपार प्रसन्नता प्राप्त हुई। उस दिन से वे प्रायः महर्षि के उपदेशों को सुनते रहे।

अब मुन्शीरामजी को यह धुन समाई कि महाराज की जीवनचर्या को देखना चाहिए। इस लगन में मग्न वे पहली बार तो रात के ढाई बजे ही गाड़ी में बैठकर उस उद्यान के निकट जा पहुँचे, जहां महाराज का निवास था। कोपीन-मात्र धारण किए जब ऋषि उद्यान-द्वार से बाहर भ्रमणार्थ आने लगे तो वे पीछे-पीछे हो लिये। महाराज की गति का वेग इतना तीव्र था कि यह युवक थोड़ी देर ही पीछे चलकर हाँपने लगा और गाड़ी में बैठकर घर चला आया। परन्तु अगले दिन उनकी लगन की मात्रा इतनी बढ़ गई कि वे रात के बारह बजे उठ बैठे और उद्यान के समीप जा खड़े हुए। इस बार वे बहुत दूर तक उनके पीछे गए। वे महाराज को कुछ काल तक ध्यानावस्थित भी अवलोकन कर सके।

मुन्शीराम जी ने अपने तर्क-शक्ति के अभिमान में महाराज के साथ ईश्वर विषय में प्रश्न किए, परन्तु स्वामीजी की युक्तियों ने उन्हें दस पल में अवाक् बना दिया। युवक ने तीन बार ये वाक्य दुहराए—महाराज! आपने मेरा मुंह तो बन्द कर दिया, परन्तु अभी तक मुझ में विश्वास का अंकुर उत्पन्न नहीं हुआ।" स्वामीजी ने उत्तर दिया—"महाशय! आपकी युक्तियों का मैंने युक्तियों से खण्डन कर दिया है। विश्वास तो परमात्मा की कृपा से हुआ करता है।"

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

भ्रष्ट भोजन कौन सा ?

एक दिन सुखवासी लाल साध स्वामी जी के लिए कढ़ी और भात बना कर लाये और उन्होंने उसे खाया। इस पर ब्राह्मणों ने कहा कि आप भ्रष्ट हो गये, जो साधों के घर का भोजन खा लिया। महाराज ने उत्तर दिया कि भोजन दो प्रकार से भ्रष्ट होता है, एक तो यदि किसी को दुःख देकर प्राप्त किया जाय और उससे अन्न आदि क्रय करके भोजन बनाया जाय। दूसरे भोजन मलिन हो या उसमें कोई वस्तु गिर जाय। साध लोगों का परिश्रम का पैसा है, उनसे प्राप्त किया हुआ भोजन उत्तम है।

मनोमन्दिरों से मूर्तियाँ निकालना चाहता हूँ

जिन दिनों स्वामीजी फर्रूखाबाद में थे एक दिन उनके बाजार की नाप हो रही थी। उसी सड़क में एक छोटी-सी मढ़िया थी। उसमें लोग धूप-दीप किया करते थे। श्री मदनमोहनलाल ने आकर स्वामीजी को कहा—"महाराज! स्काट महाशय आपको बहुत मानते हैं। यदि आप उनको संकेत भी कर दें तो यह मढ़िया मार्ग में से मार्जित हो सकती है। भ्रम का स्थान दूर हो सकता है।" स्वामीजी ने उनसे कहा— ऐसी उलटी पट्टी मुझे न पढ़ाइये। ऐसे टेढ़े, तिरछे और तीखे मार्गों से किसी मत को हानि पहुँचाना अधर्म है। द्रोह, नीचता और अन्याय है। मुसलमान बादशाहों ने सैंकड़ों मन्दिरों को मूर्तियों सहित मलियामेट कर दिया, परन्तु मूर्ति-पूजा बन्द करने में सफल न हो सके। हमारा काम तो, मनुष्यों के मनोमन्दिरों से मूर्तियाँ निकालना है, न कि ईंट-पत्थर के बने देवालयों को तोड़ना-फोड़ना।"

सत्य को नहीं छिपा सकता

रानापुर के महाशय गुलाबचन्द लाल जी स्वामीजी के भक्तों में से थे। उन्होंने एक दिन निवेदन किया, "महाराज! मुसलमानों के विरुद्ध कुछ भी न कहिएगा। ये लोग चटपट बिगड़ बैठते हैं, और लड़ाई-झगड़े पर उतर आते हैं।" स्वामीजी उस समय तो मौन रहे, परन्तु व्याख्यान में मुसलमान मत पर तीक्ष्ण, तर्क-तीर वर्षा करते हुए बोले—"छोकरे मुझे कहते हैं कि मुसलमान

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

मत का खण्डन न कीजिए। मैं सत्य को कैसे छिपा सकता हूँ? जब मुसलमानों की चलती थी, उन्होंने हमारा खण्डन खड्ग से किया। परन्तु अन्धेर की बात है कि आज मुझे वचनों द्वारा खण्डन करने से भी रोका जाता है। भला मतमतान्तरों की पोल खोलने से मैं कैसे रुक सकता हूँ।

योग भ्रष्ट को तुरन्त लाभ

ठाकुरदास नाम के एक सज्जन दानापुर में वास करते थे। उन्हें योगभ्यास की जब लगन लगी तो उन्होंने एक निपट अनाड़ी मनुष्य से प्राणायाम सीखना आरम्भ कर दिया। विधि-विहीन, उलटी-पुलटी रीति से पूरक, रेचक और कुम्भक करने पर उनके प्राण प्रकुंपित हो गये। नाभि कमल-निवासी, अपान पवन में गाँठ पड़ जाने से उन्हें सदा पीड़ा रहने लगी। इससे, बड़े दुर्बल और कृश हो गये। एक दिन उन्होंने महाराज के आगे अपने रोग का वर्णन किया। महाराज ने उनको आश्वासन देते हुए कहा—"योगासन से, हम आपका तीन वर्षों का रोग दो-ढाई पल में दूर कर देंगे।"

महाराज ने ठाकुरदास को एक कोठरी में लेजाकर पीठ के बल लिटा दिया और घुटने खड़े रखवाये। उनके पांव पर अपने पांव रखकर दबाव डाला और दूसरी ओर से उनका सिर ऊपर को उठाया। इस क्रिया से वे तत्काल स्वस्थ हो गये। उनकी व्याधि दूर हो गई।

व्यंग्य भाव में उपदेश

इस प्रेमी पुरुष ने प्रार्थना की—"महाराज! अभ्यास में मन लगाने का बहुत ही यत्न करता हूँ, परन्तु इसके तरल तरंग अभंग ही बने रहते हैं, संकल्प-विकल्प शान्त ही नहीं होते।" स्वामीजी ने व्यंग्यभाव से समझाया, "मन नहीं टिकता तो भाँग-भवानी का एक लोटा और चढ़ा लिया करो।" उत्तर सुनकर उसे बड़ा आश्चर्य हुआ। वह मन ही मन कहने लगा कि स्वामी जी को तो 'स्थाली पुलाक न्याय' से भी पता नहीं है कि मैं भाँग पीता हूँ। फिर यह जान कैसे गए? सच हैं सत्पुरुषों के सामर्थ्य की कोई सीमा नहीं पा सकता। एक महाशय ने एक दिन निवेदन किया—"भगवान्! उपासना में चंचल चित्त को टिकाने के लिए किसी योग-क्रिया का उपदेश दीजिए।

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

स्वामीजी ने व्यंग्य वचन से शिक्षा दी कि एक और विवाह कर लो, फिर चित्त आप ही स्थिर हो जायेगा। यह उत्तर सुनकर, वह मनुष्य अति-लज्जित और विस्मित हुआ। लज्जा तो उसे इसलिए आयी कि स्त्री के जीते जी दूसरा विवाह कर लिया था, और आश्चर्य इसलिए हुआ कि बिना बताये महाराज को इसका ज्ञान हुआ तो कैसे हुआ ?

शिष्टाचार की मूर्ति

महाराज सत्य को अति महत्व देते थे। उनका निश्चय था कि जब तक किसी जन अथवा जाति में सत्य नहीं आता तब तक उसकी उन्नति के दिन सुदूर ही रहते हैं। सत्यवादी मनुष्य के लिए वे अति प्रेम व सम्मान प्रदर्शित किया करते। महाराज व्याख्यान-स्थान में आते समय सबको नमस्ते कहा करते। मेल-मिलाप के समय भी नमस्ते उच्चारण करते। उनके पास कोई कितना ही साधारण परिस्थिति का मनुष्य क्यों न जाता वे मुस्कराते हुए पहले नमस्ते कहा करते। उनके इस शिष्टाचार पर प्रेमीजन मोहित हो जाते थे।

स्वदेशी वस्तु अपनाने ही में शोभा है

एक दिन का वर्णन है कि ठाकुर ऊधोसिंह छानल निवासी अपने पिता और ठाकुर भूपालसिंहजी के साथ महाराज के दर्शन करने के लिए अलीगढ़ में आये। उस दिन ऊधोसिंहजी के वस्त्र नये ढंग के थे और सबके सब विलायती कपड़े के बने थे। स्वामीजी ने अति प्यार से कहा, "ऊधव ! देखो, तुम्हारे पिता कैसे मोटे, सादे और अपने देश के कपड़े से बने वस्त्र पहनते हैं। उनका जाति बिरादरी में कितना अधिक सम्मान है। क्या तुम इस विदेशी कपड़े से बने नये वेश से विभूषित होकर अपने पिता से अधिक अच्छे हो गये हो ? ऊधव ! अपने ही देश के वस्तु-वेश को अपनाने में शोभा है।"

स्वामीजी का यह उपदेश ऊधोसिंह के हृदय में घर कर गया और घर पहुँचते ही उन्होंने विदेशी वस्त्रों को उतार फेंका।

निरभिमानता

महाराज में निरभिमानता चरम सीमा को पहुँची हुई थी। अहंकार

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

का लेश भी न था। एक बार एक भद्र पुरुष ने उन्हें कहा—'भगवन् आप तो ऋषि हैं।" महाराज ने उत्तर में कहा—"ऋषियों के अभाव में, आप लोग मुझे ऋषि कह रहे हैं। परन्तु सत्य जानिये, यदि मैं कणाद ऋषि का समकालीन होता तो विद्वानों में भी अति कठिनता से गिना जाता।"

आर्यों को सन्देश

काशी में श्री रामाधर जी ने एक दिन लम्बी सांस लेकर कहा—"भगवन् ! आप इतना पुरुषार्थ करते हैं, परन्तु लोग पौराणिक लीलायें छोड़ते ही नहीं। उन्हीं लोगों में रहकर सुधार कैसे होगा ? ये कहीं हमें भी तो न ले डूबेंगे ?" स्वामी जी ने ढाढस बंधाते हुए कहा—"ब्रह्मसमाजियों और ईसाइयों की भांति पृथक् होकर, सामूहिक जातीय जीवन की मात्रा को घटा देना हमारा उद्देश्य नहीं है। इन्हीं लोगों में रहते हुए अपने कर्त्तव्य-कर्म को करते जाओ। वैदिक धर्म का प्रचार करो। ये लोग यदि आपका विकट विरोध करें और घृणा करें तो भी इनको अपनाने का प्रयत्न करो, परन्तु अपनी धर्म-धारणा से एक उंगली भर भी इधर-उधर नहीं झुकना चाहिए। अन्त में ये सब आपका रूप बन जायेंगे। उतावली से कुछ मनुष्य आगे निकल सकते हैं, परन्तु शोभा सबको साथ लेकर आगे बढ़ने में है।"

मेरठ आर्यसमाज के उत्सव पर, अन्तिम व्याख्यान देते समय, उस अन्तिमाश्रमी महापुरुष ने अतीव अन्त की शिक्षायें दी। उन्होंने कहा—"मुझे लोग कहते हैं, जो कोई आता है आप उसे ही भरती कर लेते हैं। मेरा इस विषय में स्पष्ट उत्तर है कि मैं वेद ही को सर्वोपरि मानता हूँ। वेद ही ऐसी पुस्तक है कि जिसके झण्डे तले सारे आर्य आ सकते हैं। इसलिए जो मनुष्य कह दे कि मैं वेदों को मानता हूँ और आर्य हूँ, उसे आर्यसमाज में सम्मिलित कर लो। ऐसे विश्वासी को अस्वीकार नहीं किया जा सकता। लोग भिन्न-भिन्न भेद पर अधिक दृष्टिपात करते हैं परन्तु आप लोग परस्पर भेद-मूलक बातों की अपेक्षा मेल-मूलक बातों पर अधिक ध्यान दो। तुच्छ भेदों और विरोधों को त्याग कर मेल-जोल की बातों में मिलाप सम्पादन करो। आपस में मिलती बातों में मिल जाने से विरोध और भेद स्यंमेव मिट जाते हैं।

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

"अब आपको अपना कर्त्तव्य आप पालन करना चाहिए। अपने जीवन को ऊँचा बनाओ और अपनी आवश्यकताओं को आप पूर्ण करो। इस समय तो यह अवस्था है कि जब कोई प्रबल प्रतिपक्षी आ जाता है तो आप तार पर तार देकर, मुझे ही बुलाते हैं। किसी संशय के उत्पन्न होने पर मुझ पर ही अवलम्बित रहते हो, उपदेश कराने हों तो मुझ पर ही निर्भर करते हो। जब कभी आप में परस्पर की फूट, फूट निकलती है, वैमनस्य बढ़ जाता है, अनबन बढ़ने लगती है और वैर-विरोध उत्पन्न हो जाता है तो उसे मिटाने की चिन्ता मुझे ही करनी पड़ती है। मैं ही आकर आप में शान्ति-स्थापना करता हूँ। आपके अन्तःकरणों में अवनतिकारी अन्तर नहीं पड़ने देता। आपके पारस्परिक स्नेह के सुकोमल सूत्र को छीजने नहीं देता। परन्तु महाशयो! मैं कोई सदा नहीं बना रहूँगा। विधाता के नियम-न्याय में मेरा शरीर भी क्षणभंगुर है। काल अपने कराल पेट में सबको पचा डालता है। अन्त में इस देह के कच्चे घड़े को भी उसके हाथ टूटना है।

'सोचो, यदि अपने पांव खड़ा होना नहीं सीखेगे तो मेरे आँख मीचने के पीछे क्या करोगे? अभी से अपने को सुसज्जित कर लो। स्वावलम्बन के सिद्धान्त का अवलम्बन करो। अपनी आवश्यकताओं को पूर्ण करने के योग्य बन जाओ। किसी दूसरे के सहारे की अपेक्षा अपने ही पर निर्भर करो। मुझे विश्वास है कि आप में ऐसे अनेक सज्जन उत्पन्न होंगे जो उत्तमोत्तम कार्य कर दिखायेंगे। प्राणपण से अपने पवित्र प्रणों की पालना करेंगे। आर्यसमाज का बड़ा विस्तार हो जायेगा। कालान्तर में ये वाटिकायें हरी-भरी, फूली-फली और लहलहाती दिखाई देंगी। ईश्वर-कृपा से वह सब कुछ होगा, परन्तु मैं नहीं देख सकूंगा।"

महाराज के इस भाषण का लोगों पर बड़ा प्रभाव पड़ा। सबके हृदय उछल पड़े। गात रोमांचित हो गये। उनकी आँखें आँसुओं के बादलों से आच्छादित हो गई। महाराज के कथन से ऐसा प्रतीत होता था कि वे होनी की निश्चित तिथि देखकर यह कह रहे हैं। अपने मानसपुत्रों को बिछड़ते समय का उपदेश दे रहे हैं। मानो इस नौका का यह निपुण नाविक, अब आप, विदा हुआ चाहता है। इसलिए यात्रियों ही को अखिल खेप सौंपकर, नौका खेने के लिए खेवट बना रहा है।

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

देहरादून में बहुतसे सज्जनों ने महाराज की फोटो लेने का आग्रह किया। वे पहले तो मानते ही न थे। कहते कि आज तक हमने किसी को अपनी प्रत्याकृति नहीं लेने दी। परन्तु लोगों के अत्यन्त अनुनय-विनय पर उन्होंने प्रत्याकृति उतरवाना स्वीकार कर लिया। कुंवरसिंह नाम के एक प्रतिष्ठित व्यक्ति ने उनकी छवि ली। सिर पर साफे और गले में दुपट्टे वाली छवि देहरादून में ही ली गई थी।

स्वामीजी के चरणों में पं० लेखराम

पण्डित श्री लेखराम जी के हृदय में महाराज के दर्शनों की तीव्र लालसा उत्पन्न हो आई। वे, कुछ काल के लिए अपने सारे कामकाज छोड़कर, पंजाब से अजमेर जा पहुँचे। ज्येष्ठ व० ४ सं० १९३८ के प्रातः काल श्री सेवा में उपस्थित हुए। उन्होंने, भक्ति-भाव के भार से नम्रीभूत होकर, श्री चरणों में विनीत नमस्ते निवेदन किया। उनके प्रेम-रस से रसीले, विमल लोचनों को, मधुर मुखमण्डल को, शोभाशाली विशाल ललाट को और पतित-पावनी परम पवित्र आकृति को अवलोकन कर, आर्य धर्म वंश के सुवीर सुपूत को अतिशय प्रसन्नता उपलब्ध हुई। वे मार्ग की सारी थकान तत्काल भूल गये। वे अतृप्त लोचनों से स्वामी जी के सुन्दर स्वरूप को देखने लगे। उन्होंने स्वामी जी से अपनी सारी शंकाओं का निराकरण किया।

योग बल का प्रताप

एक दिन पश्चिमी विज्ञान का एक धुरन्धर पण्डित स्वामी जी के निकट आया। वह योग की सिद्धियों को भ्रममूलक मानता था। उसने योग विभूतियों के विषय में पूछा कि क्या आप इनको मानते हैं? स्वामी जी ने योग-सिद्धियों को सिद्ध करते हुए कहा कि क्या आप समझते हैं कि मेरा इतना बड़ा काम बिना योग-सिद्धि के ही हो रहा है। इतने ही शब्दों से, उसका वज्रसदृश कड़ा मन पिघलकर मोम सा नर्म हो गया और उसे आर्यसमाज से प्रीति हो गई।

उन दिनों चित्तौड़ में बड़ी चहल-पहल थी। लाट रिपन महोदय की वहां राज-सभा लगने वाली थी। इसलिए उदयपुर के अन्तर्गत जितने भी राजे

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

और ठाकुर थे सब अति सजधज से वहां एकत्र हो रहे थे। मेवाड़ राज्य की सारी शोभा, अतिशय तड़क-भड़क की वेश-भूषा में वहाँ शोभायमान थी। श्रीयुत राणा सज्जनसिंह जी, अपने स्वजन समूह और कर्मचारी वर्ग-सहित सुशोभित थे।

स्वामी जी का सत्संग प्रतिदिन सायंकाल लगा करता। उसमें मेवाड़ राज्य के प्रायः सभी राजे जाते, श्री-दर्शनों और उपदेशों से लाभ उठाते।

एक सज्जन ने स्वामी जी से निवेदन किया—"भगवन्! पातंजल-शास्त्र का विभूति-पाद क्या सच्चा है?" उन्होंने कृपा की, "आप यों ही सन्देह करते हैं। योग-शास्त्र तो अक्षरशः सत्य है। वह कोई पुराणों की सी कल्पना नहीं है, किन्तु क्रियात्मक और अनुभव-सिद्ध शास्त्र है। दूसरी विद्याओं में उत्तीर्ण होने के लिए, आप लोग कई वर्ष व्यय करते हैं। इसके लिए यदि आप तीन मास तक मेरे पास निवास करें और मेरे कथनानुकूल योग-क्रियायें साधें तो आप, इस शास्त्र की सिद्धियों का साक्षात् स्वयं कर लेंगे।"

राजाओं का सुधार

स्वामी जी के पास गुजरात-काठियावाड़ और आगरा-अवध आदि प्रान्तों से निमन्त्रण-पत्र लगातार आते थे परन्तु उन्होंने देशीय शासकों को सुधारने के विचार से राजस्थान को प्रस्थान कर दिया। आषाढ़ सुदी ३ संवत् १९३९ को बम्बई से चलकर खण्डवा, इन्दौर, रतलाम और जावरा आदि नगरों में धर्मोपदेश करते हुए श्रावण सुदी ९ संवत् १९३९ को चित्तौड़ में सुशोभित हुए। चित्तौड़ से उदयपुर में पधारे। वहां वे नौ-लखा उद्यान में, एक सुन्दर धवलराज मन्दिर में—विराजमान हुए। उस समय उनके साथ रामानन्द ब्रह्मचारी, स्वामी आत्मानन्द जी और पण्डित भीमसेनी जी थे। दो-एक सेवक भी थे। जिस दिन महाराज ने अपने चरण-स्पर्श से उदयपुर को शोभा प्रदान की उसी दिन श्री राणा जी मन्त्रिमण्डल और पुरोहितों-सहित श्री-दर्शनों को आये। पुरातन आर्य राजाओं की भांति, राणा श्री सज्जनसिंह जी आगे-आगे पैदल चलते थे और उनके पीछे सैकड़ों लोगों की भीड़ चली आती थी। स्वामी जी के समीप जाकर श्री राणा जी ने अति नम्र नमस्कार किया और कुशल-प्रश्नोत्तर यथायोग्य आसन पर बैठ गए। कुछ काल तक वार्त्तालाप

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

करने के पश्चात् राणा जी आज्ञा लेकर चले आये।

राजस्थान में प्रचार

महर्षि दयानन्द जी के ऐतिहासिक जीवन का अन्तिम दृश्य बड़े भाव-भीने शब्दों में श्री पं० इन्द्रविद्यावाचस्पति ने "आर्यसमाज का इतिहास" नामक पुस्तक में खींचा है उसे हम उन्हीं के शब्दों में ही उद्धृत किए दे रहे हैं :—

उदयपुर में स्वामीजी १८८३ ईस्वी के फरवरी मास के अन्त तक रहे। मार्च के प्रारम्भ में आप शाहपुरा रियासत की राजधानी में पहुँच गए। शाहपुराधीश राजा नाहरसिंह जी स्वामीजी के भक्तों में से थे। उन्होंने बड़े भक्तिभाव से स्वागत किया। अपने विशेष बाग नाहरसिंह-निवास में स्वामीजी का आसन जमाया। प्रतिदिन वैदिक धर्म का प्रचार होने लगा। महाराज स्वयं प्रतिदिन सायंकाल ३ घंटे के लिए शिष्य भाव से आते थे, और अध्ययन करते थे। मनुस्मृति, योगदर्शन, वैशेषिक दर्शन आदि के आवश्यक भागों का महाराज ने पाठ समाप्त कर लिया।

स्वामीजी के उपदेशों से प्रेरित होकर महाराज ने महलों में एक यज्ञशाला बनवाई, जिसमें प्रतिदिन हवन कराने का संकल्प किया। मई मास के मध्य तक शाहपुरा में धर्मवृष्टि करके ऋषि १७ मई १८८३ को जोधपुर की ओर रवाना हुए। शाहपुरा से जोधपुर की ओर रवाना होते समय महाराजा नाहरसिंह ने स्वामीजी से कहा कि "महाराज, आप जोधपुर तो जाते हैं, परन्तु वहां वेश्या आदि का खण्डन न करना।" ऋषि ने उत्तर दिया कि "राजन्, मैं बड़े वृक्ष को नहेरने से नहीं काटता, उसके लिए तो बड़े शस्त्र की आवश्यकता होगी।"

जोधपुर में प्रचार

जोधपुर में कर्नल सर प्रतापसिंह और रा० रा० तेजसिंह आदि रईस ऋषि के शिष्य हो चुके थे। वे लोग देर से निमन्त्रण भेज रहे थे। अब समय पाकर ऋषि ने जोधपुर राज्य में भी सुधार का शब्द उठाने का संकल्प किया। शाहपुरा से आप अजमेर आए और वहाँ से जोधपुर के लिए रवाना हुए। अजमेर के आर्यपुरुषों ने ऋषि की सेवा में उपस्थित होकर फिर निवेदन किया

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

कि "अब आप मारवाड़ प्रान्त में पधारते हैं, वहाँ के मनुष्य प्रायः गंवार और उद्दण्ड हैं, और उनका स्वभाव और बर्ताव भी अच्छा नहीं है, इसलिए अभी आप वहाँ न जाइये।" ऋषि ने उत्तर दिया कि "यदि लोग मेरी उंगलियों की बत्तियाँ बनाकर जलाएं, तब भी मुझे कुछ शंका नहीं हो सकती। मैं वहाँ जाऊँगा और अवश्य वैदिक धर्म का प्रचार करूँगा।"

इस उत्तर को सुनकर सब चुप हो गए परन्तु एक सज्जन ने निवेदन किया कि "तथापि आप वहाँ सोच-समझ कर और मधुरता से काम लेना, कारण यह कि वहाँ के रहने वाले कठोर होते हैं।" इसका उत्तर ऋषि ने दिया कि ',मैं पाप के बड़े-बड़े वृक्षों की जड़ें काटने के लिए तीक्ष्ण कुठारों से काम लूंगा, न कि उन्हें बढ़ाने के लिए कैंचियों से उनकी कलम करूँगा।"

जोधपुर में स्वामीजी का भली प्रकार स्वागत हुआ। राजा जवानसिंह जी ने आवभगत की, पीछे से महाराज प्रतापसिंह और रा० रा० तेजसिंह आदि रईसों ने दर्शन किए और आतिथ्य का उचित प्रबन्ध किया। कुछ दिनों पीछे स्वयं जोधपुराधीश महाराज यशवन्तसिंह भी दर्शनों को आए। ऋषि ने उन्हें बहुत उपदेश दिया। प्रतिदिन सायंकाल के समय स्वामीजी सर्वसाधारण को धर्मोपदेश करते और फिर दो घंटे तक राजभवन में जाकर महाराज तथा उनके अन्य समीपवर्तियों की शंकाओं का निवारण करते। महाराज प्रतिदिन ऋषि से कुछ-न-कुछ सीखते थे। ऋषि ने अपने व्याख्यानों में मूर्ति-पूजा, वेश्यागमन, चक्रांकित सम्प्रदाय और इस्लाम का बड़े जोर से खण्डन किया। जोधपुर में यही त्रुटियाँ थीं। जोधपुर के पुजारी बड़े प्रचण्ड थे, महाराज और रईसों पर वेश्याओं का पूरा अधिकार था, रियासत में चक्रांकितों का जोर था, और राज्य के मुसाहिब आला भब्बा फैजुल्ला खां इस्लाम के खण्डन से बहुत क्षुब्ध हो गये थे। एक रोज उन्होंने स्वामीजी को यहाँ तक कह दिया कि यदि इस समय मुसलमानों का राज्य होता तो आप ऐसे व्याख्यान नहीं दे सकते थे और यदि देते तो जीवित नहीं रह सकते थे। स्वामीजी ने उसका उत्तर दिया कि "अस्तु कोई बात नहीं है। मैं भी उस समय दो क्षत्रिय राजपूतों की पीठ ठोक देता तो वह उन लोगों को अच्छी तरह समझ लेते।"

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

जोधपुर नरेश को फटकार

इस प्रकार जोधपुर में स्वामीजी के शत्रुओं की संख्या बढ़ रही थी। इस अवसर पर एक और घटना हो गई, जिसने विरोधियों के बल को बहुत बढ़ा दिया। महाराज यशवन्तसिंह का नन्हीं जान नाम की एक वेश्या से गहरा सम्बन्ध था। एक रोज अपने निश्चित समय के अनुसार स्वामीजी दरबार में पहुँचे। उस समय महाराज के पास नन्हीं जान आई हुई थी। स्वामीजी के आने का समय जानकर महाराज उसे डोली में रवाना कर रहे थे। डोली उठने से पूर्व ही स्वामीजी को समीप आता देखकर महाराज घबरा गए और डोली को स्वयं कन्धा लगाकर उठवा दिया। ऋषि ने यह देख लिया। इससे

जोधपुर के महाराजा को वेश्यागमन के लिए फटकारते हुए निर्भीक दयानन्द

उनका चित्त बहुत ही अधिक क्षुब्ध हुआ। उस दिन अपने उपदेश में ऋषि ने राजधर्म का वर्णन करते हुए बताया कि राजा सिंह के समान है और वेश्याएँ कुतियों के समान। राजा का सम्बन्ध सिंहनियों से ही उचित है, कुतियों से नहीं। महाराज का सिर लज्जा से झुक गया और उन्होंने अपने सुधार

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

का निश्चय किया। नन्हींजान को जब यह समाचार मिला तो वह जल उठी। उसका क्रोध सीमा को पार कर गया।

रसोइये द्वारा दूध में घातक विष

२९ सितम्बर १८८३ ई० को रात के समय सोने से पूर्व स्वामीजी ने रोज के नियम से गर्म दूध मंगवा कर पिया। स्वामीजी का रसोइया जगन्नाथ नाम का एक ब्राह्मण था। दूध पीकर स्वामीजी सो गए। थोडी देर पीछे उनके पेट में दर्द उठा और जी मचलाने लगा। रात को कई बार वमन हुआ। स्वामीजी ने किसी को सूचना न दी परन्तु निर्बलता के कारण प्रातः-काल देर में उठे। और घूमने न जा सके। घर की शुद्धि के लिए आपने हवन की आज्ञा दी। हवन किया गया। स्वामीजी की दशा और अधिक खराब होने लगी। उदर शूल पेचिश और वमन का जोर बढ़ने लगा। डाक्टर सूर्यमलजी स्वामीजी के भक्त थे। पहले उनका इलाज प्रारम्भ हुआ परन्तु शीघ्र ही दरबार की ओर से डा० अलीमर्दानखाँ को भेजा गया। इलाज

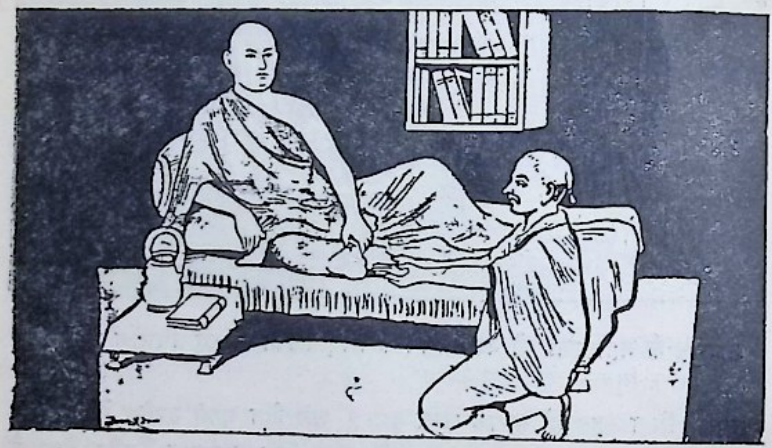

अपने घातक जगन्नाथ पाचक को ५००)की थैली देते हुए ऋषि दयानन्द। दूर चले जाओ जगन्नाथ! ताकि मेरे भक्तों को तुम्हारे कुकृत्य का पता न लगे।

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

बहुत हुआ परन्तु दशा सुधरने की बात तो अलग प्रतिदिन दस्तों की संख्या बढ़ने लगी, शरीर बहुत ही कृश होने लगा। डा० अली मर्दानखां का इलाज बिलकुल उल्टा पड़ रहा था। इस घातक परिवर्तन की तह में डाक्टर की मूर्खता थी, या कोई गहरा भाव था—यह निश्चय पूर्वक कहने का इतिहास लेखक को तब तक कोई अधिकार नहीं जब तक कि किसी एक कल्पना की पुष्टि में कोई निर्विवाद युक्ति न दी जा सके। हाँ यह बात अवश्य सन्देहजनक है कि दशा तो बिगड़ रही थी और डाक्टर साहब यही बताते रहे थे कि दशा अच्छी हो रही है। ऋषि के शरीर में जहर घर कर गया था। डाक्टरों ने यही सम्मति दी थी कि रोगी को जहर दिया है। प्रतीत होता है कि कपटियों की प्रेरणा से जगन्नाथ ब्राह्मण ने रात को सोते समय दूध में जहर मिला कर पिला दिया था। कहा जाता है कि पता लगने पर इस आशंका से कि मेरे भक्त रसोइये को सतायें नहीं, दयालु ऋषि ने किराया देकर उसे नेपाल की ओर भाग जाने को कहा था।

दिव्य शक्ति

इतने कष्ट में भी ऋषि का धैर्य आश्चर्यजनक था। उसे देखकर मित्र और शत्रु दाँतों तले उंगली दबाते थे। इतना कष्ट और "आह" तक नहीं। धैर्य से रोग को सह रहे थे और पूछने पर केवल यथार्थ दशा बतला देते थे। शरीर छालों से भरा हुआ था, बोलने में असह्य कष्ट होता था, हिलना, डोलना भी कठिन हो रहा था, ऐसी दशा में भी ऋषि के मुंह पर न घबराहट थी और न खिझलाहट थी। वही गम्भीर चेहरा था और वही शांत मुद्रा थी। जिन लोगों ने उस दशा में स्वामी जी को देखा, उन्होंने अनुभव किया कि इस मनुष्य में अवश्य ही कोई दिव्यशक्ति काम कर रही है। उनके हृदयों पर यह बात अंकित हो गई कि इस महापुरुष के हृदय में निश्चय से परमात्मा की शक्ति निवास कर रही है।

आबू पर्वत की अन्तिम यात्रा

स्वामीजी की बीमारी का वृत्तान्त बहुत दिनों तक छिपा न रहा। अजमेर में समाचार पहुँचते ही आर्यपुरुष जोधपुर के लिए रवाना हुए और स्वामी

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

जी की यह दशा देखकर आश्चर्यचकित हो गए। रोग की दशा, इलाज की शिथिलता और सेवा की असुविधा देखकर आर्यपुरुषों ने ऋषि से आग्रह किया कि आप आबू पहाड़ पर चलें। ऋषि ने स्वीकार कर लिया। महाराज को सूचना मिलने पर पहले तो वे बहुत दुखित हुए परन्तु फिर स्वामी जी का आग्रह देखकर खिन्न मन से आदरपूर्वक विदाई का प्रबन्ध कर दिया। विदाई के समय स्वयं उपस्थित होकर रास्ते के आराम का भली प्रकार प्रबन्ध कर दिया। जोधपुर से डोले में स्वामी जी आबू पर्वत पर गए, परन्तु वहाँ भी कोई विशेष आराम दिखाई न दिया। तब स्वामी जी के शिष्य उन्हें अजमेर वापिस ले गए। इस यात्रा में उन्हें बहुत शारीरिक कष्ट हुआ परन्तु अच्छा इलाज करने की और स्वयं सेवा करने की शिष्यों की प्रबल इच्छा में बाधा डालना उन्होंने उचित न समझा। अजमेर में स्वामी जी को एक कोठी में ठहराया गया, और डा० लक्ष्मणदास जी का इलाज प्रारम्भ हुआ।

अन्तिम दृश्य

ऋषि का मृत्यु समय निकट आ रहा था। इलाज और सेवा कुछ परिवर्तन पैदा न कर सके। अन्तिम समय का दृश्य एक दर्शक की लेखनी ने जिन सरल शब्दों में चित्रित किया है, हम उससे उत्तम वर्णन नहीं कर सकते, इस कारण उसी को उद्धृत करते हैं :—

"रेल से उतार कर स्वामीजी को पालकी में लिटा दिया गया, और सावधानी से उन्हें एक कोठी में ले गए, जो पहले से इस काम के जिए नियत कर रखी थी। उस समय रात के तीन बजे थे। अक्टूबर का अन्त था, लोगों को सर्दी मालूम देती थी परन्तु स्वामीजी के मुँह से 'गर्मी, गर्मी" का शब्द निकलता था। कोठी के सब दरवाजे खुलवा दिए गए तब भी स्वामीजी को शान्ति न हुई। दूसरे दिन डा० लक्ष्मणदासजी का इलाज शुरू हुआ, पर उनकी दशा में कुछ भी अन्तर न हुआ। एक बार स्वामीजी ने अपने शिष्यों से कहा कि हमको मसूदा ले चलो, इस पर सबने कहा कि आराम होने पर हम आपको वहाँ पहुंचा देंगे, इस दशा में बार-बार यात्रा करना उचित नहीं है। इस पर स्वामीजी ने कहा कि दो दिन में हमको पूरा आराम पड़ जाएगा। वह उत्तर स्मरण रखने योग्य है। अब स्वामीजी के शरीर में छाले ही छाले दीखने लगे।

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

२९ अक्तूबर को स्वामीजी का शरीर अत्यन्त ही निर्बल हो गया । अपने सेवकों से कहा कि हमें बिठा दो । जब बिठाया गया तो कहा कि छोड़ दो, हमें सहारे की आवश्यकता नहीं है । सो कितनी देर तक बिना सहारे के बैठे रहे । उस समय सांस जल्दी-जल्दी चल रहा था पर स्वामीजी उसे रोक कर बल से फेंक देते थे, और ईश्वर के ध्यान में मग्न हो रहे थे । रात को कष्ट अधिक रहा । दूसरे दिन ३० अक्टूबर को डाक्टर न्यूमन साहब बुलाये गये । जिस समय उक्त डाक्टर साहब ने स्वामीजी को देखा तो बड़े आश्चर्य से कहने लगे कि धन्य है इस सत्पुरुष को, हमने आज तक ऐसा दिल का मज-बूत कोई दूसरा मनुष्य नहीं देखा कि जिसको इस प्रकार नख से शिख तक अपार पीड़ा हो और वह तनिक भी आह या ऊह न करे । उस समय स्वामी जी के कण्ठ में कफ की बड़ी प्रबलता थी, जिसकी निवृत्ति के लिए डाक्टर न्यूमन ने कई उपाय किए, परन्तु उनसे कुछ लाभ न हुआ । ११ बजे दिन के स्वामीजी का श्वास विशेष बढ़ने लगा, और कहा कि हम शौच जायेंगे । उस समय स्वामीजी को चार आदमियों ने उठाया, और शौच करने की चौकी पर बिठा दिया । शौच गए, और आप पानी लिया । हाथ धोये, दातुन की और कहा कि अब हमको पलंग पर ले चलो । आज्ञानुसार पलंग पर ला बिठाया । कुछ देर बैठकर फिर लेट गये । श्वास बड़े वेग से चलता था, और ऐसा प्रतीत होता था कि स्वामीजी श्वास को रोक कर ईश्वर का ध्यान करते हैं । उस समय स्वामीजी से पूछा गया कि "महाराज, कहिये, अब आपकी तबियत कैसी है ?" कहने लगे कि "अच्छी है, एक मास के पीछे आज का दिन आराम का है ।"

"उस समय लाला जीवनदासजी ने, जो लाहौर से स्वामीजी को देखने अजमेर गये थे, स्वामीजी से अभिमुख होकर पूछा कि महाराज, "इस समय कहां हैं ?" स्वामीजी ने उत्तर दिया "ईश्वरेच्छा में ।"

"इस समय श्रीयुत के मुख पर किसी प्रकार का शोक या घबराहट प्रतीत नहीं होती थी । ऐसी वीरता के साथ दुःख को सहन करते थे कि मुंह से कभी हाय या शोक नहीं निकला । इसी प्रकार स्वामीजी को बातचीत करते-करते पाँच बज गए, और बड़ी सावधानी से रहे । इस समय हम लोगों ने श्रीयुत से पूछा कि कहिये, अब आपकी तबियत कैसी है ? तो कहने लगे कि

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

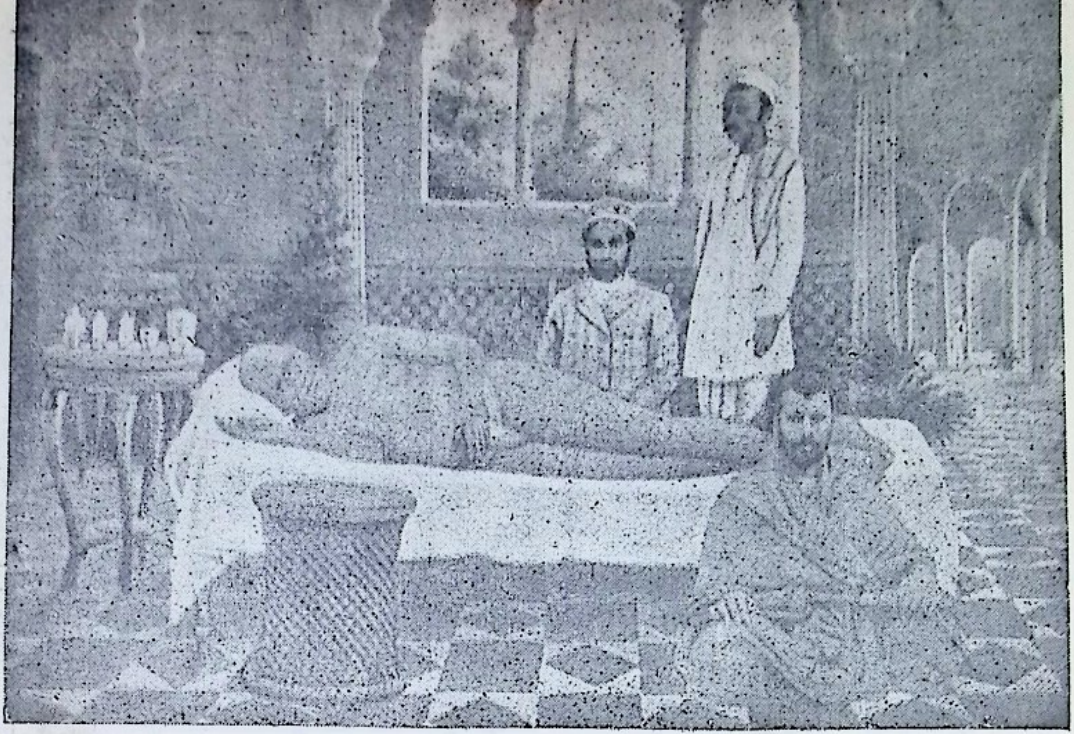

"प्रभो ! तेरी इच्छा पूर्ण हो" कह दीपावली के दिन ऋषि दयानन्द ने देह त्याग दिया। गुरुदत्त सा नास्तिक भी मृत्यु-वेला में ऋषि की अपूर्व गरिमा देख आस्तिक बन गया। धन्य हैं ऋषिवर !

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

"अच्छी है, तेज और अन्धकार का भाव है। इस बात को हम कुछ न समझ सके क्योंकि स्वामीजी इस समय सरल बातचीत कर रहे थे। साढ़े पाँच बजे का समय आया तो हम लोगों से स्वामीजी ने कहा कि अब सब आर्यजनों को, जो दूर-दूर देशों से आये हैं, बुला लो और हमारे पीछे खड़ा कर दो। कोई सम्मुख खड़ा न हो, बस आज्ञा पानी थी, वही किया गया।

"जब सब लोग स्वामीजी के पास आ गये। तब श्रीयुत ने कहा कि चारों ओर के द्वार खोल दो और ऊपर की छत के दो छोटे-छोटे द्वार खोल दो। इस समय पाण्ड्या विष्णुलाल मोहनलाल भी श्रीमान् उदयपुराधीश की आज्ञानुसार आ गए। फिर स्वामीजी ने पूछा कौन-सा पक्ष है, क्या तिथि और क्या वार है? किसी ने उत्तर दिया कि कृष्ण पक्ष और शुक्लपक्ष की सन्धि अमावस मंगलवार है। यह सुनकर कोठी की छत और दीवारों की ओर दृष्टि करके, फिर पहले वेदमन्त्र पढ़े, तत्पश्चात् संस्कृत में ईश्वर की कुछ उपासना की, फिर भाषा में ईश्वर के गुणों का थोड़ा-सा कथन कर बड़ी प्रसन्नता और हर्ष सहित गायत्री मन्त्र का पाठ करने लगे, तत्पश्चात् हर्ष और प्रफुल्लित चित्त सहित कुछ देर तक समाधियुक्त नयन खोल यों कहने लगे कि, "हे दयामय, हे सर्वशक्तिमान् ईश्वर! तेरी यही इच्छा है। तेरी यही इच्छा है। तेरी इच्छा पूर्ण हो। अहा! तैंने अच्छी लीला की!" बस इतना कह स्वामीजी महाराज ने, जो सीधे लेट रहे थे, स्वयं करवट ली और एक प्रकार से श्वास को रोक कर एक बार ही निकाल दिया।"

लेखक के शब्द सरल और अकृत्रिम हैं। ये शब्द बताते हैं कि दर्शकों के हृदयों पर उस तपस्वी की मृत्यु का गहरा असर हुआ। कहते हैं कि लाहौर के पं० गुरुदत्त विद्यार्थी भी लाला जीवनदासजी के साथ ऋषि के दर्शनों को गये हुए थे। पं० गुरुदत्त जी इससे पूर्व अर्धनास्तिक थे। विज्ञान के धक्के ने हृदय के ईश्वर-विश्वास को हिला दिया था। ऋषि की मृत्यु के दिव्य दृश्य को देखकर पंडित जी के कोमल हृदय पर आश्चर्यजनक प्रभाव पड़ा। एक आस्तिक किस शान्ति से मर सकता है, यह देखकर गुरुदत्त का हृदय पिघल गया और जहाँ नास्तिकता के कारण शून्य हो रहा था वहाँ विश्वास और श्रद्धा का

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

अजमेर का वह भवन जहाँ महर्षि दयानन्द ने दीपमालिका के दिन अपने शरीर का त्याग किया था।

सुगन्धित पवन बहने लगा। जो अविश्वासी हृदय के साथ मरता है, उसे भविष्य में निराशा दिखाई देती है। जिसे ईश्वर पर भरोसा नहीं, उसके लिए मौत एक अथाह अंधेरी खाई है। जिसने जीवन में केवल आस्तिकता का दम्भ भरा हो, मृत्यु के समय उसके मुँह पर से पर्दा उठ जाता है और जो प्रत्यक्ष में सन्तुष्ट दिखाई देता था, वह असलियत में अशान्तिमय दिखाई देता है। मृत्युकाल सब पर्दों को उघाड़ देता है। उस समय कोई भाव छुपा नहीं रहता। ऋषि की मृत्यु बताती है कि उनका हृदय ईश्वर विश्वास और धार्मिक श्रद्धा से परिपूर्ण था। ऋषि का जीवन उज्ज्वल था, परन्तु मृत्यु उससे भी बढ़ कर थी। वह दिव्य थी। इस भूगोल पर ऐसे दृश्य कम दिखाई देते हैं। वह ऐसी मृत्यु थी जो नास्तिक हृदय के मरुस्थल में से भी आस्तिकता की सरस्वती को बहा सकती थी।

इस प्रकार दीपावली के दिन संसार का एक महान् पुरुष शांति का मार्ग-दर्शनकर धरती से विदा हो गया! उन के संदेश का प्रसार ही वस्तुतः उन के प्रति सच्ची श्रद्धांजलि है।

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

वेद-ज्ञान और महर्षि दयानन्द की सत्य सनातन विचार धारा के

प्रसार-प्रचार हेतु सहयोग दीजिए

संसार अज्ञान अंधकार में भटक रहा है। विज्ञान और भौतिकवाद ने जीवन के सत्य को भुला दिया। ऐसे में सत्य, धर्म और शांति आनन्द के मार्ग की रक्षा महर्षि दयानन्द के दिव्य स्वप्न पूर्ण कर ही हो सकती है।

हमने 'जन-ज्ञान' द्वारा महर्षि का संदेश फैलाने और जन-जन तक वेद-ज्ञान का संदेश प्रसारित करने का संकल्प लिया है।

साधनों के अभाव में भी महर्षि के सच्चे अनुयायियों के बल और ईश्वर विश्वास के भरोसे हमारा संकल्प सस्ता-आकर्षक और आधुनिकतम वैदिक साहित्य देश विदेश की भाषाओं में प्रकाशित करना है।

हम चल पड़े हैं और बढ़ते जायेंगे। आपका जितना स्नेह, सहयोग हमें मिलेगा, हमारी गति उतनी ही तीव्र होगी। अतः इन पंक्तियों द्वारा प्रत्येक उस व्यक्ति से, जिसे वैदिक धर्म और महर्षि दयानन्द के महान् लक्ष्य से प्यार है हमारी प्रार्थना है कि "जन-ज्ञान" को पूरी शक्ति से सहयोग दीजिए।

१—जन-ज्ञान (मासिक) के ६) भेज कर सदस्य बनिए और इष्ट मित्रों को बनाइए।

२—साहित्य प्रकाशन के लिए जो कुछ भी सहायता दे सकें, दीजिए।

३—अधिक से अधिक साहित्य मँगाकर उसे वितरित कीजिए।

आर्यजन ! हमने कार्य आरम्भ कर दिया, आइए हमारे साथ, और साहित्य के अस्त्र से धरती का अज्ञान दूर कर 'जन-मन' पर 'ओ३म' पताका लहराने का व्रत लीजिए—

महर्षि का दिव्य स्वप्न पूरा करने के लिए हम आपसे सहयोग प्रार्थना कर रहे हैं—स्वीकार कीजिए

'जन-ज्ञान प्रकाशन',
१५९७, हरध्यानसिंह रोड
नई दिल्ली—५

विनीत
भारतेन्द्र नाथ
संचालक,

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

प्रचार के लिए उपयोगी साहित्य

१. **वैदिक सत्संगपद्धति : Vedic Prayer**

अंग्रेजी और हिन्दी में प्रसिद्ध पुस्तिका जिसकी भारी मांग थी, प्रेस में दी जा चुकी है। मूल्य २) किन्तु ३१ दिसम्बर तक आदेश धन सहित प्राप्त होने पर १) प्रति दी जाएगी । कृपया अपनी प्रतियां सुरक्षित करा लें।

२. **विजय का स्रोत**

प्रसिद्ध विद्वान् पंडित सत्यपाल शर्मा एम० ए० "वेद शिरोमणी" द्वारा लिखित ट्रैक्ट, रंगीन आवरण के साथ, मूल्य १५ पैसा। १०) सैं०

३. **विश्व को वेद का संदेश**

भारतेन्द्रनाथ साहित्यालंकार लिखित, मूल्य १०)सैं०। ८०)हजार

४. **मूर्ति पूजा की हानियां**

महर्षि दयानन्द सरस्वती लिखित विचार। ८)सैं०। ६५)हजार

५. **मैं कौन हूं? १८० पृष्ठ**

(प्रो० सन्तराम एम०-एस०-सी० लिखित)

मनुष्य शरीर का आध्यात्मिक और वैज्ञानिक विवेचन। मूल्य २)

६. **आर्य समाज की मान्यताएँ (ट्रैक्ट)**

(पं० रामचन्द्रजी देहलवी लिखित) १०)सैकड़ा । ७०)हजार

७. **पादरियों को चुनौती**

अमर शहीद श्रद्धानन्द के ३६ प्रश्न ३)सैकड़ा। २५)हजार ।

'अधिक से अधिक साहित्य बांटकर धर्म प्रचार में सहयोग दीजिए

जन-ज्ञान प्रकाशन

१५६७, हरध्यान सिंह रोड, नई दिल्ली-५

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

श्रद्धाँजलियाँ : महर्षि के चरणों में

महान् सुधारक

.........स्वामी दयानन्द सरस्वती ने हिन्दू धर्म के सुधार का बड़ा कार्य किया और जहाँ तक समाज सुधार का सम्बन्ध है, वह बड़े उदार-हृदय थे। वे अपने विचारों को वेदों पर आधारित और उन्हें ऋषियों के ज्ञान पर अवलम्बित मानते थे। उन्होंने वेदों पर बड़े-बड़े भाष्य किये, जिससे मालूम होता है कि उनका स्वाध्याय बड़ा व्यापक था।

—मैक्समूलर

दिव्य पुरुष सिंह

"ऋषि दयानन्द ने भारत के शक्ति शून्य शरीर में अपनी दुर्घर्ष शक्ति, अविचलता तथा सिंह-पराक्रम फूंक दिया है।"

ऋषि दयानन्द उच्चतम व्यक्तित्व के पुरुष थे। यह पुरुष सिंह उन में से एक था जिन्हें यूरोप प्रायः उस समय भुला देता है, जबकि वह भारत के सम्बन्ध में अपनी धारणा बनाता है। किन्तु एक दिन यूरोप को अपनी भूल मान कर उसे याद करने के लिये बाधित होना पड़ेगा, क्योंकि उसके अन्दर कर्मयोगी, विचारक और नेता के उपयुक्त प्रतिभा का दुर्लभ सम्मिश्रण था। दयानन्द ने अस्पृश्यता व अछूतपन के अन्याय को सहन किया और उससे अधिक उनके अपहृत अधिकारों का उत्साही समर्थक दूसरा कोई नहीं हुआ। भारत में स्त्रियों की शोचनीय दशा को सुधारने में भी दयानन्द ने बड़ी उदारता व साहस से काम लिया। वास्तव में राष्ट्रीय भावना और जन जागृति के विचार को क्रियात्मक रूप देने में सबसे अधिक प्रबल शक्ति उसी की थी। वह पुनर्निर्माण और राष्ट्र-संगठन के अत्यन्त उत्साही पगम्बरों में से थे।

—रोमारोला

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

महान् प्रकाश स्तम्भ !

"मुझे एक आग दिखाई पड़ती है जो सर्वत्र फैली हुई है अर्थात् असीम प्रेम की आग जो कि द्वेष को जलाने वाली है और प्रत्येक वस्तु को जलाकर शुद्ध कर रही है। अमेरिका के शीतल मैदानों, अफ्रीका के विस्तृत देशों, एशिया के प्राचीन पर्वतों और युरोप के विशाल राज्यों पर मुझे इन सब को जलाने वाली और इकट्ठा करने वाली आग की ज्वालाएँ दिखाई देती हैं। इसकी चर्चा निम्नस्थ देशों से उठी है। अपने सुख और उन्नति के लिए इसे मनुष्य ने स्वयं प्रज्वलित किया है।

हिन्दू और मुसलमान इस प्रचण्ड अग्नि को बुझाने के लिए चारों ओर वेग से दौड़े परन्तु यह आग ऐसे वेग से बढ़ती गई कि जिसका इसके प्रकशक स्वामी दयानन्द को ध्यान भी न था और ईसाइयों ने भी जिनके मत की आग और पवित्र दीपक पहले-पहल पूर्व में ही प्रकाशित हुए थे, एशिया के इस नए प्रकाश के बुझाने में हिन्दुओं और मुसलमानों का साथ दिया, परन्तु यह ईश्वरीय आग और भी भड़क उठी और सर्वत्र फैल गई।

सम्पूर्ण दोषों का संघट्ट नित्य की शुद्ध करने वाली भट्टी में जल कर भस्म हो जायगा, यहाँ तक कि रोग के स्थान में आरोग्य झूठे विश्वासों की जगह तर्क, पाप के स्थान में पुण्य, अविद्या की जगह विज्ञान, द्वेष की जगह मित्रता, वैर की जगह समता, नरक के स्थान में स्वर्ग, दुःख के स्थान में सुख, भूत प्रेतों के स्थान में परमेश्वर और प्रकृति का राज्य हो जायगा। मैं इस अग्नि को मांगलिक समझता हूँ। जब यह अग्नि सुन्दर पृथ्वी को नव जीवन प्रदान करेगी तो सार्वजनिक सुख, अभ्युदय और आनन्द का युग आरम्भ होगा।

यह आग एक भट्ठी में थी जिसे आर्यसमाज कहते हैं। यह भारतवर्ष के परम योगी दयानन्द के हृदय में प्रज्वलित हुई थी।"

—ऐन्ड्रयूज जेक्सन

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

स्वराज्य प्राप्ति के इच्छुक

"बहुत से धार्मिक तथा सदाचार सम्बन्धी कारणों के कारण हिन्दू परतन्त्र जाति बनी, उसका ऋषि दयानन्द ने खेद व्यक्त किया था। दयानन्द के प्रचार का मुझे एक उद्देश्य दिखाई देता है—कि देश को स्वराज्य प्राप्त हो।"

न्यायमूर्ति जस्टिस पी० हेरीसन

श्री ऋषि चरणों में !

'ऋषिवर ! आपकी दिव्य मूर्ति मेरे हृदय-पट पर अब तक ज्यों की त्यों अंकित है। निर्बल हृदय के अतिरिक्त कौन मरणधर्मा मनुष्य जान सकता है कि कितनी बार गिरते-गिरते आपके स्मरण-मात्र ने मेरी आत्मिक रक्षा की है। आपने कितनी गिरी हुई आत्माओं की काया पलट दी, इसकी गणना कौन मनुष्य कर सकता है ? परमात्मा के बिना जिनकी पवित्र गोद में आप इस समय विचर रहे हो, कौन कह सकता है कि आपके उपदेशों से निकली हुई अग्नि ने संसार में प्रचलित कितने पापों को दग्ध कर दिया है परन्तु अपने विषय में मैं कह सकता हूँ कि आपके सहवास ने मुझे कैसी गिरी हुई अवस्था से उठाकर सच्चा जीवन लाभ करने के योग्य बनाया।

मैं क्या था, क्या बन गया और क्या हूँ, यह सब आपकी कृपा का ही परिणाम है।

भगवान् ! मैं आपका ऋणी हूँ। उस ऋण से मुक्त होना चाहता हूँ। इसलिए जिस परमात्मा की असीम गोद में आप परमानन्द का अनुभव करते हैं उसी से प्रार्थना कर रहा हूँ कि मुझे आपका सच्चा शिष्य बनने की शक्ति प्रदान करें।"

—श्रद्धानन्द सरस्वती

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

स्वराज्य के सर्वप्रथम संदेश वाहक

"ऋषि दयानन्द जाज्वल्यमान नक्षत्र थे जो भारतीय आकाश पर अपनी अलौकिक आभा से चमके और गहरी निद्रा में सोए हुए भारत को जागृत किया। "स्वराज्य" के वे सर्व-प्रथम सन्देश वाहक तथा मानवता के उपासक थे।'

—लोकमान्य तिलक

आधुनिक ऋषियों में महान्

"महर्षि दयानन्द के विषय मे मेरा मंतव्य यह है कि वह हिन्दुस्तान के आधुनिक ऋषियों, सुधारकों श्रेष्ठ पुरुषों में से एक थे। उनका ब्रह्मचर्य, विचार स्वतन्त्रता, सर्व-प्रति प्रेम, कार्य-कुशलता आदि गुण लोगों को मुग्ध करते थे। उनके जीवन का प्रभाव हिन्दुस्तान पर बहुत ही पड़ा है मैं जैसे-जैसे प्रगति करता हूँ, वैसे-वैसे मुझे महर्षिजी का बताया मार्ग दिखाई देता है। ब्रिटिश राज्य स्थापित होने के पश्चात् जनता के साथ सीधा सम्पर्क रखने का मार्ग महर्षि दयानन्द ने खोज निकाला। इस का यश महर्षि दयानन्द एवं उनकी आर्यसमाज को प्राप्त है। महर्षि दयानंद तथा उनकी आर्यसमाज ने प्रजा में नवचेतना पैदा की है। हिन्दू समाज की अनेक कुरीतियों को दूर करने का प्रयत्न किया है। राष्ट्रीय शिक्षण, स्त्री शिक्षण तथा दलितोद्धार आदि न भुलाई जा सकें जैसी राष्ट्र महान, सेवा की हैं। मुझे आर्यसमाज बहुत ही प्रिय है। महर्षि दयानंद के इस पवित्र देशोपकारी कार्य कभी भी अपमान होगा तो मैं उसको महापाप समझूंगा।"

—महात्मा गांधी

तपोमूर्ति

"महर्षि दयानन्द तपोमूर्ति थे। उन्होंने भारत में दिव्य ज्योति प्रकाशित की थी। उन्होंने हिन्दू समाज को पुनर्जन्म देने के सब प्रयत्न किये थे। वे भारत को स्वतन्त्र तथा दिव्य देखना चाहते थे। आर्षकाल को पुनः लाने के लिए वे प्रयत्नशील रहे। उन्होंने मृतप्राय हिन्दू जाति में पुनः प्राण संचार किया था। वे हिन्दू संस्कृति की अप्रतिम प्रतिमा तथा भारत माता के अक्षय पात्र थे।"

—महामना श्री मदनमोहन मालवीय

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

महर्षि दयानन्द कृत पुस्तकें

सत्यार्थ प्रकाश सजिल्द	५-००
आत्म कथा	०-४०
स्वमन्तव्यामन्तव्य प्रकाश	०-१०
वेदान्तिध्वान्त निवारण	०-१६
वेद विरुद्ध मत खण्डन	०-३७
शिक्षापत्रीध्वान्त निवारण	०-३७
आर्याभिविनय	०-७५
आर्योद्देश्यरत्नमाला	०-१०
ऋग्वेद भाष्य का प्रथम सूक्त	०-२५
भ्रान्ति निवारण	०-२७
व्यवहारभानु	०-२५
भ्रमोच्छेदन	०-२५
गोकरुणानिधि	०-२०
गृहस्थाश्रम	०-६२
काशी शास्त्रार्थ	०-२०
सत्यधर्म विचार	०-२५
आर्यसमाज के नियमोपनियम	०-१०
ईशोपनिषद्	०-२५
बालशिक्षक	०-३७
यजुर्वेदमूल संहिता सजिल्द	२-५०

जगदीश विद्यार्थी की पुस्तकें

वैदिक प्रश्नोत्तरी	२-००
वेद सौरभ	२-००
ईशोपनिषद्	२-००
वैदिक उदात्त भावनाएँ	२-००
कुछ करो कुछ बनो	२-००
मर्यादा पुरुषोत्तम राम	१-५०
विद्यार्थी की दिनचर्या	१-५०
दिव्य दयानन्द	१-२५
प्रार्थना प्रकाश	१-२५
प्रभात वन्दना	१-२५
हास्य विनोद	१-००
ब्रह्मचर्य गौरव	०-६०
राधास्वामी मत दर्पण	०-५०
भारत की अवनति के कारण	०-२०
विष्णु पुराण की आलोचना	०-४०

संकलित

ऋग्वेद शतकम्	१-००
यजुर्वेद शतकम्	१-००
सामवेद शतकम्	१-००
अथर्ववेद शतकम्	१-००

अन्य विद्वानों की पुस्तकें

ईश, केन, प्रश्न, मुण्डक, माण्डूक्य, ऐतरेय तैतरीय	४-२५
वैदिक सिद्धान्त व्याख्यान माला	२-००
व्याख्यान (अच्युतानन्द)	२-५०
अष्टाध्यायी प्रकाशिका	८-००
आर्य राजनीति के तत्व	०-३०
बृहदारण्यक उपनिषद् कथा	३-००
दर्शनानन्द ग्रंथ संग्रह उत्तरार्द्ध	२-५०
दयानन्द चित्रावली	२-५०
स्त्रियों का स्वास्थ्य और रोग	३-००
विवाह और विवाहित जीवन	२-५०
आर्य समाज क्या है ?	०-७५
वैदिक सन्ध्या रहस्य	०-३७
आर्य सिद्धान्त दीप	१-२५
महर्षि दयानन्द	०-७५
स्वामी श्रद्धानन्द	०-३७

गोविन्दराम हासानन्द, ४४०८ नई सड़क, दिल्ली-६

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

इस मन्दिर में बोध हुआ था,
'मूल' बन थे दिव्य विचारक इस मन्दिर में—
टंकारा' शुभ ग्राम धन्य है पावन मन्दिर,
जहां शान्ति का मूल मन्त्र जागा था।

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

'जन-ज्ञान' मासिक
१५६७, हरध्यान सिंह रोड,
नई दिल्ली—५

दिसम्बर १९६८

Regd. No.
D. 1631

अन्धकार में प्रकाश स्तंभ

महर्षि दयानन्द सरस्वती

जिन्हें शिवरात्रि के दिन बोध हुआ 'मैं कौन हूँ' का उत्
करने का धरती का, मार्ग दर्शन कर दीपावली के दिन वे चले
आइए, हम उन की राह पर चलने का व्रत लें। सम्

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

सुखी होने का उपाय

वस्तु स्वभाव एवं विश्व व्यवस्था

भाग-1

नेमीचन्द पाटनी

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

सुखी होने का उपाय

भाग–१

(वस्तुस्वभाव एवं विश्वव्यवस्था)

लेखक :
नेमीचन्द पाटनी

ASTROLOGY, MANTRA-TANTRA, YOGA,
& ALL TYPES OF JAIN LITERATURE
ARIHANT INTERNATIONAL
239, GALI KUNJAS, DARIBA, DELHI-6 ✆ 3278761

प्रकाशक :
पण्डित टोडरमल स्मारक ट्रस्ट
ए- ४, बापू नगर, जयपुर ३०२०१५

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

प्रथम संस्करण, 26 अप्रैल, 1992: 5200
द्वितीय संस्करण, 1 जनवरी, 1993: 3200
मूल्य : चार रुपया

प्रस्तुत संस्करण की कीमत कम करने वाले दातारों की सूची

क्र.स.	दातार का नाम	स्थान	राशि
1.	श्रीमती बसन्ती देवी हरकचन्द जी छाबड़ा	बम्बई	1500.00
2.	श्री सुभाषचन्द जी जैन	महलका	1100.00
3.	श्री रतनलाल जी जैन	मन्दसौर	1000.00
4.	श्री बाबूलाल जी पहाड़े	हैदराबाद	1000.00
5.	रविन्द्र पाटनी चैरीटेबल ट्रस्ट	बम्बई	500.00
6.	श्री सुशीलाबाई ध.प. श्री जवाहरलाल जी	विदिशा	201.00
7.	श्रीमती आरती अतुल जैन	बम्बई	111.00
8.	श्री शामजी भाणजी शाह द्वारा श्री प्रेमजी भाई गोरे गॉव	बम्बई	111.00
9.	श्री अमृताबहन प्रेमजी जैन द्वारा अतुल भाई जैन	बम्बई	111.00
10.	श्री जयन्ती भाई धनजीभाई दोशी	बम्बई	111.00
11.	चौधरी फूलचन्दजी जैन c/o मनोज एण्ड कम्पनी	बम्बई	101.00
12.	श्री सुरेशचन्द सुनील कुमार जी जैन अशोक बैंगल्स	बंगलोर	101.00
13.	श्रीमती राजकुमारी गोधा ध.प. श्री कोमलचन्दजी गोधा	जयपुर	101.00
14.	श्रीमती प्रेमचन्द जी बडजात्या c/o श्री रोशनलाल हरकचन्द जी दिल्ली		101.00
15	स्व. श्रीमती कुसुमलता बंसल एवं सुनन्द बंसल स्मृति निधि द्वारा डा. राजेन्द्र कुमार जी बंसल, अमलाई		51.00
	कुल राशि		6200.00

मुद्रक : ग्राफिक ऑफसेट प्रिंटर्स, जयपुर

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

विषय - सूची

दो शब्द	–	३
अपनी बात	–	५
मंगलाचरण	–	११
विषय प्रवेश	–	१२
धर्म एवं धर्म समझने कि प्रक्रिया	–	३० से ६६
धर्म किसको करना है	–	३०
मैं कौन हूँ	–	३१
धर्म कहाँ होता है	–	३३
अधर्मभाव कहाँ होता है	–	३४
धर्म प्राप्त करने का मार्ग	–	३५
धर्म का स्वरूप क्या है 'वस्थु सहावो धम्मो'	–	३६
वस्तु क्या है	–	३६
वस्तु का स्वभाव क्या ?	–	३७
सत् द्रव्य लक्षणम्	–	३८
उत्पादव्यय ध्रौव्ययुक्तं सत्	–	३६
गुणपर्ययवद द्रव्यं	–	४०
स्वतंत्रता	–	४२
गुण क्या है ?	–	४४
पर्याय क्या है ?	–	४७
चार अभाव के माध्यम से स्वतंत्रता	–	५०
वस्तु के स्वभाव को धर्म क्यों कहा गया	–	५२
स्वभाव से विपरीत परिणमन करने वाली वस्तुएं कौन	–	५५
जीव नामक वस्तु का स्वभाव	–	५७
ज्ञान स्वभाव के निर्णय से धर्म की उत्त्पति	–	६०
स्वचतुष्टय में परचतुष्टय की नास्ति	–	६३
ज्ञान पर्याय स्वपर प्रकाशक है वह कैसे	–	६४
आत्मा के धर्म की प्रगटता	–	६६
ज्ञान का स्वभाव ही स्व के साथ पर को भी जानना है	–	६६
'वस्थु सहावो धम्मो' विषय का उपसंहार	–	६६

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

परतन्त्रता घोतक कथन एवं स्पष्टीकरण	–	७२ से १०४
वस्तु का परिणमन स्वतंत्र होने पर भी परतन्त्रता कैसे ?	–	७३
स्वतन्त्र होने पर भी परतन्त्र दिखने का कारण क्या ?	–	७३
वस्तु व्यवस्था एवं विश्व व्यवस्था	–	७४
विश्व व्यवस्था में पांच अचेतन द्रव्यों की व्यवस्था	–	७४
विश्व व्यवस्था में जीव द्रव्य की स्थिति	–	७७
उपरोक्त द्रव्यों में आपसी सम्बन्ध क्या और कैसे	–	७६
निमित्त-नैमित्तिक सम्बन्ध	–	८१
निमित्त-नैमित्तिक सम्बन्ध माना ही न जावे तो	–	८२
निमित्त-नैमित्तिक सम्बन्ध एवं कर्त्ता-कर्म सम्बन्ध का अन्तर	–	८४
निमित्त-नैमित्तिक सम्बन्ध में पराधीनता का निराकरण	–	८६
जीवद्रव्य में निमित्त-नैमित्तकपना	–	८६
निमित्त-नैमित्तिक शब्द द्वारा भ्रम	–	६४
संयोगी दृष्टि एवं स्वभाव दृष्टि	–	६४
स्वभाव दृष्टि वीतरागता की एवं संयोगी दृष्टि सरागता की उत्पादक	–	६६
कार्य की सम्पन्नता में पुरुषार्थ	–	६६
पांच समवाय व कार्य की सम्पन्नता	–	६७
मोक्षमार्ग में पुरुषार्थ की मुख्यता	–	१००
कर्मोदय में आत्मा का पुरुषार्थ अकार्यकारी कहने वाले कथनों का अभिप्राय	–	१०१
काल लब्धि के अभाव में पुरुषार्थ अकार्यकारी कथन का अभिप्राय	–	१०२
मोक्षमार्ग प्राप्त करने का पुरुषार्थ तत्व निर्णय	–	१०३
उपसंहार	–	१०५

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

दो शब्द

आदरणीय पाटनी जी द्वारा लिखित 'सुखी होने का उपाय' नामक इस कृति की विषय-वस्तु तीन भागों में विभाजित है। प्रथम भाग में पर से भिन्न भगवान आत्मा की चर्चा है, दूसरे भाग में पर्याय से भिन्न, गुणभेद से भी भिन्न भगवान आत्मा की चर्चा होगी और तीसरे भाग में पर, पर्याय और गुणभेद से भी भिन्न निज भगवान आत्मा की प्राप्ति की प्रायोगिक साधना की बात होगी।

भेद विज्ञान मूलक इस कृति के प्रथम भाग में समस्त पर पदार्थों से हटाकर प्रमाण के विषयभूत गुण पर्यायात्मक निजद्रव्य में लाकर स्थापित करने का प्रयास है; दूसरे भाग में अपनी आत्मा में ही उत्पन्न विकारी-अविकारी पर्यायों एवं अनन्त गुणों के विकल्पों से पार त्रिकाली ध्रुव निज भगवान आत्मा तक पहुँचाने का प्रयास होगा। तीसरे भाग में इस विकल्पात्मक सम्यक् निर्णय की निर्विकल्पक परिणति कैसे हो—यह बताने का प्रयास किया जायेगा।

यह तो सर्वविदित ही है कि पाटनी जी ने आध्यात्मिक सत्पुरुष श्रीकानजी स्वामी का समागम पूरी श्रद्धा और लगन के साथ लगातार ४० वर्ष तक किया है। वे भाषा के पण्डित भले ही न हों, पर जैन तत्त्वज्ञान का मूल रहस्य उनकी पकड़ में पूरी तरह है। स्वामी जी द्वारा प्रदत्त तत्त्वज्ञान को जन-जन तक पहुँचाने के काम में वे विगत तीस-पैंतीस वर्षों से नींव का पत्थर बनकर लगे हुए हैं; विगत २२ वर्षों से मेरा भी उनसे प्रतिदिन का घनिष्ठ सम्पर्क है। अतः उनकी अन्तर्भावना को मैं भलीभाँति पहचानता हूँ।

अभिनन्दनपत्र भी न लेने की प्रतिज्ञाबद्ध श्री पाटनी जी ने यह कृति

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

लेखक बनने की भावना से नहीं लिखी है; अपितु अपने उपयोग की शुद्धि के लिए ही उनका यह प्रयास है; उनके इस प्रयास से समाज को सहज ही सम्यक्‌दिशाबोधक यह कृति प्राप्त हो गई है।

यह तो मात्र प्रथम भाग है, शेष दो भाग अभी तैयार हो रहे हैं; जो शीघ्र आपको प्राप्त होंगे। उनके भाव आप सब तक उनकी ही भाषा में हूबहू पहुँचे—इस भावना से उनमें कुछ भी करना उचित नहीं समझा गया। अतः विद्वज्जन भाषा पर न जावें, अपितु उनके गहरे अनुभव का पूरा-पूरा लाभ उठावें—ऐसा मेरा विनम्र अनुरोध है।

अपने अनुभवों को लिपिबद्ध करने का अनुरोध मैं उनसे समय-समय पर करता रहा हूँ, तथापि उन्होंने कभी इस ओर ध्यान नहीं दिया; वे तो आचार्यों के मूल ग्रन्थों, स्वामी जी के प्रवचनों और उनके आधार पर तैयार की गई विद्वानों की कृतियों के प्रकाशन और प्रचार-प्रसार में ही लगे रहे; अब जब शरीर शिथिल हो रहा है और दौड़ धूप सहज ही कम होती जा रही है; तब अपनी उपयोग की शुद्धि के लिए उनका ध्यान इस ओर गया है। हम उनके स्वस्थ एवं मंगल जीवन की कामना करते हैं, कि जिससे उनकी सेवाओं और कृतियों का अधिकाधिक लाभ मुमुक्षु समाज को प्राप्त हो सके।

—डा. हुकमचन्द भारिल्ल

२२ जनवरी १९९० ई.

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

अपनी बात

मैंने इस लघु पुस्तिका का प्रकाशन कई वर्षों पूर्व सन् १९८७ में जैन पथप्रदर्शक में एक लेखमाला के रूप में प्रारम्भ किया था, मुझे अनुमान भी नहीं था कि यह लेखमाला पुस्तिका का रूप ग्रहण कर लेगी, मैंने इसको लेख के रूप में विषय को संक्षिप्त रूप से लिखने से प्रारम्भ किया था लेकिन कुछ पाठकों ने मुझे इसके विशेष स्पष्टीकरण पूर्वक विस्तार करने के लिये प्रोत्साहित किया, फलतः इस लेखमाला ने एक पुस्तिका का स्थान प्राप्त कर लिया। यही कारण है कि प्रकाशित लेखमाला से इस पुस्तिका का विषय बहुत कुछ परिवर्तित भी हो गया है।

कुछ वर्षों पूर्व मैंने एक लघु पुस्तिका "पंचमगुणस्थानवर्ती श्रावक एवं उसकी ग्यारह प्रतिमाएँ" लिखी थीं और वह सन् १९७२ से पं. टोडरमल स्मारक ट्रस्टद्वारा प्रकाशित होकर ५००० की संख्या में समाज के पास पहुँच ही चुकी है, उसके कुछ पश्चात ही "णमो लोए सव्वसाहूणं" नाम की दूसरी लघु-पुस्तिका का भी सन् १९८६ में पं. टोडरमल स्मारक ट्रस्ट द्वारा प्रकाशित होकर अभी तक ८२०० की संख्या में समाज को उपलब्ध हो चुकी है। उसी समय से मेरे मन में भावना थी कि पंचम गुणस्थानवर्ती श्रावक एवं षष्ठम् सप्तभ गुणस्थान स्थित साधु परमेष्ठी की अंतर्बाह्य दशा बताने वाली लघु पुस्तिका तो प्रकाशित हो गई लेकिन मिथ्यादृष्टि जीव को सम्यक्त्व प्राप्त करने की पात्रता एवं विधि बतलाने वाली पुस्तिका भी तैयार होनी चाहिए, जिसके द्वारा मिथ्यात्व का अभाव करके अत्यन्त दुर्लभातिदुर्लभ चतुर्थ गुणस्थान की अवस्था प्राप्त करने का सुगम उपाय आत्मार्थी

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

जीव को प्राप्त हो सके। मन के अंदर छुपी इस भावना से ही इस लेखमाला ने इस पुस्तिका का रूप धारण किया, अतः मैंने मेरी बुद्धिक्षमता और गुरुउपदेश के माध्यम से तथा जिनवाणी की कृपा से उसके अध्ययन से जो कुछ भी प्राप्त किया है उसके आधार पर तथा अपने स्वयं की बुद्धिरूपी कसौटी पर परखकर यथार्थ निर्णय में आया और सम्यक् अनुमान ज्ञान के द्वारा अनुभव में लाकर परीक्षा कर जो भी यथार्थ निर्णय प्राप्त हुआ,,इस पुस्तिका के माध्यम से आत्मार्थी बंधुओं को समर्पण करने का प्रयास किया है, अगर इसमें कहीं कोई कमी रह गई अथवा भूल हो गई हो तो वह मेरी बुद्धि का दोष मानकर विशेष अनुभवी मुमुक्षु बंधु क्षमा करें एवं अपने अनुभव से परखकर आगम की साक्षीपूर्वक उचित सुधार कर लेत्रें वर्तमान काल में तो आगम ही आधार है।

मुझे पूर्ण विश्वास है कि इस पुस्तिका में प्रकाशित मार्ग ही संसार में भटकते प्राणी को संसार भ्रमण से छुटकारा प्राप्त कराने का यथार्थ मार्ग है। मैं स्वयं अनादिकाल से भटकता हुआ दिग्भ्रमित प्राणी था, यथार्थ मार्ग प्राप्त करने के लिये दर-दर की ठोकरें खाता फिरता था, सबही अपने चिंतन को ही सच्चा मार्ग कहते थे लेकिन किसी के पास रंचमात्र भी शांति प्राप्त कराने का मार्ग नहीं था। ऐसी कठिन परिस्थितियों में मेरे सद्भाग्य का उदय हुआ और न जाने कहां-कहां भटकता हुआ सन् १९४३ में प्रातः स्मरणीय महान् उपकारी पूज्य श्री कानजी स्वामी का मेरे भाग्ययोग से समागम प्राप्त हो गया, कुछ वर्षों तक तो उनके भी बताये मार्ग पर भी पूर्ण निःशंकता प्राप्त नहीं हुई तब तक भी इधर उधर भटकता रहा। अन्ततोगत्वा सबही तरह से स्थूल रूप से परीक्षा कर यह दृढ़ निश्चय हो गया कि आत्मा को शांति प्राप्त करने का मार्ग अगर कोई हो सकता है तो मात्र एक यही है अन्य कोई मार्ग नहीं हो सकता ऐसे विश्वास एवं पूर्ण समर्पणता के साथ उनके सत्समागम का पूरा पूरा लाभ उठाने का

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

प्रयत्न करता रहा, फलतः जो कुछ भी मुझे प्राप्त हुआ उसमें जो कुछ भी है वह सबका सब अकेले पूज्य गुरुदेव श्री कानजी स्वामीजी का ही है, वे तो सद्ज्ञान के भंडार थे, आत्मानुभवी महापुरुष थे उनकी वाणी का एक-एक शब्द गहन गंभीर एवं सूक्ष्म रहस्यों से भरा हुआ अमृत तुल्य होता था उनमें से अगर किसी विषय के ग्रहण करने, समझने में मैंने भूल की हो और उसके कारण इस लेखमाला में भी भूल हुई हो तो वह सब मेरी बुद्धि का ही दोष है। और जो कुछ भी यथार्थ है वह सब पूज्य श्री स्वामीजी की ही देन है, उनके स्वर्गवास के पश्चात तथा पूर्व में भी जैसे-जैसे मैं जिनवाणी का अध्ययन करता रहा हूँ उनके उपदेश का एक-एक शब्द जिनवाणी से मिलता था उससे भी उनके प्रति मेरी श्रद्धा बहुत दृढ़ हुई है। वास्तविक बात तो यह है कि जिनवाणी के अध्ययन करने के लिये दृष्टि भी पूज्य गुरुदेवश्री द्वारा ही प्राप्त हुई है, अन्यथा मोक्षमार्ग के लिये हम बिल्कुल अंधे थे अतः इस पामर प्राणी पर तो पूज्य श्रीस्वामीजी का तीर्थंकर तुल्य उपकार है, जिसको यह आत्मा इस भव में तो क्या, भविष्य के भवों में भी नहीं भूल सकेगा।

मेरी धर्ममाता पूज्य बहन श्री चंपाबहन तथा पूज्य शांताबहन की भी मेरे ऊपर बहुत कृपा रही है, उनका भी मेरे पर असीम उपकार है, उनके कारण मेरे जीवन में अपूर्व परिवर्तन हुआ है। पूज्य गुरुदेवश्री के उपदेशों का जब-जब मेरी अंतर्परिणति के साथ मेल बैठाता था तो अनेक उलझनें एवं शंकायें उत्पन्न होती थी, ऐसी अंतर की गुत्थी सुलझाकर मार्ग को निःशंक एवं सरल बनाने के लिए उनका मेरे ऊपर असीम उपकार है। वह भी यह आत्मा कभी भुला नहीं सकता।

इस प्रकार जो कुछ भी गुरु उपदेश से प्राप्त हुआ और अपनी स्वयं की बुद्धिरूपी कसौटी से परखकर स्वानुभव द्वारा निर्णय में प्राप्त हुआ उसी का संक्षिप्त सार अपनी सीधी सादी भाषा में प्रस्तुत करने का यह अन्तिम प्रयास है। मेरी उम्र ७६ वर्ष है और इस कृति के दो

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

भाग शेष हैं। इस जीवन काल में यह कृति सम्पूर्ण तैयार होकर आत्मार्थी बंधुओं को मोक्षमार्ग प्राप्त करने का मार्ग सुगमता से प्राप्त करावे–यही एक भावना है।

इस पुस्तक का नाम रखा गया है "सुखी होने का उपाय" जिसका अर्थ होता है,–मोक्ष प्राप्त करने का उपाय, आत्मा की परमशांति प्राप्त करने का उपाय। इस पूरे विषय को ३ भागों में विभक्त कर अलग-अलग तीन पुस्तकों के रूप में प्रकाशित किया जायेगा। प्रथम भाग में "वस्तु स्वभाव एवं विश्व व्यवस्था", दूसरे भाग में आत्मा की अन्तर्दशा, भेदज्ञान एवं तत्व निर्णय एवं तीसरे भाग में आत्मद्रव्य में अहंपने के द्वारा आत्मानुभूति विषय पर चर्चा होगी।

पहले भाग का विषय तो विषय-सूची से स्पष्ट ज्ञात होगा, पहले भाग में, उपरोक्त विषय प्रारम्भ करने के पूर्व एक (विषय प्रवेश) के नाम से प्रथम अध्याय है। उसमें समझने की जिज्ञासा कैसे पात्र जीव को उत्पन्न होती है, उसकी पूर्व भूमिका का विवेचन है क्योंकि वर्तमान के जीवन में ही जो जीव संतुष्ट है, इस पर्याय को ही जो सर्वस्व मान कर बैठा है, जिसको वर्तमान में दु:ख नहीं लगा हो, ऐसा जीव सुखी होने के उपाय की खोज ही क्यों करेगा? इसलिये आत्मार्थी जीव को वर्तमान पर्याय की अनिश्चितता आदि के ज्ञान के माध्यम से संसार देह और भोगों में विरक्ति उत्पन्न कराकर आत्मा मे पात्रता प्राप्त कराने का प्रयास किया गया है। पात्रता के बिना प्रस्तुत प्रकरण में प्रवेश होना संभव नहीं है, श्री मद् राजचन्दजी ने कहा भी है–

"पात्र बिना वस्तु न रहै, पात्रे सम्यग्ज्ञान

इसप्रकार प्रथम भाग में उपरोक्त विषयों का स्पष्टीकरण गुरुउपदेश से प्राप्त आगम के आधारपूर्वक स्वानुभव से परीक्षा कर अनेक युक्तियों के माध्यम से सीधी-सादी भाषा में प्रस्तुत किया गया है।

पहले भाग के विषय को हृदयंगम करने के पश्चात् जिस आत्मार्थी

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

जीव ने छः द्रव्यों से भिन्न विकारी निर्विकारी पर्यायों सहित केवलमात्र अपने आत्मद्रव्य में ही अहम्पना मम्पना, स्थापित कर लिया है, पर द्रव्यों में करने धरने संबंधी विकल्प के उत्पन्न होते रहने पर भी तथा भाषा भी उसीप्रकार की निकलते रहने पर भी, अपनी श्रद्धा एवं अभिप्राय में अपने द्रव्य की सभी प्रकार की पर्यायों के अतिरिक्त, परद्रव्यों में कर्त्तत्व के अनादि से समागत, मिथ्या, अहंकार समाप्त कर दिया है, छः द्रव्यों के साथ भेद विज्ञान उत्पन्न कर स्व में स्वबुद्धि एवं पर में परबुद्धि स्थापित कर ली है, पर के प्रति उपेक्षाबुद्धि खड़ी की हो, छः द्रव्यों से अहम्पना दूर कर, अपने गुण पर्याय के समुदाय रूप आत्मद्रव्य में अहंपना स्थापित कर लिया हो, दूसरे भाग में उस आत्मार्थी खोजक जीव को अपने आत्मा के अन्दर निरन्तर उठने वाली अपनी अनंत पर्यायों में छिपी हुई त्रिकाली आत्मज्योति को भेदज्ञान के माध्यम से रागद्वेष आदि आस्रववंध भावों में हेय बुद्धि उत्पन्न कराकर, संवर एवं निर्जरा रूप निर्मल पर्याय अर्थात् सम्यग्दर्शनादि पर्यायों को उपादेय तत्व के रूप में स्वीकार करा कर विकारी पर्यायों के अभाव रूप मोक्ष दशा प्राप्तव्य है,—ऐसी श्रद्धा उत्पन्न कराने की विधि का वर्णन होगा, साथ ही उनके अभाव करने का उपाय एकमात्र शुद्ध द्रव्यार्थिकनय के विषयभूत, निजआत्मा में अहंपना स्थापन कराकर, पर्यायार्थिक के विषय भूत परमें से अहंपना मेरेपन की बुद्धि छुड़ाकर स्वज्ञेय रूप निजात्मतत्व में आत्मबुद्धि कराई जावेगी।

संक्षेप में कहो तो प्रमाण के विषयभूत निज आत्मद्रव्य में छह द्रव्यों के भेद ज्ञान द्वारा अहम्पना, स्थापन किया था, उस ही आत्मद्रव्य में अपने ही गुण पर्यायों के स्वरूप को समझकर उनमें भी भेदज्ञान उत्पन्न कर एकमात्र शुद्ध द्रव्यार्थिक नयके विषयभूत निज आत्मद्रव्य में अहंपना स्थापना कराने के उपायों की विवेचना ही दूसरे भाग में करने का संकल्प है।

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

तीसरे भाग में अपने त्रिकाली ज्ञायक भाव में अहंपना स्थापन करने की जो विधि दूसरे भाग के द्वारा विकल्पात्मक ज्ञान में समझ ली गई हो, उस विधि का अपने अंदर प्रयोग किस प्रकार किया जावे। अर्थात् विकल्पात्मक ज्ञान, निर्विकल्पात्मक रूप में परिणत कैसे हो इसका प्रयोग कैसे हो—यह समझने का प्रयास किया जावेगा। जिसप्रकार वर्तमान शिक्षा पद्धति में, पद्धति का ज्ञान कर लेने पर भी अगर वह छात्र उसका प्रयोग नहीं कर पावे तो उसको उस विषय में अनुत्तीर्ण समझा जाता है ठीक उसीप्रकार जिस पद्धति को अपनाने का ज्ञान इस जीव ने समझा हो, उसका प्रयोग अपनी परिणति में करके, अपने त्रिकाली ज्ञायक भाव की अनेक प्रकार से महिमा लाकर, उसमें अहम्पना स्थापन करवाना है। जो भी अन्य ज्ञेय, पररूप से मेरे जानने में आते हैं, वह सब भी मेरी ज्ञान की पर्याय ही है। अतः मेरे को जानने में भी उनके प्रति किंचित भी आकर्षण नहीं है, मुझे तो एकमात्र मेरा आत्मा ही ज्ञेयरूप से प्रतिभासित हो रहा है अतः ज्ञेयरूप भी मैं हूँ और ज्ञान रूप भी मैं ही हूँ, आदि-आदि निर्णयों की दृढ़ता के माध्यम से सहज ही उपयोग को कहीं भी जाने का आकर्षण समाप्त होकर मात्र एक स्वआत्मा ही सर्वश्रेष्ठ निवास स्थान लगने लगे तब आत्मा का उपयोग सहज रूप से स्वसन्मुख होकर दौड़ने लगता है, उस स्थिति में आत्मा के सभी गुण उस परणति के अनुगामी होकर आत्म सन्मुख हो जाने से आत्मा परमशांत निर्विकल्प दशा का सहज ही पान करके कृतकृत्य हो जाता है,—ऐसे जीव की पर के प्रति आसक्ति टूट जाने पर सहज रूप से वैराग्य परणति जीवन में, प्रस्फुटित हो जाती है। उन सब दशाओं का तीसरे भाग में वर्णन करने का संकल्प है।

इस प्रकार उपरोक्त पुस्तक के तीनों भागों की संक्षिप्त रूपरेखा है। मेरा उपयोग जिनवाणी माता की शरण में ही रहे, मात्र इसी भावना से यह प्रयास किया है; अन्य कोई प्रयोजन नहीं है।

जयपुर, १९-१-९० —नेमीचंद पाटनी

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

सुखी होने का उपाय
भाग–१

वस्तुस्वभाव एवं विश्वव्यवस्था

।।मंगलाचरण।।

णमो अरहन्ताणम्,
णमो सिद्धाणम्, णमो आइरियाणम् ।
णमो उवज्झायाणम्,
णमो लोए सव्वसाहूणम्।।

मंगलं भगवान् वीरो, मंगलं गौतमो गणी ।
मंगलं कुन्दकुन्दाद्यो, जैनधर्मोऽस्तु मंगलम्।।

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

विषय प्रवेश

यह तो सार्वभौमिक निर्विवाद सत्य है कि प्राणीमात्र सुख चाहता है। चाहे वह एक इन्द्रिय वनस्पति हो अथवा पाँच इन्द्रियों वाला मनुष्य, तिर्यंच, देव आदि कोई भी हो, सब ही रात्रि-दिवस जो कुछ भी करते हैं, वह सब सुख प्राप्त करने के लिए ही करते हैं, अन्य कुछ भी किंचित्मात्र भी प्रयोजन नहीं है। सोना अथवा जागना, खाना अथवा नहीं खाना, पीना अथवा नहीं पीना, सिनेमा देखना, शराब पीना आदि अच्छे अथवा बुरे—सभी काम सुख के लिए करता है। इसलिए यह तो निर्विवाद है कि प्राणीमात्र को सुख चाहिये। कहा भी है :—

"जे त्रिभुवन में जीव अनन्त, सुख चाहें दुःखतैं भयवन्त।"

अतः अब सुख प्राप्त करने के उपाय के संबंध में विचार विश्लेषण करने के पहले सुख की व्याख्या को स्पष्ट रूप से समझ लेना चाहिये।

इच्छाओं की पूर्ति को ही जगत् सुख मानता है

जगत मानता है कि जो इच्छा उत्पन्न हो उसकी पूर्ति हो जावे, वह ही सुख है और इच्छा होने पर उसकी पूर्ति नहीं होना दुःख है, इसलिए जिसप्रकार की भी इच्छायें उत्पन्न होती हैं, उनकी पूर्ति के साधनों को इकट्ठा करने के लिये ही निरन्तर प्रयास करता रहता है तथा जो इच्छा पूर्ति में बाधक हों उन-उन कारणों को मिटाना—दूर करना चाहता है। चाहे उनकी प्राप्ति अथवा दूर करने के लिए कितने ही जीवों का घात भी करना पड़े, कष्ट भी पहुँचाना पड़े, अन्याय रूप प्रवृत्ति भी करना पड़े तो भी अपने प्रयासों को सफल करने के लिए निरन्तर प्रयत्नरत रहता है। इन ही प्रयासों की पूर्ति में रत जीव को पाँच पाप—हिंसा, झूठ, चोरी, कुशील, परिग्रह, सहजरूप से हुए बिना रहते ही नहीं हैं अर्थात् अपने प्रयासों को सफल करने के लिये पाँच

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

पापों का भी उपयोग वह करता ही रहता है। उन प्रयासों के बारे में गहराई से विचार करें तो जगत ने इस शरीर से सम्बन्धित पंचेन्द्रियों के अनुकूल कारणों को ही सुख का कारण एवं प्रतिकूल कारणों को ही दुःख का कारण माना है, जैसेः–

१. **स्पर्शनः**–शरीर को अनुकूल लगने वाले साधनों को, जैसे–गरमी में ठंडक और सरदी में गरमी एवं कामवासना जागृत होने पर उसकी पूर्ति के कारणों को जुटाने का एवं बाधक कारणों को हटाने का प्रयास करता है उस कामवासना की पूर्ति के साधन अपने शरीर को पुष्ट रखने के लिये खाद्य-अखाद्य, योग्य-अयोग्य उपायों को अपनाने का प्रयास करता ही रहता है।

२. **रसनाः**–जिह्वा को अच्छे लगने वाले एवं शरीर को पुष्ट करने वाले अनेक प्रकार के व्यंजन आदि चाहे वे अनेक जीवों का घात करके भी तैयार किये जा सकें, जैसे–मांस आदि से तैयार किया गया भोजन इसीप्रकार अनेक प्रकार के शास्त्र में वर्णित अभक्ष्य पदार्थों से तैयार किया गया हो, बहुत से स्थावरों के घात से तैयार किया गया हो, जो अनिष्टकारक हो, जैसे–अजीर्ण में मिष्टान्न, नशा करना–नशा उत्पन्न करनेवाला हो, अनुपसेव्य–जो लोक में भी निषिद्ध हो, ऐसे पदार्थों के द्वारा भी रसना इन्द्रिय को तृप्त करके उस इच्छा की पूर्ति के प्रयत्न में निरन्तर रत रहता है एवं उनकी पूर्ति का साधन इन इन्द्रियों एवं शरीर को मानकर उनको पुष्ट करने के प्रयासों में निरन्तर लगा रहता है।

३. **घ्राणः**–नाक को अच्छे लगनेवाले सुगंधित पदार्थों को जुटाने का एवं अच्छे नहीं लगने वाले पदार्थों को हटाने के प्रयास में लगा रहता है, जैसे इत्र, सेन्ट, क्रीम अनेक प्रकार के पाउडर आदि अनेक वस्तुएँ, चाहे उनके तैयार करने में कितने ही जीवों का निर्दयता से बध किया गया हो।

४. **चक्षुः**–आँख को सुहावना लगनेवाले साधनों जैसे–सिनेमा,

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

टेलीविजन, वी. सी. आर. आदि अनेक साधनों को इकट्ठा करके चक्षुइन्द्रिय को तृप्त करने का प्रयास करता है। उनको प्राप्त करने के लिए आर्थिक क्षमता के अभाव में चोरी, बेईमानी आदि अन्याय करके भी उस आर्थिक बाधा को दूर करने के प्रयासों में निरन्तर रत रहता है।

५. श्रोत्र (कर्ण):–कान के अनुकूल अच्छे-अच्छे गायन आदि प्राप्त करने के साधनों को जुटाने के प्रयासों में रत रहता है।

इसप्रकार उपरोक्त पाँचों इन्द्रियों का आधारभूत इस शरीर को मानकर तथा यह शरीर मैं हूँ, यह शरीर मेरा जीवन है–ऐसा मानकर अथवा यही पक्का विश्वास होने से निरन्तर एकमात्र इस शरीर की तथा इसके माध्यम से इन पाँचों इन्द्रियों को पुष्ट रखने, सजाने, संवारने के प्रयास ही निरन्तर करता रहता है और उसके कारण निरन्तर आकुलित रहता है।

आकुलता की तीव्रता क्यों होती है?

आकुलता की तीव्रता, उग्रता क्यों होती है–उस संबंध में भी गंभीर मंथन आवश्यक है। सर्वप्रथम इस मान्यता के कारण कि यह शरीर ही मै हूँ, इसलिये मुझे सुखी होना है तो इस शरीर की अनुकूलता से ही तो मैं सुखी होऊँगा;' इसलिये शरीर तथा इन्द्रियों की अनुकूलता के साधन जुटाने की एवं प्रतिकूल कारणों को हटाने के उपाय करना ही चाहिये, इसमें क्या भूल है? ऐसी मान्यता, विश्वास होने से इसकी पूर्ति के लिए निरन्तर इच्छाएँ उत्पन्न होना स्वाभाविक ही है, अतः इच्छाएं खड़ी होते ही पूर्ति करने के लिए अत्यन्त आकुलित हो उठता है और उनकी पूर्ति करने के प्रयासों के लिए दौड़ने लगता है। जब उन प्रयासों में सफलता प्राप्त नहीं होती है तो अत्यन्त दुःखी होता है और तीव्र आकुलित होकर और तेज दौड़ने लगता है और पुण्य के योग से कभी उन प्रयासों में सफलता प्राप्त हो जाती है तो उनका उपभोग

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

करने के लिए तीव्र आकुलित हो उठता है, साथ ही अपने प्रयासों की सफलता देखकर अन्य इच्छाओं की पूर्ति के लिए भी साधन जुटाने के लिए और भी तीव्रता आ जाती है अर्थात् एक तो प्राप्त सामग्री के भोगने की आकुलता और साथ ही अन्य सामग्री प्राप्त करने की आकुलता, इसप्रकार भोगोपभोग सामग्री की उपलब्धि में दौड़-धूप कम होने के बजाय और भी तीव्रता से बढ़ जाती है।

इसप्रकार सत्य तो यह है कि इसकी यह मान्यता ही मिथ्या है कि "शरीर ही मैं हूँ", इस ही से मेरा जीवन है" आदि, इस मिथ्या मान्यता के कारण ही यह उपरोक्त प्रकार से निरन्तर आकुलित रहता है और सारा जीवन इस ही आकुलता करते-करते नष्ट कर देता है लेकिन फिर भी सुखी होता हुआ देखा नहीं जाता।

क्या बाह्य सामग्री के संयोग या वियोग से सुख-दुःख होता है?

आज का जगत यह मानने के लिए तैयार नहीं है कि यह आकुलता दुःख है, वरन् यह मानता है कि बाहर के ठाठ-बाटों की प्रचुरता की कमी अर्थात् पाँच इन्द्रिय के विषयों की सामग्री की प्रचुरता की कमी ही दुःख है तथा प्रचुरता ही सुख है। अतः इस संबंध में भी गहरी गवेषणा आवश्यक है।

सर्वप्रथम इस पर विचार करना चाहिए कि जिनके पास पाँचों इन्द्रिय संबंधी आवश्यकता की पूर्ति के साधन पर्याप्त हों एवं शरीर भी परिपुष्ट हो, सभी बाह्य अनुकूलताएँ हों तो उन्हें तो पूर्ण सुखी रहना ही चाहिए? लेकिन ऐसा देखने में तो नहीं आता। उपरोक्त स्थितियों वाले जीव भी आकुलित-दुःखी देखे जाते हैं। उन्हें पहले तो प्राप्त सामग्री की अत्यन्त गृद्धतापूर्वक शीघ्र भोगने की आकुलता रहती है, क्योंकि पाँचों इन्द्रियों को भोगने योग्य सामग्री तो प्राप्त है, लेकिन यह एक साथ उन सबको भोग नहीं सकता, एक समय एक को ही भोग

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

पाता है। फलतः कभी किसी को, कभी किसी को भोगने के लिए झपट्टे मारता हुआ तीव्र आकुलित होता है और जब एक साथ इच्छानुसार भोगने की सामर्थ्य नहीं होती तो अनेक मादक पदार्थ शराब आदि पीकर भी उन सबकी पूर्ति करना चाहता है। उसमें भी जब सफल नहीं होता तब इतना विह्वल हो जाता है कि नशा करके अचेत होकर पड़ जाता है। कहा भी है कि–

"आशागर्तः प्रतिप्राणी यस्मिन् विश्वमणूपमम् ।
कस्य किं कियदायाति वृथा वो विषयैषिता:।।

आत्मानुशासन्–३९

अर्थ:–आशारूपी खाड़ा प्रत्येक प्राणी में पाया जाता है। अनन्तानन्त जीव हैं, उन सबके आशा पायी जाती है तथा वह आशारूपी कूप ऐसा है कि उस एक खाड़े में समस्त लोक अणु समान हैं और लोक तो एक ही है, तो अब यह कहो कि किसको कितना हिस्से में आये?"

इस पर प्रश्न खड़ा हो सकता है कि जिसके पास इच्छित पर्याप्त सामग्री प्राप्त हो चुकी है, उसको तो भोगने की इच्छा के अतिरिक्त अन्य आकुलता नहीं होनी चाहिए, लेकिन ऐसा भी देखने में नहीं आता, प्राप्त सामग्री को भोगने के साथ-साथ उस सामग्री को बनाये रखने की, भोगने के लिये शरीर व इन्द्रियों को पुष्ट करने की तथा जो उनमें बाधक कारण आ पड़ें तो उनको हटाने-नष्ट करने की तीव्र आकुलताएँ निरन्तर बढ़ती ही जाती हैं।

उपरोक्त आकुलताओं के साथ-साथ ही पर्याप्त सामग्री होने पर भी उनको अनवधिरूप से बढ़ाने की इच्छा इसको और भी ज्यादा आकुलित बनाये रखती है और उन इच्छाओं की पूर्ति में और भी तीव्र आकुलता होती है, क्योंकि अन्य द्रव्य हमारे अनुकूल ही परिणमें, प्रतिकूल नहीं परिणमें–ऐसा जगत में कोई द्रव्य पराधीन तो है नहीं तथा संभव भी नहीं है। अगर ऐसा संभव मान भी लिया जावे तो हर

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

एक व्यक्ति की इच्छापूर्ति हो जानी चाहिए, लेकिन ऐसा भी होता नहीं है और हो भी नहीं सकता। जैसे लखपति से करोड़पति बनने की, करोड़पति से अरबपति बनने की इच्छा किसको नहीं होती और उस इच्छा की पूर्ति के लिये क्या क्या अनीति-अन्याय नहीं करता एवं उसमें बाधक कोई उपस्थित हो जावे तो उसको जान से भी मारने में पीछे नहीं हटता, फिर भी इच्छा के अनुसार तो होता नहीं तब और भी ज्यादा दुःखी होता है।

आकुलता ही दुःख

जिसको लौकिकजन पूर्ण सुखी कहते हों, जो स्वयं भी अपने-आपको सुखी मानकर इन्द्रिय विषयों के भोगों में मग्न हो, उसी समय अगर कोई टेलीग्राम आ जावे कि तेरे को एक करोड़ का घाटा हो गया अथवा तेरे पुत्र का मरण हो गया तो उस समय उस व्यक्ति को आप सुखी कहेंगे या दुःखी? साथ ही वह अपने-आपको पूर्ण सुखी माननेवाला व्यक्ति भी अपने-आपको सुखी मानेगा या दुःखी? आप ही निर्णय करें कि जिस सामग्री की प्रचुरता को आपने सुख माना था वह तो इस समय भी जैसी की तैसी ही मौजूद है, फिर वह दुःखी क्यों हुआ? आप स्वयं इस निष्कर्ष पर पहुँच जावेंगे कि वह सामग्री रहते हुए भी उन समाचारों के द्वारा जो उसको तीव्र आकुलता खड़ी हो गई वह आकुलता दुःख है, क्योंकि वह आकुलता पहले नहीं थी और यह आकुलता पूर्व की आकुलता से भी तीव्र अनुभव में आने पर वह अपने को दुःखी मानने लगा। निष्कर्ष यह निकला कि यथार्थतः सामग्री न तो सुख का कारण है और न दुःख का कारण ही है, बल्कि अन्दर में होने वाली आकुलता ही दुःख है और उस आकुलता की कमी को लोग सुख मानने लगते हैं, यथार्थतया आकुलता का तो अंशमात्र भी दुःख ही है। अतः जिसको सुखी होना हो उसको आकुलता की उत्पादक इच्छाओं को और इच्छाओं की उत्पादक इस मान्यता को छोड़ना चाहिए कि शरीर ही मैं हूँ और शरीर के जीवन से

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

ही मेरा ज़ीवन है और इस ही से मुझे सुख मिलेगा, ऐसी मान्यता मिथ्या है।

शंका:—फिर भी वह कहता है कि इन विषयों को भोगने के समय सुख तो लगता है। अतः आप इसको दुःख क्यों कहते हैं?

समाधान:—जिसप्रकार १०६ डिग्री बुखारवाला बीमार व्यक्ति बुखार के समय आकुलता का अनुभव करता था। उस ही को १०१ डिग्री बुखार होने पर कोई पूछता है तो वह कहता है कि अब तो ठीक हूँ; क्योंकि उसको १०६ के समय होने वाली आकुलता की अपेक्षा अभी बहुत कम आकुलता रह जाने से वह भी अपने आपको सुखी मानता है, लेकिन साथ ही यह भी स्वीकार करता है कि यह भी अभी निकालने योग्य है, ठीक उसीप्रकार जब इस जीव को इष्ट सामग्री प्राप्त करने की अथवा अनष्टिता दूर करने की इच्छा उत्पन्न होती है, तभी तो उसकी पूर्ति करने की योजना बनाने में अथवा उसकी पूर्ति के साधनों को जुटाने की व्यग्रता में आकुल-व्याकुल होता है, लेकिन जब भी इस इच्छा की पूर्ति के योग्य साधन मिल जाते हैं उसके प्राप्त होने के साथ ही वह आकुलता कम हो जाने से उसको ऐसा लगता है कि यह आकुलता की कमी ही सुख है, लेकिन वस्तुतः उसे सुख मिलता नहीं है, अगर एक ही इच्छा खड़ी हो और उसकी पूर्ति हो जावे फिर अन्य इच्छा उत्पन्न न हो तो भी कदाचित् यह मान लिया जावे कि जीव सुखी हो जावेगा लेकिन एक इच्छा पूर्ति के समय अन्य अनेक इच्छाओं की पूर्ति करने की आकुलता तो खड़ी ही है, साथ ही जो सामग्री प्राप्त हुई उसके भोगने सम्बन्धी आकुलता और खड़ी हो गई और भोगने के समय भी उसको बारबार भोगने की, जल्दी-जल्दी भोगने की, अनेक प्रकारों से भोगने की, अकेले भोगने की, अपने स्वजनों के साथ भोगने की, लोगों में अपनी प्रतिष्ठा बढ़ाने के लिए दुनिया को दिखाकर भोगने आदि अनेक-अनेक प्रकार की आकुलताएँ खड़ी हो जाती हैं, अतः इसको आकुलता से छुटकारा कभी नहीं मिल

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

पाता; लेकिन अनादिकाल के अभ्यास के कारण वास्तव में दुःख होने पर भी इन आकुलताओं में ही सुख मानकर सारा जीवन इस ही प्रकार बिता देता है, लेकिन सारी जिन्दगी भर के अनेक प्रयासों के करते हुए भी कभी भी इसकी इच्छाओं का एवं उनकी पूर्ति करने के प्रयासों का अन्त नहीं आया, इसलिये वास्तव में दुःखी ही दुःखी बना रहता है।

प्रयास करने पर भी इच्छानुसार सामग्री क्यों प्राप्त नहीं होती?

प्रत्येक जीव अनेकानेक प्रयास करता है कि उसको इच्छित वस्तु प्राप्त हो जावे, लेकिन उनमें किसी जीव को सफलता मिलती है और किसी को नहीं मिलती इसका कारण तो कुछ होना चाहिए—यह प्रश्न उठना स्वाभाविक है।

इस प्रश्न के समाधान के लिए थोड़ा गम्भीरता से विचार करना चाहिए कि यह जीव नया तो पैदा नहीं होता, यहाँ पर पैदा हुआ है तो पहले कहीं था, वहाँ से मरकर यहाँ पैदा हुआ है और जो यहाँ से मरता है वह अन्य कहीं भी जाकर निश्चित रूप से उत्पन्न होगा यह तो निश्चित है, इसप्रकार यह तो प्रतीति में आता है कि जीव अनादि का है और अनन्त काल तक कहीं भी रहो—कायम रहेगा, यह विश्वास में आता है। जैसे कोई व्यक्ति किसी मित्र से मिलने के लिए अपना घर छोड़कर उस मित्र के घर गया हो और अपना कार्य समाप्त कर वह वहाँ से वापिस रवाना हो गया हो, उसके बाद उस व्यक्ति को खोजने के लिए उस व्यक्ति का पुत्र उस मित्र के घर आवे और उससे पूछे कि मेरे पिताजी कहाँ हैं? तो सहज ही उसका मित्र यह ही जवाब देगा कि वे तो यहाँ से चले गये। ऐसा उत्तर सुनते ही वह पुत्र समझ गया कि वे इस स्थान पर नहीं हैं, लेकिन अन्य किसी स्थान पर हैं जरूर। उसको ऐसा भ्रम नहीं होता कि वे जगत में कहीं भी नहीं होंगे। ठीक इसी प्रकार जब किसी जीव का मरण होता है अर्थात् इस

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

देह को यह जीव छोड़ देता है तब सब कोई यही तो बोलते हैं और मानते हैं कि इस शरीर में से जीव निकल गया, लेकिन उसका अस्तित्व का अभाव नहीं हो गया, इस शरीर में नहीं, लेकिन अन्य कहीं भी उसका अस्तित्व है जरूर।

अन्य प्रकार से भी विचार करें और यह मानने लगें कि मरण के बाद जीव कहीं भी अन्य जगह उत्पन्न नहीं होता और अस्तित्व ही खत्म हो जाता है तो जब वह पैदा हो गया तब जीव कहाँ से आ जावेगा और कौन-किसको-कैसे-कहाँ से पैदा कर देगा आदि-आदि। इस स्थान पर यह विषय चर्चने योग्य नहीं है, क्योंकि उपरोक्त चर्चा ही मात्र जीव की सत्ता को अनादि-अनन्त माननेवालों के लिए ही है—नास्तिक एवं चार्वाक मान्यताओं के लिये नहीं।

जीव के भावों का फल
जीव को अवश्य भोगना पड़ेगा

उपरोक्त प्रकार से जीव की सत्ता अनादि-अनंत मानने पर यह भी स्वीकार करना पड़ेगा कि जीव जो-जो भी अच्छे और बुरे भाव वर्तमान में करेगा उनका फल भी अच्छा और बुरा जरूर आना ही चाहिए अन्यथा सदाचार से रहने का एवं दुराचार छोड़ने का उपदेश भी क्यों दिया जाता है? एवं समाज भी दुराचारी को बुरा एवं सदाचारी को अच्छा क्यों कहती है? साथ ही सरकार भी दुराचारी को दण्ड और सदाचारी को पुरस्कृत क्यों करती है? इसका अर्थ ही यह है कि जगत में सब कोई सदाचार को अच्छा और बुरे आचरण को बुरा मानते भी हैं तथा कहते भी हैं।

इससे निष्कर्ष निकलता है कि अच्छे भाव करने योग्य होते हैं और बुरे भाव नहीं करने योग्य माने जाते हैं—ऐसी स्थिति में अगर हमारे अच्छे-बुरे भाव, समाज के साथ ही सरकार की जानकारी में भी न आवें तो क्या उस भाव करने वाले को कोई फल नहीं होना चाहिए?

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

जरूर होना चाहिए, अन्यथा बुरे काम करने से कोई क्यों डरेगा? एवं अच्छे भाव करने से लाभ कौन मानेगा—फलतः उन भावों का फल तो उस जीव को होता ही है। यह स्वाभाविक भी है कि बुरे भावों का फल वही होगा जो इसको स्वयं को अच्छा नहीं लगेगा और उसीप्रकार अच्छे भावों का फल वही आवेगा जो इसको अच्छा लगेगा—अतः यह जीव जब-जब जैसे-जैसे भाव करता है तब-तब ही उसको उस ही प्रकार के कर्म बंध जाते हैं। अच्छे भावों के फल में इसको जैसी ये चाहता है इच्छा करता है वैसी ही सामग्री प्राप्त होती रहती है, और बुरे भाव करते समय ही ऐसे कर्मों का बंध यह जीव करता है, जिसके फल में इस जीव को जैसी इच्छा करता है वैसी सामग्री नहीं मिलती, प्रत्युत नहीं चाहता है वैसी सामग्री बिना इच्छा किये प्राप्त होती रहती है। कर्मबंधन की प्रक्रिया ऐसी है कि कर्म बंधते समय ही कुछ कर्म इसप्रकार से बंधते हैं कि अभी वर्तमान भव में भी उदय में आ जाते हैं और कुछ कर्म इसप्रकार बंधते हैं कि उनके उदय के समय यह जीव अपनी देह परिवर्तन कर लेता है। अर्थात् यह भव को छोड़कर दूसरे भव में पहुँच जाता है तो वे कर्म उस भव में फल देते हैं। उन कर्मों को हम पुण्य व पापकर्म के नाम से जानते हैं, पुण्य के फल में अनुकूल इच्छाओं की पूर्ति होती है तथा अच्छी नहीं लगनेवाली सामग्री सहज ही नहीं आती और पापकर्म के उदय के फल में इच्छाओं के अनुसार सामग्री नहीं मिलती और प्रतिकूल स्थितियां नहीं चाहते हुए भी आ पड़ती हैं।

इन सबसे यह नतीजा समझ में आता है कि जीव को अपने वर्तमान प्रयासों से इच्छा के अनुकूल सामग्री प्राप्त नहीं होती। इसीप्रकार प्रतिकूल परिस्थितियां हमारे प्रयास के करने से दूर नहीं होतीं, वरन् पूर्व में किये अच्छे भावों के फलस्वरूप जो पुण्यकर्म बांध लिया था उसका उदय आने से, उसका प्रयास सफल होता हुआ दीखने लगता है, उसको यह जीव भ्रम से अपने प्रयासों का फल मानकर सफल होने पर

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

अभिमान करके तीव्र आकुलित होता रहता है। और अपने प्रयासों को और भी तीव्रता के साथ करने लगता है, लेकिन मिलता उतना ही है जितना पुण्य का उदय होता है। इसीप्रकार पूर्व में किये गये खराब भावो से बांधे गये पापकर्म, उनके उदय के कारण प्रतिकूल संयोग सामग्री प्राप्त होते रहते हैं लेकिन उनको भी अपने प्रयासों के करने के तरीकों की भूल मानकर निरन्तर तीव्र आकुलित होकर नये-नये तरीके जुटाता और दुःखी होता रहता है, लेकिन इतना होकर भी उन संयोगों में कुछ भी परिवर्तन नहीं हो पाता। अतः इसके प्रयासों से संयोग तो बदलते नहीं और आकुलता उल्टी बढ़ती ही रहती है। फल यह होता है कि वर्तमान तीव्र आकुलता के समय होने वाले नये पापभावों के फलस्वरूप फिर नये पापकर्म बांधता है जो आगामी फिर तदनुकूल फल प्राप्ति होने पर भविष्य में भी दुःखी होता रहेगा, इसी प्रकार अत्यन्त आकुलतारूप दुःख का वेदन करता हुआ भ्रमण करता रहता है। इसका कारण एकमात्र उल्टी मान्यता है, वह मानता है कि मैं मेरे प्रयासों से बाहर की परिस्थितियों को बदल सकता हूँ इसलिए निरन्तर आकुलित होता रहता है।

उपरोक्त सत्य स्थिति अर्थात् वस्तुव्यवस्था को समझें तो कम से कम अपने प्रयासों की निष्फलता के समय दीनता धारण कर तीव्र आकुलता नहीं होवे व अपने प्रयासों की सफलता के समय कर्तृत्वबुद्धि के मिथ्या अभिमान के द्वारा झूठी आकुलता से फूला-फूला नहीं फिरे अर्थात् दोनों प्रकार की आकुलताओं से बच जाता है।

निष्कर्ष

अतः निष्कर्ष निकलता है कि सामग्री का मिलना नहीं मिलना अपने वर्तमान प्रयासों का फल नहीं है, वरन् पूर्व उपार्जित पुण्य अथवा पापकर्म के फल के अनुसार ही सामग्री प्राप्त होती है।

उपरोक्त कथन का तात्पर्य यह आता है कि इच्छायें ही दुःख अर्थात्

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

आकुलताओं की जननी हैं। जिसके आकुलता है वही दु:खी है और जिसके किंचित् भी आकुलता नहीं है वही पूर्ण सुखी है अर्थात् भगवान है। अतः अगर हमको भगवान बनना है तो इच्छाओं का अभाव करना होगा जिस मार्ग से इच्छायें उत्पन्न ही न हो पावें, उस मार्ग का नाम ही मोक्षमार्ग है, वही धर्म है, वही वीतरागी पंथ है, वही जिनशासन है। आचार्य समंतभद्र ने कहा भी है कि:–

"देशयामि समीचीनं धर्मं कर्मनिवर्हणम् ।
संसारदुखतः सत्वान् यः धरत्युत्तमे सुखे ।।२।।

अर्थः– मैं समीचीन धर्म को कहूँगा, वह धर्म कर्मों का (राग द्वेषादि) अभाव करके प्राणिमात्र को संसाररूपी दु:ख से छुड़ाकर उत्तम सुख को प्राप्त कराता है।

भावार्थ यह है कि धर्म वही है जिसके धारण करने से आकुलतारूपी दु:ख का अभाव होकर निराकुलता रूपी सुख की प्राप्ति हो। अतः सिद्ध होता है कि निराकुलतारूपी शान्ति की प्राप्ति करने के लिए हमको उस धर्म का स्वरूप समझना चाहिये।

उस धर्म का स्वरूप समझने के भी पहले यह समझना आवश्यक है कि जिस सुख को हमें प्राप्त करना है ऐसा वह सुख कहाँ रहता है कि जहाँ से उसे प्राप्त किया जा सके?

सुख कहाँ होता है?

सामान्यतया लौकिकजनों की ऐसी मान्यता है कि सुख तो इच्छानुकूल सामग्री मिलती है, उसमें से आता है, अतः सामग्री जुटाना अत्यन्त आवश्यक है। लेकिन यह मान्यता गलत है । उदाहरण के लिए मान लो–किसी को गुलाबजामुन खाने की इच्छा हुई और वह उसे मिल गयी तो वह मानने लगता है कि यह सुख उसे गुलाबजामुन में से आया है लेकिन विचारना चाहिये कि अगर यह मान्यता सत्य हैं तो एक गुलाबजामुन में से जितना सुख आया हो तो दस के द्वारा दस

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

गुना सुख मिलना चाहिये और खानेवाले को अर्थात् सुख के चाहनेवाले को खाने से ना नहीं करनी चाहिये, लेकिन प्रत्यक्ष देखने में यह आता है कि इच्छापूर्ति हो जाने के बाद अगर उसको एक भी जबरदस्ती खिलाया जाये तो वह उस ही गुलाब जामुन को खाते हुए दुःखी होने लगता है। विचारना चाहिए कि ऐसा क्यों होता है? जब इसको सुखी होना है और जिसमें सुख ज्यादा आ रहा है तो उसको शीघ्र से शीघ्र ज्यादा से ज्यादा प्राप्त करने की चेष्टा होनी चाहिए, लेकिन होता इससे विपरीत है। दूसरी बात—अगर उस गुलाबजामुन में सुख है ही, तो उसको काटकर देखना चाहिये कि वह सुख है कहाँ? टुकड़े-टुकड़े करके सुख निकाल लेना चाहिये। अतः विचार करें—ऐसा संभव हो सकेगा क्या?

इस दृष्टान्त से यह निष्कर्ष निकलता है कि उन वस्तुओं में सुख होता तो ज्यादा सेवन करने से ज्यादा सुख निकलना चाहिए था, लेकिन ऐसा होता नहीं है। यथार्थ स्थिति यह है कि पहले जिस चीज को प्राप्त करने की इच्छा अपने अन्दर उत्पन्न हुयी थी, जब तक वह चीज प्राप्त नहीं होती आकुलित अर्थात् दुखी होता रहता है, और जब वह इच्छा किसी भी प्रकार की वस्तु को प्राप्त करके या किन्ही भी कारणों से बिना प्राप्त करे भी इच्छा शान्त हो जाती है तो वह आकुलता घट जाने के कारण प्राणी शान्ति का आभास करने लगता है, उसी को सुख मानने लगता है।

यथार्थतया इच्छा का उत्पन्न होना ही दुःख है और चाहे जिस प्रकार से उस इच्छा की कमी होने पर अपने-आपको सुखी मानने लगता है। अतः निर्णय व अनुभव में आता है कि इच्छा आत्मा में ही उत्पन्न होती है तथा आकुलता भी आत्मा में ही होती है और उस आकुलता का अभाव या कमी भी आत्मा में ही होती है। अतः सिद्ध होता है कि आत्मा में उत्पन्न होनेवाला दुःख वही है जो कि इच्छा उत्पन्न होने पर उत्पन्न हुआ है एवं अपने अनुभव में आता है वह

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

आत्मा में ही है व उस आकुलतारूपी दुख की कमी भी आत्मा में ही होती है तथा आत्मा उस समय अपने को सुखी भी मानने लगता है। जब किसी प्रकार गुरु उपदेश अथवा जिनवाणी के माध्यम से यथार्थ स्थिति को समझे कि मेरा सुख बाहर की वस्तु में से नहीं आ सकता है, अतः उनके प्राप्त करने संबंधी आकुलता करना निष्फल है, कर्म का उदय मानकर संतोषवृत्ति धारण करने में ही शान्ति प्राप्त होती है, यही सुखी होने का उपाय है, ऐसा विश्वास जागृत होने पर, आत्मा अगर इच्छाओं को उत्पन्न ही नहीं होने देवे अर्थात् जिसको इच्छा उत्पन्न ही न हो, वही परम सुखी है, वही परमेश्वर है तथा वह सुख भी आत्मा को आत्मा में ही होता है। इससे निष्कर्ष निकला कि आत्मा का सुख आत्मा में ही होता है, आत्मा का सुख अन्य कहीं भी नहीं होता तथा अन्य कहीं से भी नहीं आता।

आत्मा दुःख उत्पन्न ही क्यों करता है?

तब सहज ही प्रश्न खड़ा होता है कि जब आत्मा सुखस्वभावी ही है, उसका निरन्तर सुखमय रहने का स्वभाव ही है तो सुख में से दुःख उत्पन्न ही क्यों होता है और आत्मा दुःख का उत्पादन ही क्यों करता है?

इस प्रश्न को हल करने के लिए पहले यह समझना चाहिए कि दुःख पैदा कैसे होता है? जैसे एक तालाब जो स्वच्छ जल से लबालब भरा उसमें एक पत्थर का टुकड़ा फेंका जाये तो वह तालाब का पानी जो शान्त पड़ा था वह अशान्त हो जाता है, उसीप्रकार आत्मा तो निराकुल स्वभावी आकुलता रहित शान्त ही पड़ा है, उसमें जिस समय भी कोई इच्छारूपी पत्थर का टुकड़ा फेंका कि शान्तस्वभावी आत्मा में आकुलता की उत्पत्ति हो जाती है। अतः यह आत्मा अपनी उल्टी मान्यता के कारण स्वयं ही दुःखी होता है।

प्रश्न का दूसरा चरण है कि आत्मा दुःख का उत्पादन ही क्यों

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

करता है? यह बात बहुत गम्भीरतापूर्वक विचारने लायक है, क्योंकि जो आत्मा को नहीं चाहिए और उत्पादन हो जाने के बाद जिसे मिटाने का प्रयास करना पड़े उसका उत्पादन ही आत्मा क्यों करता है?

सत्य बात तो यही है कि आत्मा को ऐसी गंभीर भूल कभी नहीं करनी चाहिए और उसी में आत्मा का हित भी है, लेकिन अनादिकाल से इसको कभी यह विश्वास ही उत्पन्न नहीं हुआ कि मैं स्वयं सुख-स्वभावी हूँ, मेरे को मेरा सुख कहीं बाहर से लाना नहीं पड़ता, इस विश्वास के माध्यम से अगर मैं सुख प्राप्त करने की इच्छा ही उत्पन्न नहीं होने दूँ तो दु:ख का उत्पादन भी नहीं होगा। बल्कि उससे उल्टा यह विश्वास अनादि से करता चला आ रहा है कि मैं स्वयं सुखस्वभावी नहीं हूँ, मुझे सुख चाहिए और मेरा सुख बाहर के संयोगों में है, उनमें से ही प्राप्त किया जा सकता है, अत: अगर सुख प्राप्ति करना है तो मुझे बाहर के अनुकूल संयोग इकट्ठे करके उनमें से सुख प्राप्त करना चाहिए। उस सुख प्राप्त करने में जो भी बाधक बनें उन सबको अपने पूर्ण प्रयत्न के द्वारा दूर करना पड़ेगा आदि-आदि विश्वास के कारण उन संयोगों को इकट्ठा करने की एवं बाधक को दूर करने की चिन्ता में दिन-रात लगा रहता है और आकुलित हो-होकर निरन्तर दु:खी बना रहता है।

पाँचों पाप एवं कषायों की उत्पत्ति का कारण

उपरोक्त मिथ्या विश्वास, श्रद्धा, निर्णय होने के कारण ही उपरोक्त प्रयासों में लगे रहने पर जिसको जितनी लालसा तीव्र होती है, उनको प्राप्त करने की उग्रता उतनी ही ज्यादा होगी वह व्यक्ति किसी भी प्रकार से संयोग की पूर्ति करने के लिए निरन्तर हिंसा करने में, झूठ बोलने में, चोरी करने में, कामवासना की पूर्ति के लिए, अनेक प्रकारके अनर्थ करने में एवं संयोगों का अपरिमाणरूप से अनवधिमात्रा में इकट्ठा करने एवं बनाये रखने की चिन्ता अर्थात्

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

आकुलता कितनी भी तीव्र हो, करने में जरा भी हिचक नहीं लावेगा एवं उस निरन्तर होने वाली आकुलता को दु:खरूप भी अनुभव नहीं करेगा, बल्कि उससे विपरीत यह तीव्र आकुलता करना अपना कर्तव्य मानकर उसमें अत्यन्त गृद्धता के साथ २४ घण्टे घानी के बैल की तरह जुता ही रहेगा एवं दौड़ ही लगाता रहेगा। इस ही प्रकार के प्रयासों के कारण उसको पांच पाप के अतिरिक्त, बाधक कारणों को हटाने के लिए क्रोध कषाय उत्पन्न हुए बिना नहीं रहती, थोड़ी सी सामग्री प्राप्त होते ही मानकषाय उत्पन्न होकर अपने-आपको दूसरों से ऊँचा दिखाने की एवं दूसरों को अपने से नीचा दिखाने की प्रवृत्ति जागृत हो जाती है, इसी प्रकार इच्छित सामग्री प्राप्त करने के लिए मायाचारी करके भी प्राप्त करने के लिए निरन्तर प्रयासरत रहता है। तथा प्राप्त सामग्री को बनाये रखने एवं तृष्णा की उग्रता होने से और भी ज्यादा बढ़ाने की इच्छा के कारण लोभकषाय हुए बिना नहीं रहती।

इस प्रकार उपरोक्त मिथ्या श्रद्धा-विश्वास वाला जीव सभी प्रकार के पाप एवं सभी तरह की कषायें करने में जरा भी संकोच नहीं करके उल्टी तीव्रता में आकुलतारूपी दु:ख होने पर भी उसमें सुख मानता है, इस विश्वास के कारण वह उस आकुलता को छोड़ने का अथवा नहीं करने का प्रयास कर ही कैसे सकता है? कभी नहीं कर सकता।

निष्कर्ष

सारांश! यह निकला कि आत्मा स्वयं दु:ख का उत्पादक है ही नहीं, वह दु:ख का उत्पादन स्वयं करेगा ही क्यों? क्योंकि दु:ख उसको चाहिए ही नहीं, लेकिन इसकी उपरोक्त उल्टी (विपरीत) मान्यता, विश्वास, श्रद्धा ही उपरोक्त समस्त आकुलता की उत्पादक है। मेरा सुख परवस्तुओं अर्थात् बाहर के संयोगों में है—ऐसी मान्यता ही इसको अनेक प्रकार की इच्छायें उत्पन्न करके तथा उनकी पूर्ति करने संबंधी अनेक प्रकार की आकुलता खड़ी करती है, इसलिए दु:ख का

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

उत्पादक आत्मा नहीं है वरन् उपरोक्त उल्टी मान्यता के कारण उत्पन्न हुयी इच्छायें ही दुःख की उत्पादक हैं।

तात्पर्य यह है कि अगर आत्मा को सुखी बने रहना हो तो उपरोक्त मिथ्या मान्यता को बदलकर इच्छायें उत्पन्न ही नहीं होने देवें अर्थात् वह दुःख आत्मा में पैदा ही न होने पावे तो आत्मा तो सुखी है ही। अतः उसे सुख का उत्पादन नहीं करना है, इसके विपरीत दुःख का उत्पादन जो होता था वह बन्द हो जाने से आत्मा अनन्तकाल तक पूर्ण सुखी बना रहेगा, ऐसी मान्यता उत्पन्न करना है।

उपरोक्त मान्यता को बदलने का उपाय क्या?

उपरोक्त प्रश्न तो बहुत छोटा सा है, लेकिन इसका समाधान बहुत विस्तारपूर्वक गम्भीर गवेषणा मांगता है, कारण अनादिकाल से यह जीव जिस मिथ्यामान्यता (उल्टी मान्यता, उल्टा विश्वास, उल्टी श्रद्धा) होने से निरन्तर इच्छायें उत्पन्न करके उनकी पूर्ति के लिए अनेक प्रकार से राग-द्वेष अर्थात् क्रोधादि कषायें, पाँच पाप आदि भाव करता रहता है, उस ही के फलस्वरूप कर्मबंध करता है, उनके फल में संसार का परिभ्रमण करता ही रहता है। उस सबका कारण अर्थात् संसारभ्रमण का कारण जो उल्टी मान्यता है, उस अनादिकाल की मिथ्यामान्यता को दूर करने के लिए कितनी एकाग्रता, कितनी गंभीरता, कितनी सहिष्णुता, कितना धैर्य एवं अन्दर में तीव्र लगन चाहिए—यह तो आप अनुमान लगा ही सकते हैं।

संसार के परिभ्रमण को दुःखरूप समझकर अब एक भी नया भव प्राप्त नहीं करना है—ऐसा उग्र संकल्प एवं इस मान्यता को बदल कर सच्चा मार्ग प्राप्त करने के लिए मुझे सब कुछ भी बलिदान करना पड़े तो भी सर्वस्व समर्पण करके भी यथार्थ मार्ग प्राप्त करने का उग्र पुरुषार्थ एवं संसारदुःख से भयभीतता, साथ ही आत्मा के अन्दर रहने वाले अतीन्द्रिय सुख की महत्ता आदि जब तक भले प्रकार सत्समागम

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

के द्वारा समझकर आत्मा के अन्दर विश्वास में नहीं जमें तथा सच्चा मार्ग प्राप्त करने की तीव्र लगन ही नहीं लगे, तब तक वह मिथ्या मान्यता बदल कर सच्चा यथार्थ मार्ग प्राप्त करना तो दूर, रुचिपूर्वक समझ में आना भी बहुत कठिन है।

श्रीमद् राजचन्द्रजी ने कहा भी है कि :—

कषाय की उपशान्तता, मात्र मोक्ष अभिलाष ।
भवे खेद प्राणीदया, वहाँ आत्मार्थ निवास ।।

और भी कहा है कि :—

काम एक आत्मार्थ का, अन्य नहीं मन-रोग ।

सारांश यह है कि उपरोक्त मोक्ष का मार्ग अर्थात् संसार परिभ्रमण से छूटने का उपाय अर्थात् धर्म, वही जीव प्राप्त कर सकता है, जिसको ऊपर कहे अनुसार अन्दर में लगन लगी हो। वही आत्मार्थी मुमुक्षु अर्थात् मोक्षमार्ग अर्थात् धर्म, प्राप्त करने का पात्र एवं अधिकारी हो सकता है।

अतः उपरोक्त पात्रता प्रगट करके सम्पूर्ण समर्पणता एवं उग्र पुरुषार्थ के द्वारा धैर्यपूर्वक विस्तार से कहे जाने वाले निजधर्म अर्थात् मोक्षमार्ग के स्वरूप को समझना चाहिए।

(विषय प्रवेश समाप्त)

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

धर्म एवं धर्म समझने की प्रक्रिया

उपरोक्त प्रकार के धर्म समझने के लिए आतुर आत्मार्थी जीव को धर्म समझने के लिए सहज ही निम्नांकित चार प्रश्न उपस्थित होते हैं–

(१) धर्म किसको करना है?
(२) धर्म कहाँ होता है?
(३) धर्म का स्वरूप क्या है?
(४) धर्म प्राप्ति का उपाय क्या है?

उक्त चार प्रश्नों के समाधान प्राप्ति के माध्यम से यह जीव धर्म प्राप्त करने के लिए उद्यत होता है।

धर्म किसको करना है

धर्म किसको करना है–ऐसा प्रश्न ही क्यों उपस्थित हुआ है? जबकि हर-एक व्यक्ति यह कहता एवं मानता है कि धर्म तो मुझे करना है। लेकिन मैं कौन हूँ इस संबंध में विचार करने योग्य बात है। सामान्यतः हरएक व्यक्ति इस वर्तमान में प्राप्त शरीर के साथ आत्मा की मिली-जुली असमान-जातीय पर्याय अर्थात् दशा को ''मैं'' मानता आ रहा है अर्थात् आत्मा तो एक चेतन द्रव्य और यह शरीर पुद्गल परमाणुओं के पिण्ड अचेतन द्रव्यों का समुदाय है–ऐसी दोनों असमान जातीय द्रव्यों की मिली-जुली जो यह वर्तमान पर्याय, उस ही को यह ''मैं'' मानता चला आ रहा है लेकिन दोनों विजातीय द्रव्य होने से दोनों के धर्म अर्थात् स्वभाव भी अलग प्रकार के होना ही चाहिये लेकिन सुख-शांति तो मुझे चाहिए जिससे शांति मिले वह धर्म मुझे करना है। ऐसी स्थिति में यह समझना अत्यन्त आवश्यक हो जाता है

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

कि धर्म किसको करना है। क्योंकि जीवधारी शरीर की वर्तमान पर्याय को "मैं" मानता चला आ रहा हूँ उसमें से मृत्युकाल के समय का प्रत्यक्ष अनुभव है कि इन दोनों में से इस शरीर को तो यहाँ ही जलाकर राख कर दिया जाता है और जिसके निकल जाने के कारण यह जीवित शरीर भी मुर्दा हो जाता है। ऐसा वह जीव इस शरीर से निकल कर अन्यत्र किसी शरीर को अपना निवास बना लेता है, लेकिन उसका अभाव नहीं हो जाता।

मैं कौन हूँ?

उपरोक्त स्थिति में सहज ही यह प्रश्न महत्वपूर्ण हो जाता है कि ऐसी दशा में इन दोनों में से "मैं" कौन हूँ? क्योंकि जिस पर्याय को मैंने अभी तक "मैं" मान रखा था उस पर्याय का ता अब कहीं पर भी अस्तित्व ही नहीं रहा। वे दोनों अलग थे इसलिए अलग-अलग हो गये, मैंने भ्रम से भूलकर इस पर्याय को "मैं" मान रखा था, इसलिए अब मुझे निर्णय करना चाहिए कि इन दोनों में से "मैं" कौन हूँ। गंभीरता से विचार करने पर सहज ही समझ में आ जाता है कि जिसको जलाकर मिट्टी में मिला दिया गया वह "मैं" कैसे हो सकता हूँ? मेरा अस्तित्व तो मुझे प्रत्यक्ष अनुभव में आता है।

अखबारों में पढ़ने को मिलता है कि कई व्यक्तियों को वर्तमान भव में पूर्व भव की बातें याद आ जाती हैं और उन प्रसंगों के सम्बंध में छानबीन करने पर वे सत्य प्रमाणित होती हैं, साथ ही लौकिक में भी कहा जाता है कि मृत्युकाल में जब यह शरीर मुर्दा हो जाता है तो कहते हैं कि अब इसमें से जीव निकल गया, अतः यह जलाने योग्य हो गया—इससे निष्कर्ष यह निकला कि हर व्यक्ति अव्यक्तरूप से यह स्वीकार करता है एवं मानता है कि जिसको यह कहता है—"निकल गया", उसका अस्तित्व कहीं न कहीं है जरूर। दृष्टान्त पूर्व में दिया जा चुका है कि कोई एक व्यक्ति अपने मित्र के घर आकर वहाँ से

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

वापस अपने घर चला गया, उसके चले जाने के बाद उस व्यक्ति का पुत्र उस मित्र के घर आता है तो उसका मित्र यही कहता है कि तेरा पिता यहाँ से चला गया। ऐसा सुनते ही उस पुत्र को ऐसा विकल्प खड़ा नहीं होता कि "चला गया" कहा तो मेरा पिता मर गया। वरन् बिना कोई शंका के वह पुत्र समझ जाता है कि मेरे पिताजी यहाँ से चले गये, अतः उनका अभाव नहीं हो गया। पिताजी इस स्थान पर नहीं हैं लेकिन अन्यत्र कहीं भी उनका अस्तित्व है, इसीप्रकार जब हम यह बोलते हैं कि इस शरीर से जीव निकल गया तो इसका मतलब बिना कोई शंका के हम यह स्वीकार करते हैं कि उस शरीर से निकल जाने वाले जीव का अभाव नहीं हो गया है वरन् कहीं न कहीं उसका अस्तित्व मौजूद है।

ऐसी परिस्थिति में मुझे यह मानने के लिए विवश होना पड़ेगा कि इस वर्तमान में प्राप्त मेरी असमान जातीय पर्याय को, जिसको अभी तक मैंने "मैं" तरीके मान रखा था वह मेरी भूल थी। इन दोनों की मिली-जुली इस दशा में भी जो शरीर छूट जाने पर अलग हो जावेगी और कहीं न कहीं कायम रहेगी अर्थात् जिसका अस्तित्व नाश नहीं होगा, ऐसी जो भी शक्ति है जिसको आत्मा, जीव आदि किसी भी नाम से कहो—वह ही एकमात्र "मैं" हो सकता हूँ। यह शरीर अथवा यह मिली-जुली पर्याय "मैं" नहीं हो सकता। इसप्रकार अनेक तर्क-वितर्कों के द्वारा आगम, युक्ति, अनुमान एवं स्वानुभव से यह पक्का निर्णय हो जाना चाहिए कि इस शरीर के अन्दर रहते हुए भी वह जीव ही "मैं" हूँ, यह शरीर भले ही जीव के साथ रहे, लेकिन वह "मैं" नहीं हो सकता।

ऐसी अकाट्य श्रद्धा, विश्वास, प्रतीति, निर्णय प्रगट हो जाने पर ही धर्म समझने की पात्रता उत्पन्न होगी, क्योंकि जिस पात्र जीव को ऐसी अकाट्य श्रद्धा उत्पन्न हो जाती है उसकी ही साधना का केन्द्रबिन्दु एकमात्र अपना आत्मा ही हो जाता है, उसकी धर्म समझने के लिए

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

इधर-उधर उपयोग को भ्रमाने की भटकन खतम होकर अपनी सम्पूर्ण शक्ति एकमात्र अपने आत्मा की ओर ही केन्द्रित हो जाती है, अतः उसको समझने में सुगमता भी प्राप्त हो जाती है।

उपरोक्त निर्णय की पुष्टि उन विचारों से भी होती है कि जिसको धर्म करना है वह स्वयं अगर नष्ट हो जावे—भष्मीभूत हो जावे तो धर्म क्यों करना? उस धर्म का फल पाने के लिए तो उसका अस्तित्व ही नहीं रहता, अतः जो कायम रहे यानी जिसका भविष्य में भी अस्तित्व बना रहे तो धर्म का फल वह प्राप्त कर सकेगा। अतः वर्तमान इस शरीर के अन्दर रहने वाला जीव है वह ही "मैं" हूँ और उसका कभी नाश नहीं होगा। इसलिए धर्म का फल भी मैं ही प्राप्त करूँगा। अतः यह जीवात्मा ही मैं जीव हूँ, वह शरीर "मैं" नहीं हूँ। इसलिए मुझे यानी आत्मा को, आत्मा के लिए ही मेरी आत्मा में ही मेरा धर्म होगा, ऐसा विश्वास जाग्रत करे कि "मुझे आत्मा के धर्म का स्वरूप समझकर अपने ही लिए अपने में ही धर्म प्रगट करना है।"

तात्पर्य यह है कि सर्वप्रथम पूर्ण पुरुषार्थ पूर्वक यह निर्णय करना आवश्यक है कि धर्म किसको करना है अर्थात् "मैं" कौन हूँ।

धर्म कहाँ होता है?

यह निर्णय करने के पश्चात् कि धर्म मुझे अर्थात् आत्मा को करना है—यह निर्णय करना आवश्यक हो जाता है कि वह आत्मा का धर्म आत्मा में ही होता है अथवा आत्मा के अतिरिक्त अन्य द्रव्य शरीरादि में होता है। इसका निर्णय करने के भी पहले यह समझना चाहिए कि धर्म से विपरीत, अधर्मभाव क्या है और वह कहाँ उत्पन्न होता है?

आत्मा अपने अन्दर होने वाले जिन भावों को दूर करना चाहता हो वे अधर्मभाव हैं तथा जिन भावों को बनाये रखना चाहता हो वे ही धर्मभाव हैं।

अतः अभी जो पापभाव अथवा आकुलता का भाव आत्मा में हो

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

रहा है वही तो अधर्मभाव है; उसको टालकर उस ही के स्थान पर ही तो मुझे धर्मभाव, अनाकुल अर्थात् शान्तभाव उत्पन्न करना है। अतः हमें इस निष्कर्ष पर पहुँचने के लिए कि "धर्म कहाँ होता है" यह खोज भी आवश्यक हो जाती है कि अधर्मभाव अर्थात् आकुलताभाव कहाँ होता है।

अधर्मभाव कहाँ होता है?

यह तो सहज रूप से हमको प्रत्यक्ष अनुभव है कि मेरा आकुलताभाव मेरी आत्मा में ही होता है। मेरी आकुलता मेरे सबसे नजदीक रहने वाले शरीर में नहीं होती, मेरे अत्यन्त निकटवर्ती जिनको अभिन्न अंग अथवा अर्धांगिनी भी कहा जाता है ऐसी स्त्री आदि अन्य कोई भी व्यक्ति हों उनको भी मेरी आकुलता नहीं होती, मेरी आकुलता तो मात्र एक मेरी आत्मा के ही वेदन में आती है। उस आकुलता की उत्पत्ति में बाह्य कारण अनेक हो सकते हैं लेकिन आकुलता का वेदन तो आत्मा को ही अपनी स्वयं की अवस्था में ही होता है। साथ में यह भी विश्वास है कि यह आकुलता हमेशा बनी नहीं रहती, अतः नष्ट की जा सकती है। अतः जहाँ वर्तमान में आकुलता हो रही है उस ही के स्थान पर अर्थात् आत्मा की स्वयं की अवस्था में ही उस आकुलता अर्थात् अधर्मभाव को टालकर, निराकुलता अर्थात् धर्मभाव प्रगट किया जा सकता है। अतः उपरोक्त ऊहापोह के द्वारा हम सहज ही इस निष्कर्ष पर पहुँच जाते हैं कि आत्मा का धर्म आत्मा में ही अर्थात् आत्मा की स्वयं की पर्याय (अवस्था) में ही होता है।

इस विषय को और भी स्पष्ट करने के लिए हम दृष्टान्त के माध्यम से समझें कि जैसे किसी व्यक्ति को जान से मार देने की योजना किसी ने अपने भावों में बनाई और वह अपनी उस योजनानुसार कार्य करने के लिए उद्यमी भी हुआ लेकिन बाहर का वातावरण अनुकूल नहीं

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

मिलने से वह उसको मार नहीं सका। तो अपने को विचार करना चाहिए कि उस व्यक्ति के द्वारा उस व्यक्ति का घात तो हुआ नहीं, फिर भी उसने हिंसारूप अधर्मभाव किया या नहीं? और किया है तो वह भाव कहाँ हुआ था? इसीप्रकार एक डाक्टर किसी मरीज का ऑपरेशन कर रहा हो और कदाचित ऑपरेशन करते समय ही उस मरीज का देहावसान हो जावे तो विचार करिए कि डॉक्टर को मरीज के मारने रूप पापभाव माना जावेगा या बचाने का पुण्यभाव? और ऐसा क्यों माना गया? क्योंकि डॉक्टर ने तो अपने आत्मा में होने वाले भावों में तो बचाने का ही भाव किया था।

इससे निष्कर्ष निकलता है कि जिसप्रकार हिंसा, अहिंसा भाव आत्मा में ही होता है इस ही प्रकार धर्म अर्थात् निराकुल भाव भी आत्मा में ही उत्पन्न किया जा सकेगा।

धर्म प्राप्त करने का मार्ग

जिन उपायों के द्वारा आत्मा में होनेवाली आकुलता को हटाकर निराकुलता उत्पन्न की जा सकती हो उन ही सब उपायों को जिनागम में धर्म प्राप्त करने का मार्ग अर्थात् मोक्षमार्ग के नाम से संबोधन किया गया है। उस निराकुल रूपी धर्मदशा प्राप्त करने में अनुकूल शारीरिक क्रिया तथा बाहर के अन्य संयोग अर्थात् वातावरण उस धर्मप्राप्ति में बाधक नहीं होकर सहकारी होने पर उनको भी जिनागम में व्यवहार से धर्म का मार्ग कहा गया है लेकिन अगर वे बाधक हों तो उनको व्यवहार से भी धर्म का मार्ग नहीं माना जा सकता। इस विषय पर विस्तार से चर्चा आगे करेंगे, क्योंकि आत्मा को सुखी होना है अतः सुखी होने का उपाय विस्तार से समझे बिना एवं उस रूप अपनी परिणति बनाये बिना यह आत्मा सुखी कैसे हो सकेगा?

उपरोक्त निर्णय होने के पश्चात् सहज ही जिज्ञासा खड़ी होना स्वभाविक है कि उस धर्म का स्वरूप क्या है जिसके द्वारा इस आत्मा को अपनी पर्याय में धर्म उत्पन्न करना है। अतः धर्म के मार्ग की

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

साधना तब ही प्रारंभ हो सकेगी जबकि उसका स्वरूप पहले समझा जावेगा। जैसे कि गन्तव्य स्थान पर पहुँचने के लिए उसका मार्ग पहले समझना ही पड़ेगा।

धर्म का स्वरूप क्या है? "वत्थु सहावो धम्मो"

"वत्थु सहावो धम्मो" आचार्य महाराज ने धर्म की एक विशद् व्याख्या की है। "वत्थु सहावो धम्मो" अर्थात् वस्तु का स्वभाव ही उस वस्तु का धर्म है–यह धर्म की एक सार्वभौमिक व्याख्या है। अर्थात् जगत में जो भी जितनी भी वस्तुएं हैं, उन सबके अपने-अपने स्वभाव हैं, और वे स्वभाव ही उन-उन वस्तुओं के निजधर्म हैं। इस व्याख्या के अनुसार सहज ही तीन प्रश्न खड़े होते हैं कि–

(१) वस्तु क्या है?
(२) वस्तु के स्वभाव से आशय क्या है?
(३) वस्तु के स्वभाव को धर्म क्यों कहा गया?

यहां इन विषयों पर क्रमशः विचार किया जाता है। सर्वप्रथम "वस्तु क्या है" यह समझने की आवश्यकता है।

वस्तु क्या है?

यह सारा लोक जिसको हम विश्व भी कहते हैं–जो हमको दिखता भी है वह छह प्रकार की वस्तुओं से भरा हुआ है अर्थात् इन छह वस्तुओं के समुदाय को ही लोक अथवा विश्व कहा जाता है। इन छह वस्तुओं को छह द्रव्यों के नाम से भी कहा गया है अर्थात् छह द्रव्यों के समुदाय को ही विश्व कहते हैं।

वे छह द्रव्य कौन-कौन हैं, तो उनके नाम हैं :–जीव, पुद्गल, धर्म, अधर्म, आकाश, काल। इन छह में धर्म-अधर्म नाम आये हैं वे पाप-पुण्य के वाचक नहीं हैं, वरन् ये दोनों धर्मद्रव्य एवं अधर्मद्रव्य नाम की दो अलग-अलग वस्तुएँ हैं। इनमें से जीव और पुद्गल तो सारे विश्व में अनेक रूपों में अनेकों की संख्या में हमको प्रत्यक्ष

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

अनुभव में आते ही हैं, लेकिन बाकी के चार द्रव्य आसानी से समझ में नहीं आ पाते, अतः इनको समझने के पूर्व, हम जीवद्रव्य की ही चर्चा मुख्यरूप से करेंगे, क्योंकि आत्मा की शांति ही हमारा मूल प्रयोजन है। साथ ही जीवद्रव्य में अशान्ति पैदा करने में पुद्गल द्रव्य का सम्बन्ध निमित्त होने से पुद्गल द्रव्य की भी चर्चा करेंगे, बाकी के चार द्रव्य धर्म, अधर्म, आकाश, काल-द्रव्य भी हैं लेकिन हमारी आत्मा की अशान्ति में मुख्य कारण नहीं होने से उनकी चर्चा में हम अभी नहीं उलझेंगे, लेकिन पाठकों को इतना ही मान लेना चाहिए कि इन चारों का भी अस्तित्व उस ही प्रकार है जिसप्रकार जीव और पुद्गल का है और जीव व पुद्गल का स्वरूप समझ लेने के बाद इनका भी स्वरूप सुगमता से समझ में आ जावेगा। इसप्रकार वर्तमान में जीव ही हमारे समझने के लिए मुख्य विषय रहा एवं गौणरूप से पुद्गल को भी समझना है।

वर्तमान में यह छह द्रव्यों के समुदायरूप लोक; अनन्ते जीवद्रव्य, अनन्तानन्त पुद्गलपरमाणु एवं एक-एक धर्मद्रव्य, अधर्मद्रव्य, आकाशद्रव्य एवं असंख्यात कालाणुओं से भरा हुआ है अर्थात् अनन्तानंत वस्तुओं के रहने का स्थान है।

इसप्रकार अनन्तानंत वस्तुओं में से, मैं भी एक जीवद्रव्य हूँ, मुझे ही मेरे लिए धर्म करना है, इसलिए मुझे मेरा ही स्वरूप समझना मुख्य है,—इस दृष्टिकोण को मुख्य रखकर मुझे धर्म का स्वरूप समझना है।

इसप्रकार वर्तमान लेख का पहला चरण कि "वस्तु क्या है"—यह पूर्ण हुआ। इसके द्वारा हमने यह समझा कि यह विश्व अनन्तानंत वस्तुओं से भरा है और उन सबमें से मैं भी एक वस्तु हूँ।

वस्तु का स्वभाव क्या?

इसका दूसरा चरण समझने के लिए सर्वप्रथम यह समझना है कि सभी वस्तुओं में स्वभाव का अर्थ क्या होता है? स्वभाव का अर्थ, अपनी-अपनी क्वालिटी या अपने-अपने गुण, अपनी-अपनी

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

विशेषताएँ। जगत में जो भी वस्तुएँ हैं वे सभी अपनी-अपनी क्वालिटी, स्वभाव, गुण, विशेषता जरूर रखती हैं। उन क्वालिटियों में यानी स्वभावों में सभी वस्तुओं में एक रूप से पाये जाने वाले स्वभाव सर्वप्रथम समझने चाहिए, तदुपरांत अलग-अलग वस्तु के अपने-अपने स्वभाव समझना चाहिए। इस ही को शास्त्रीय भाषा में कहा जाता है—सामान्य स्वभाव एवं विशेष स्वभाव।

उनमें से जो स्वभाव सभी वस्तुओं में सामान्य रूप से हो वह सामान्य स्वभाव अर्थात् सामान्य गुण कहलाता है एवं जो स्वभाव अनेक अर्थात् अनन्त वस्तुओं में से किसी एक ही द्रव्य में अर्थात् छह द्रव्यों में से किसी एक ही प्रकार के द्रव्य में पाया जाता हो उसको विशेष स्वभाव अर्थात् विशेष गुण कहते हैं। सभी द्रव्यों में सामान्य रूप से पाये जाने वाले गुणों में सबसे मुख्य है—"अस्तित्व गुण।" कहा भी है "सत्द्रव्यलक्षणम्" (तत्त्वार्थ सूत्र अ. ४)

"सत्द्रव्यलक्षणम्"

आचार्यों ने सभी वस्तुओं का मुख्य स्वभाव बताया कि हर एक द्रव्य किसी भी हालत में किसी भी स्थान पर हो, लेकिन उसका अस्तित्व रहना ही मुख्य स्वभाव है। आचार्य उमास्वामी महाराज ने तत्वार्थसूत्र में कहा भी है—"सत्द्रव्यलक्षणं" अर्थात् अस्तित्व रहना, कभी नाश नहीं होना वस्तु का सबसे मुख्य लक्षण है। इस सद्स्वभाव को समझकर ऐसी श्रद्धा उत्पन्न होना चाहिए कि—"मैं भी एक जीव द्रव्य हूँ तो मेरा भी सत्ता लक्षण है, अतः मेरा कभी किसी भी प्रकार से कोई भी सर्वथा नाश नहीं कर सकता, यही कारण है कि मेरा जीव द्रव्य अनादि से अभी तक भी है और आगामी भी किसी भी रूप में हो मैं कायम रहूँगा, मेरी सत्ता का अभाव कभी भी नहीं हो सकेगा। इसी प्रकार जगत के जितने भी द्रव्य हैं उनकी भी सत्ता कोई नष्ट करना चाहे तो भी नहीं कर सकता।"

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

पंचाध्यायी में कहा भी है:-

तत्व सत् लक्षणवाला है, सत्मात्र है, तथा स्वतः सिद्ध है, इसलिए अनादि-निधन, स्वसहाय, निर्विकल्प भी है।

इन विचारों मात्र से भी अपने आप में अनन्त निर्भयता उत्पन्न होती है। तात्पर्य यह है कि जगत में जितने भी द्रव्य हैं, जाति की अपेक्षा छह प्रकार के एवं संख्या की अपेक्षा अनंतानंत वे सभी द्रव्य हर एक अलग-अलग अपनी-अपनी स्वतंत्र सत्तावान पदार्थ हैं, उनमें से किसी की भी सत्ता में कोई भी किसी प्रकार से बाधा नहीं पहुँचा सकता, अतः मैं भी एक जीव पदार्थ हूँ, मेरी सत्ता में भी कोई बाधा डालनेवाला इस जगत में नहीं है। तथा मुझे भी किसी भी अन्य एक भी पदार्थ की सत्ता में हस्तक्षेप करने का अधिकार नहीं है आदि-आदि।

[1]उत्पादव्ययध्रौव्ययुक्तं सत्

इस पर से सहज ही प्रश्न उपस्थित होता है कि जब वस्तु का अस्तित्व रहना ही स्वभाव है तो वह एकरूप में ही अनादि अनन्त रहनी चाहिए थी, यह विविधपना कैसे है? इसके समाधानस्वरूप आचार्य उमास्वामी ने दूसरा सूत्र दिया कि "उत्पादव्ययध्रौव्ययुक्तं सत्" अर्थात् सत्रूप वस्तु हमेशा एकरूप ही नहीं रहती, वरन् वह अपनी एकरूपता को कायम रखते हुए भी अनेक प्रकार की नवीनता हर समय करती रहती है। ऐसा ही वस्तु का अनादि-अनन्त स्वभाव है।

अभी हम एक जीव द्रव्य के संबंध में विचार करें तो इसमें हर समय ही परिवर्तन होता हुआ हमको ख्याल में आता है, जैसे कभी क्रोध भाव हुआ वह भी हर समय घटता-बढ़ता है, एक-सा नहीं रह पाता और कभी क्रोध के स्थान पर मान का भाव भी आ जाता है, आदि-आदि अनेक प्रकार से परिवर्तन होता हुआ अनुभव में आता है लेकिन वे सब

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

परिवर्तनवाले भाव जिसमें हो रहे हैं ऐसा वह जीवद्रव्य स्वयं ज्यों का त्यों हर परिवर्तन के समय भी तथा बाद में भी एक-सा ही बना रहता है।

इसीप्रकार पुद्गल में भी देखें तो उसमें भी परिवर्तन होता हुआ हमको प्रत्यक्ष ज्ञान में आता है, जैसे रोटी आदि खाद्य पदार्थों के परमाणु भोजन के बाद शरीर में अनेक प्रकार से परिणमन करते हुए ज्ञान में आते हैं, जैसे उस भोजन के परमाणुओं में से कुछ हड्डीरूप, कुछ मांसरूप, कुछ मज्जारूप, कुछ खून (रक्त) रूप, कुछ पेशाबरूप, कुछ मलरूप आदि अनेक-अनेक रूप से परिणमते हुए प्रत्यक्ष अनुभव में आते हैं, तदुपरान्त वे ही मलरूप परमाणु खाद के रूप में खेत में पहुँच जाते हैं, कालान्तर में वे ही गेहूँ रूप होकर फिर हमारे खाने योग्य बन जाते हैं, आदि-आदि।

इन सब दृष्टान्तों से यह सिद्ध होता है कि हर एक पदार्थ यानी द्रव्य अपने एकरूपपने को कायम रखता हुआ भी हर समय अवस्था बदलता ही रहता है, इसी को शास्त्रीय भाषा में, एकरूप पने को ध्रुव एव बदलने को उत्पाद-व्यय के नाम से समझाया गया है अर्थात् हर एक द्रव्य अपनी अनादि सत्ता को ध्रुवरूप से टिकाये हुए रखकर अवस्थाओं को हर समय पलटता ही रहता है अर्थात् पूर्व अवस्था का व्यय करते हुए नवीन अवस्था का उत्पाद करता रहता है। जिस अवस्था का उत्पाद करता रहता है उस अवस्था को ही पर्याय के नाम से शास्त्रों में संबोधित किया गया है।

गुणपर्ययवद्द्रव्यं

सतस्त द्रव्यों की ध्रुवता और परिणमन को स्पष्ट करते हुए आचार्य महाराज ने दूसरा सूत्र दिया है :—"गुणपर्ययवद्द्रव्यं" अर्थात् उन सबकी ध्रुवता एवं परिणमन अपने-अपने गुणों में अर्थात् स्वभावों में ही होता है, कोई भी द्रव्य अपने-अपने गुणों के अतिरिक्त अन्य द्रव्य के गुणों में किसी भी प्रकार से परिणमन नहीं कर सकता। जैसे शरीर

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

के किसी भाग में दर्द उत्पन्न होने पर आत्मा बहुत तीव्रता से इच्छा करता है कि वह दर्द मिट जावे, लेकिन शरीर के परमाणु अपने गुणों में ही परिणमन करते हैं, और आत्मा अन्य द्रव्य होने से वह अपने गुणों में ही इच्छारूप विपरीत परिणमन करता है, लेकिन आत्मा भिन्न द्रव्य होने से शरीर के परमाणुओं में कुछ भी फेरफार नहीं कर सकता। कारण यही है कि हर एक द्रव्य अपने-अपने गुणों को ध्रुव रूप से कायम रखते हुए अपने-अपने गुणों में ही परिणमन कर सकते हैं, लेकिन अन्य के परिणमन में हस्तक्षेप करने की उसमें सामर्थ्य ही नहीं है।

निष्कर्ष

उपर्युक्त सम्पूर्ण विवेचन से यह निष्कर्ष निकला कि जगत में जितने भी पदार्थ यानी द्रव्य हैं, वे सत्तारूप द्रव्य अनादि अनन्त रहने वाले हैं तथा वे सब अपने गुण अर्थात् स्वभाव अर्थात् अपनी-अपनी क्वालिटियों के समुदाय हैं और जब वह द्रव्य स्वयं अनादि अनन्त रहनेवाला सत्तारूप पदार्थ है तो उन द्रव्यों के अपने-अपने गुण भी सत्तारूप अनादि अनन्त रहने वाले सहज ही सिद्ध हो जाते हैं अर्थात् गुणों के समुदायरूप हर एक द्रव्य स्वयं ध्रुव एक-सा अनादि अनन्त बना ही रहता है, कभी नष्ट नहीं हो सकता, लेकिन साथ ही उन गुणों का समुदायरूप द्रव्य हर समय परिवर्तन भी करता ही रहता है, क्योंकि स्वयं कायम रहते हुए भी प्रतिक्षण बदलते रहना वस्तु का स्वभाव है। और, ऐसा ही प्रत्यक्ष अनुभव में भी आता है, इसलिए इसमें शंका का कोई अवकाश ही नहीं रह जाता। ऐसी स्थिति में जब वह द्रव्य स्वयं पलटता है तो उसके सभी गुण भी पलटे बिना कैसे रह सकते हैं? अतः सभी गुणों की हर समय नवीन-नवीन रूप से उपस्थिति हमारे अनुभव में आती है। जैसे, मेरे आत्मा में ही अनन्त गुण हैं। विचार करें तो उनमें से एक ही समय में ज्ञान पहले समय किसी को जानता था दूसरे समय दूसरे को जानता है, उसी समय चारित्रगुण की विपरीतता में कभी क्रोध आता है, दूसरे समय ही मान आ जाता है या

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

क्रोध ही कम-ज्यादा हो जाता है। इसीप्रकार सुख के स्थान पर दु:ख और दु:ख के स्थान पर सुख आदि-आदि परिवर्तन प्रत्यक्ष अनुभव में आते हैं, फिर भी जीवद्रव्य एवं उसके ज्ञान-चरित्र आदि गुण तो स्थाई रूप से बने ही रहते हैं। उनकी अवस्थाएं बदल जाने पर भी वे तो स्वयं बने ही रहते हैं।

स्वतंत्रता

इसप्रकार उपर्युक्त ऊहापोह से एक महान सिद्धान्त का उदय हुआ कि जगत का हर एक पदार्थ अनन्त गुणों का समुदाय होते हुए भी यानी नवीन-नवीन अवस्थाओं में प्रगट होते हुए भी अपनी सत्ता अनादि अनन्त बनाये हुए हैं। अर्थात् कोई भी अन्य द्रव्य या उसका कोई भी अंश किसी अन्य द्रव्य की सत्ता में किंचित्मात्र भी दखल नहीं दे सकता तो उस द्रव्य के किसी भी गुण में दूसरे द्रव्य का दखल कैसे हो सकता है और जब किसी गुण में किसी का दखल नहीं हो सकता तो उस गुण की किसी भी समय की किसी भी पर्याय में किसी का दखल कैसे संभव हो सकता है?

इसका अर्थ यह निकलता है कि द्रव्य तो अपनी स्वयं की सत्ता निर्बाध रूप से बनाये हुए है ही लेकिन उसके स्वयं के ही अंश किसी भी गुण की किसी एक भी पर्याय की भी सत्ता स्वयं अपनी स्वतंत्रता से निर्बाधरूप से बनी ही रहती है।

पंचाध्यायीकार ने भी इसी का समर्थन किया है:—

तत्वं सल्लाक्षणिकं सन्मात्रं वा यतः स्वतः सिद्धं ।
तस्माद् अनादिनिधनं स्वसहायं निर्विकल्पं च ।।

अर्थात् तत्व या पदार्थ सत्लक्षण वाला है, सत्मात्र है तथा स्वत:सिद्ध है— (किसी के द्वारा बनाया हुआ नहीं है) इसलिए वह अनादि निधन होने से स्वसहाय (स्वतंत्र) है एवं निर्विकल्प (द्वैत नहीं) है।

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

इन सबसे सिद्ध होता है कि द्रव्य एवं गुण तो स्वतंत्र हैं ही, लेकिन हरएक द्रव्य के हर एक गुण की एक-एक पर्याय भी स्वतः सिद्ध एवं स्वसहाय है, उस पर्याय का स्वामी वह द्रव्य ही है, अन्य किसी भी द्रव्य का उसमें किसी भी प्रकार से हस्तक्षेप संभव नहीं हो सकता।

समयसार गाथा ३ की टीका में भगवान अमृतचन्द्राचार्य ने हर एक द्रव्य की स्वतंत्रता निम्नप्रकार सिद्ध की है:–

"समयशब्देनात्र सामान्येन सर्व पदार्थोऽभिधीयते। समयत एकीभावेन स्वगुणपर्यायान् गच्छतीति निरुक्तेः। ततः सर्वत्रापि धर्माधर्माकाशकालपुद्गलजीवद्रव्यात्मनि लोके ये यावंतः केचनाऽवेप्यर्थास्ते सर्व एव स्वकीयद्रव्यांतर्मग्नानंतस्वधर्मचक्रचुंबिनोपि परस्परमचुंबंतोत्यंतप्रत्यासत्तावपि नित्यमेव स्वरूपादपतंतः पररूपेणापरिणमनादविनष्टानंतव्यक्तित्वाट्टंकोत्कीर्णा इव तिष्ठंतः समस्तविरुद्धाविरुद्धकार्यहेतुतयाशश्वदेव विश्वमनुगृह्णंतो।"

"यहाँ", "समय" शब्द से सामान्यतया सभी पदार्थ कहे जाते हैं, क्योंकि व्युत्पत्ति के अनुसार "समयते" अर्थात् एकीभाव से अपने गुण-पर्यायों को प्राप्त होकर जो परिणमन करता है सो "समय" है। इसलिये धर्म, अधर्म, आकाश, काल, पुद्गल, जीव द्रव्यस्वरूप लोक में सर्वत्र जो कुछ जितने पदार्थ हैं, वे सब निश्चय से (वास्तव में) एकत्वनिश्चय को प्राप्त होने से ही सुन्दरता को पाते हैं, क्योंकि अन्य प्रकार से उनमें संकर, व्यतिकर आदि सभी दोष आ जायेंगे। वे सब पदार्थ अपने द्रव्य में अन्तर्मग्न रहने वाले अनन्त धर्मों के चक्र (समूह) का चुम्बन करते हैं–स्पर्श करते हैं, तथापि वे परस्पर एक दूसरे को स्पर्श नहीं करते, अत्यन्त निकट एकक्षेत्रावगाहरूप से तिष्ठ रहे हैं, तथापि वे सदाकाल अपने स्वरूप से च्युत नहीं होते, पररूप परिणमन न करने से अपनी अनन्त व्यक्तितता (प्रगटता) नष्ट नहीं होती, इसलिए जो टंकोत्कीर्ण की भाँति (शाश्वत) स्थित रहते हैं और समस्त विरुद्ध कार्य तथा अविरुद्ध कार्य दोनों की हेतुता (निमित्त-भाव) से वे सदा

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

विश्व का उपकार करते हैं—टिकाये रखते हैं।"

उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है कि हर एक द्रव्य अपने-अपने गुण-पर्यायों में ही निरन्तर परिणमन करते रहते हैं, लेकिन उन्हीं आकाश के प्रदेशों में स्थित अन्य द्रव्य के गुण-पर्यायों में किंचित्मात्र भी कुछ भी करने की सामर्थ्य ही नहीं रखते, यही कारण है कि अनन्त द्रव्यों का अपना-अपना अस्तित्व निर्वाधतया अनादि अनंत सत्रूप से कायम बना रहता है।

सारांश यह निकला कि मेरा जीवद्रव्य मेरे ही शरीर के पुद्गल परमाणुरूप द्रव्यों का, अत्यन्त नजदीकी रखते हुए भी कुछ भी नहीं कर सकता, अनुभव में भी आता है कि शरीर में बुखार आने पर आत्मा अन्दर में अनेक विचार उस बुखार को हटाने का करता रहता है, लेकिन उन विचारों का अंशमात्र भी उन शरीराकार पुद्गल परमाणुओं पर कोई असर नहीं होता। ऐसा ही सर्वत्र मानकर अपने कर्तृत्व के मिथ्या अभिमान को छोड़कर सब द्रव्यों के परिणमनों की ओर से उपेक्षित हो आत्मसन्मुख होने का पुरुषार्थ प्रगट करना ही कर्तव्य है।

यह चर्चा वस्तु का स्वभाव जानने के अन्तर्गत ही चल रही है।

गुण क्या है?

उपर्युक्त सारे विवेचन के बाद एक जिज्ञासा खड़ी होती है कि जिन गुणों की एक-एक समय की एक-एक पर्याय की स्वतंत्रता सिद्ध की गई है, वे गुण क्या हैं व कौन-कौन से हैं?

छह द्रव्यों के समुदाय को ही विश्व अर्थात् लोक कहते हैं, उनमें जाति की अपेक्षा द्रव्य छह होते हुए भी संख्या की अपेक्षा अनन्त-अनन्त हैं, उनमें से हर-एक द्रव्य में अपने-अपने में ही रहने वाले अनन्त गुण अर्थात् स्वभाव अर्थात् क्वालिटी होती है। स्थूलरूप से इन सबके गुणों की विशेषता का भी अनेक प्रकार से विभाजन किया गया है।

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

सामान्य एवं विशेष गुण

उपर्युक्त छह द्रव्यों के गुणों में जो कि हर एक द्रव्य में संख्या की अपेक्षा अनंत होते हैं, उन अनंत गुणों में बहुत से गुण ऐसे भी हैं जो कि सभी द्रव्यों में मिलते हैं। जैसे अस्तित्वगुण अर्थात् हर एक द्रव्य का अस्तित्व कायम बने रहना, प्रमेयत्व गुण अर्थात् ज्ञान में आ सकने की योग्यता यानि ज्ञेयत्वपना, द्रव्यत्वगुण अर्थात् कूटस्थ की तरह नहीं रहना, परिणमते रहना, अगुरुलघुत्व अर्थात् अपनी सीमा में बने रहना, न बहुत छोटा होकर ज्ञान में न आवे और न बहुत बड़ा हो जावे आदि-आदि। अनन्त ऐसे गुण हैं जो सभी द्रव्यों में मिल जाते हैं, अतः ऐसे गुणों के द्वारा उन द्रव्यों को भिन्न-भिन्न रूप से पहिचाना नहीं जा सकता, अतः उनको उन द्रव्यों का लक्षण नहीं कहा जाता। ऐसे गुणों को ही शास्त्रीय भाषा में सामान्य गुण कहा जाता है। लेकिन नीचे कहे गये जीव के ज्ञान-दर्शन आदि एवं पुद्गल के स्पर्श-रस आदि विशेष गुण कहे गये हैं। उन विशेष गुणों के द्वारा ही उन-उन द्रव्यों को पहिचाना जा सकता है। अतः उन गुणों को ही लक्षण के रूप में जानना चाहिए।

लक्षण किसे कहते हैं?

उपर्युक्त गुणों को ही उन-उन द्रव्यों को पहचानने के लिए उन-उन द्रव्यों का लक्षण भी कहा गया है। लक्षण उसे कहते हैं—"जो लक्षण, अपने लक्ष्य में तो मिले लेकिन अन्य किसी में न मिले वह लक्ष्य किसी भी समय उस लक्षण से अलग नहीं हो सके।"

विशेष गुण

वे विशेष गुण इसप्रकार हैं, जिनको लक्षण भी कहा गया है—(१) ऐसे एक जीवद्रव्य तो चेतन. बाकी पांचों द्रव्य अचेतन, (२) एक

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

पुद्गल द्रव्य तो मूर्तिक एवं बाकी जीवसहित पाँचों द्रव्य अमूर्तिक (३) जीवद्रव्य के विशेष गुण, ज्ञान-दर्शन आदि अनन्त (४) पुद्गल द्रव्य के विशेष गुण, स्पर्श-रस-गंध-वर्ण आदि अनन्त (५) धर्मद्रव्य का गतिमान् जीव पुद्गल के गमन में निमित्तता आदि अनंत (६) अधर्मद्रव्य, गतिमान होकर स्थिति को प्राप्त जीव पुद्गल को निमित्तता आदि अनंत (७) आकाश, सभी द्रव्यों को अवकाश देने में निमित्तता आदि अनंत (८) इसी प्रकार कालद्रव्य द्रव्यों के परिणमन में निमित्तता आदि अनंत।

उपर्युक्त परिभाषा के आधार पर यह बहुत स्पष्ट हो जाता है कि हर एक द्रव्य के उपर्युक्त कहे हुए गुण, अपने-अपने द्रव्यों की पहिचान कराने के लिए कितने उपयोगी हैं। इन गुणों के आधार पर ही हम जगत के छह द्रव्यों के भिन्न-भिन्न अस्तित्व का निश्चय कर सकते हैं।

इसप्रकार समझने पर यह स्पष्ट फलित होता है कि हर एक द्रव्य चाहे वह कोई भी एक जीवद्रव्य हो अथवा एक पुद्गल परमाणु द्रव्य हो सभी अपनी-अपनी अनंत गुण रूपी सम्पदा से भरे हुए हैं एवं अपनी उस सम्पत्ति से भरपूर अनादि अनन्त रह रहे हैं, उन सबमें अपना-अपना अस्तित्वगुण होने से वे अपनी-अपनी गुणरूपी शक्ति के द्वारा स्वतंत्रता से विराजमान हैं, उनकी सत्ता में किसी को भी हस्तक्षेप करने का अधिकार नहीं है, अतः न तो कोई उनका नाश कर सकता है और न कोई उनके किसी भी एक गुण को भी कम-ज्यादा कर सकता है। इस ही माध्यम से सहज ही एक श्रद्धा उदित होती है कि मैं स्वयं भी एक जीवद्रव्य हूँ, अपने अनन्त गुणों से भरापूरा अपनी स्वतंत्र सत्ता से विराजमान हूँ, जगत में कोई भी नहीं है जो मेरी सत्ता में अतिक्रमण करे अथवा बाधा पहुँचावे। इसप्रकार से अपने में अनन्त निर्भयता प्रगट होती है एवं दीनता नष्ट हो जाती है तथा पर में कर्तृत्वबुद्धि का मिथ्या अभिमान भी सहज ही खतम हो जाता है।

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

पर्याय क्या है?

गुणों के परिणमन को पर्याय कहते हैं। जबकि गुणों का समूह जो द्रव्य है, वह द्रव्य जब स्वयं परिणमन करता है अर्थात् पलटता है तो गुणों का परिणमन भी स्वत: हो ही जाता है। इससे फलित होता है कि कभी भी द्रव्य का परिणमन रुक सकता नहीं, अत: पर्याय के बिना द्रव्य भी कभी हो सकता नहीं, ऐसा वस्तु का स्वरूप ही है। इस ही कारण आगम का वचन भी है—"उत्पादव्ययध्रौव्ययुक्तं सत्", "सत्द्रव्य लक्षणं" अर्थात् वस्तु की सत्ता ही तब ही संभव है जबकि वह अर्थात् गुणों का समूहरूप द्रव्य, स्वयं ध्रुवरूप रहकर उत्पाद-व्यय करता रहे अर्थात् पलटता रहे, तब ही उसका अस्तित्व रहना संभव है।

प्रत्यक्ष अनुभव में भी आता है कि बालावस्था, युवावस्था, बृद्धावस्था तीनों अवस्थाएँ पलट कर ही हुई हैं लेकिन जिसको ये अवस्थाएँ हुईं वह तो तीनों समय में ध्रुवरूप वहीं का वहीं रहा। इस ही प्रकार इस आत्मा के एक ज्ञानगुण पर ही विचार करें तो गत् पाँच वर्षों में जो भी जितने भी प्रकार की अच्छी अथवा बुरी जो भी घटनाएँ घटी हों, उन घटनाओं को जब भी याद करें—प्रत्यक्षवत् हो जाती हैं, इस पर से ही सिद्ध हो जाता है कि आत्मा का ज्ञानगुण सब ही अवस्थाओं के काल में ध्रुवरूप से कायम था तब ही तो उन घटनाओं का ज्ञान इस समय आ जाता है और अगर ध्रुवरूप ही रहता और पलटता ही नहीं तो अलग-अलग समय होनेवाली घटनाओं की ज्ञानरूपी अनेकता ज्ञान में कैसे आ सकती थी? अत: स्पष्ट है कि ज्ञानगुण एवं ज्ञानगुण के साथ-साथ अन्य अनंत गुणों का धारी आत्मा स्वयं ध्रुवरूप कायम रहकर हर समय उत्पाद-व्ययरूप परिणमन करता ही रहा है और करता ही रहेगा। ऐसा ही वस्तु का स्वभाव है।

इस विषय पर और भी गंभीरता से विचार करें कि जब हम किसी

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

भी वस्तु को ज्ञान में लेना चाहें तो पर्याय के माध्यम से ही वस्तु ज्ञान में आती है क्योंकि वस्तु का अस्तित्व ही किसी न किसी अवस्था रूप ही होगा। बिना किसी भी अवस्था के वस्तु नहीं रहती और अवस्था वस्तु की ही होती है। इसलिए दोनों अभिन्न और एक ही हैं। वस्तु स्वयं पलटती हुई अपनी अवस्थाओं को बदलती रहती है, उसके उस परिवर्तन के लिए, किसी भी अन्य कोई की भी किसी भी प्रकार की सहायता की आवश्यकता नहीं पड़ती, क्योंकि यह तो वस्तु का स्वभाव ही है कि वह निरपेक्षतया स्वतः ही उत्पाद्, व्यय करते हुए भी ध्रुवरूप हर समय बनी रहे, उस रूप ही उसका अस्तित्व बना हुआ है।

दृष्टान्त के लिए जैसे संसार दशा में मेरा एक जीवद्रव्य ही है, वह देवाकार, तिर्यंचाकार, मनुष्याकार आदि किसी न किसी अवस्था में ही मिलेगा। बिना किसी आकार के भी क्या कभी मिल सकेगा? लेकिन सब आकारों को परिवर्तन करते हुए भी क्या आकारों के नाश हो जाने के साथ-साथ जीवद्रव्य का अस्तित्व भी समाप्त हो जाता है? ऐसा तो देखा नहीं जाता। लेकिन यह जीवद्रव्य जब अपनी मनुष्याकार पर्याय को छोड़कर तिर्यंचाकार पर्याय को प्राप्त करता है तो इस जीव के चिरकाल के साथी ये शरीर रूप रहने वाले पुद्गल परमाणुओं का स्कन्ध उनमें यह जीवद्रव्य कुछ भी परिवर्तन नहीं कर सकता। जीव तो अन्य पर्याय के आकार अपने प्रदेशों को परिवर्तित कर लेता है लेकिन साथ में ही अत्यन्त नजदीक रहने वाले शरीर के किसी एक भी परमाणु को मनुष्याकार परिणमन नहीं करा सकता। अतः गंभीरता से विचारना चाहिए कि इसका क्या कारण है?

इसका कारण मात्र एक ही है कि जो द्रव्य परिणमन करेगा उस ही के उस परिणमन को ही तो पर्याय कहते हैं, अतः जब भी कोई भी द्रव्य परिणमन करेगा तो उसकी सीमा, मर्यादा अपनी स्वयं की पर्याय तक ही तो है, अन्य द्रव्य उसी समय अपनी पर्यायरूप आप परिणमन

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

कर ही रहा है, उसमें दूसरा द्रव्य कैसे हस्तक्षेप कर सकेगा? विश्व के सब ही द्रव्य स्वतः ही अपनी पर्यायों को बेरोक-टोक के निरन्तर करते ही रहते हैं। उनका कार्य कभी भी किसी भी समय रुकता नहीं और पर्याय बिना का द्रव्य हो सकता नहीं, अतः द्रव्य हमेशा पर्याय रूप में ही प्राप्त होता है।

निष्कर्ष यह है कि विश्व में जाति अपेक्षा छह प्रकार के द्रव्य, संख्या अपेक्षा अनंतानंत द्रव्य हैं। उनमें से हर एक द्रव्य अनवरत रूप से जब अपनी-अपनी पर्यायों को करता ही रहता है, तब दूसरा द्रव्य अगर यह माने की मैंने इस द्रव्य की पर्याय को कर दिया अथवा मैं अन्य द्रव्य की पर्याय को कर सकता हूँ तो उसका मानना इसीप्रकार का होगा जैसे कोई अपने पड़ोसी के मकान को अपना मानकर उसमें कुछ भी हेरफेर करने लगे तो उसको अपराधी ही घोषित किया जावेगा—उसी प्रकार अगर यह मेरा जीवद्रव्य, अपने ही शरीर आदि अन्य किसी भी द्रव्य को, अगर अपना मानकर, अपने को उसके फेरफार करने का अधिकारी मानेगा तो उसकी आज्ञा तो उस अन्य द्रव्य पर चलेगी नहीं लेकिन ये जीव अपने को अधिकारी मानने की मिथ्या मान्यता के कारण निरन्तर दुःखी ही दुःखी होता रहेगा, जब तक यह मान्यता नहीं बदलती निरन्तर इस दंड को भोगता ही रहेगा। अतः उपरोक्त मिथ्या मान्यता को छोड़कर वस्तुस्वभाव को पहिचानकर यह स्वीकार करले कि मेरी मर्यादा तो मात्र मेरी स्वयं की पर्याय तक ही है। अन्य द्रव्य की पर्याय में कुछ भी कर सकने की मेरे में ताकत ही नहीं है। परद्रव्य उसके परिणमन का स्वयं स्वामी होने से चाहे जैसे परिणमन करे, मैं उसमें कुछ भी नहीं कर सकता। ऐसी यथार्थ—मान्यता के द्वारा अपने आत्मा में अनन्त आकुलता का नाश होकर शान्ति वर्तने लगती है एवं उपयोग की बाहर के ओर की दौड़ निर्बल होने लगती है। अतः उपरोक्त विपरीत मान्यता यानीं श्रद्धा को बदलने का सर्वोत्कृष्ट लाभ यही है।

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

इस ही स्वतंत्र वस्तुव्यवस्था को, चार अभावों के माध्यम से आगम में विशेष स्पष्ट एवं सिद्ध किया गया है।

चार अभाव के माध्यम से स्वतंत्रता

एक पदार्थ में दूसरे पदार्थ के अस्तित्व के अभाव को, अभाव कहते हैं। वे अभाव चार प्रकार के आगम में कहे गये हैं। प्रागभाव, प्रध्वंसाभाव, अन्योन्याभाव और अत्यन्ताभाव। इसप्रकार इन चार अभावों के माध्यम से वस्तु की एवं उसकी हर एक पर्याय की स्वतंत्रता सिद्ध की गई है।

प्रागभाव:– वर्तमान पर्याय का उसी द्रव्य की पूर्व किसी भी पर्याय में अभाव ही है अर्थात् जो पर्याय वर्तमान में उत्पन्न हुई है उसका अस्तित्व उसी द्रव्य के मात्र वर्तमान में ही है, उससे पहले उस द्रव्य की किसी भी पर्याय में अथवा किसी अन्य द्रव्य में भी किसी भी समय नहीं था। यह सब वर्तमान पर्याय के अस्तित्व की स्वतंत्रता सिद्ध करता है।

प्रध्वंसाभाव:– वर्तमान पर्याय का उसी द्रव्य की आगे होने वाली किसी भी पर्याय में अभाव ही रहेगा, अर्थात् जो पर्याय वर्तमान में उत्पन्न हुई है, उसका अस्तित्व उसी द्रव्य के मात्र वर्तमान में ही है। वर्तमान के बाद आगे भविष्य में किसी भी अपनी पर्याय में अथवा किसी भी अन्य द्रव्य में किसी भी समय नहीं रहेगा यह भी उस वर्तमान पर्याय की स्वतंत्रता को सिद्ध करता है।

अन्योन्याभाव:– एक पुद्गल द्रव्य की वर्तमान पर्याय का दूसरे पुद्गल द्रव्य की पर्याय में अभाव रहने को अन्योन्याभाव कहते हैं अर्थात् एक ही स्कन्ध में अनेक पुद्गल द्रव्य यानी अनेक परमाणु एक साथ रहते हुए भी एक-एक परमाणु की अपनी-अपनी वर्तमान पर्याय का उसी स्कन्ध में रहनेवाले अन्य परमाणु की वर्तमान पर्याय में अभाव ही वर्तता है। यह है हर एक परमाणु की हर एक पर्याय की

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

स्वतंत्रता जैसे एक अधपकी हरी आम की कैरी (आम) है, उस आम के स्कन्ध को हर एक दिन गहराई से देखेंगे तो आपको ज्ञात होगा कि पहले दिन जो परमाणु हरे रूप में थे कालान्तर में उनमें से कुछ परमाणु हरे रूप में ही हैं और कुछ हरे से पीले हो गये हैं, हर समय उसके हर एक परमाणु स्वतंत्रता से अपनी-अपनी पर्याय को कर रहे हैं, साथ ही रहनेवाला अन्य परमाणु भी स्वयं अपनी पर्याय को स्वतंत्रता से अनवरत रूप से करते हुए अपना अस्तित्व बनाए हुए है। इसप्रकार हर एक परमाणु की हर एक पर्याय की स्वतंत्रता सिद्ध होती है।

अत्यन्ताभावः– एक द्रव्य में दूसरे अन्य द्रव्य के अभाव को अत्यन्ताभाव कहते हैं। शाब्दिक अर्थ से भी स्पष्ट है कि अत्यन्त अभाव = अत्यन्ताभाव अर्थात् एक द्रव्य के अस्तित्व का दूसरे द्रव्य के अस्तित्व में अत्यन्त अभाव ही वर्तता है। जब किसी भी द्रव्य का दूसरे में अत्यन्त अभाव ही है तो वह उस द्रव्य में कुछ भी फेर-फार, मदद, असर, प्रेरणा आदि कैसे कर सकेगा? तात्पर्य यह है कि प्रत्येक द्रव्य अपनी-अपनी पर्याय तो कर सकेगा, लेकिन अन्य द्रव्य की किसी भी पर्याय में किंचित्मात्र भी कुछ भी नहीं कर सकता, क्योंकि उन दोनों का आपस में एक का दूसरे में अत्यन्त अभाव है।

चारों अभाव के प्रकरण से हमको शिक्षा प्राप्त होती है और ऐसा श्रद्धान उदित होता है कि मैं एक जीव द्रव्य हूँ, मेरे में, मेरे शरीराकार अनेक पुद्गल परमाणुओं में से एक भी परमाणु का मैं क्या कर सकता हूँ? क्योंकि उनका मेरे में अत्यन्ताभाव है। मेरी मर्यादा कुछ भी करने की अगर है भी तो मात्र मेरी वर्तमान पर्याय तक ही सीमित है, भूतकाल में यह पर्याय थी ही नहीं, क्योंकि प्रागभाव के कारण वर्तमान पर्याय का अस्तित्व मात्र वर्तमान में ही है, भविष्यकाल में भी इस पर्याय का अस्तित्व ही नहीं मिलेगा, क्योंकि पर्याय का जीवनकाल ही मात्र एक समय का है। अतः इसप्रकार सिद्ध है कि आत्मा तो

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

अकर्तास्वभावी ही है। इस द्रव्य का परद्रव्य में अत्यन्ताभाव होने से, तथा अपनी भूत-भविष्य की पर्यायों का वर्तमान में अभाव होने से, यह जीव किसप्रकार और कैसे व किस समय, किसी भी द्रव्य एवं पर्याय में कुछ करे? इससे स्पष्टतया निर्विवाद सिद्ध है कि "मैं तो आत्मा अकर्तास्वभावी ही हूँ"। ऐसा अंतरंग से स्वीकार करने पर, इस जीव की, परद्रव्य में फेर-फार कर सकता हूँ ऐसी अनादिकालीन चली आ रही मिथ्या मान्यता (अभिप्राय) नष्ट होकर, पर के प्रति स्वामित्व एवं कर्तृत्व का अभिप्राय छूट जाने से तत्संबंधी अनंत अभिमान छूटकर तथा पर में कुछ करने-धरने की मान्यता छूट जाने से, पर के प्रति रहने वाला आकर्षण घट जाने से उपयोग, जो आत्मा को छोड़कर परसन्मुख रहकर बाहर ही बाहर घूमता रहता था, उसका पर के प्रति आकर्षण घट जाने से स्वसन्मुख होने का महान पुरुषार्थ प्रगट होता है।

उस परसन्मुखता के कारण होने वाली अनन्त आकुलता क्रम-क्रम से छूटती जाती है और आत्मिक शान्ति प्रगट होती जाती है। यही सच्चा मार्ग है, यही सच्चा उपाय है।

इसप्रकार उपरोक्त चर्चा के माध्यम से हमको यह स्पष्ट हो जाता है कि वस्तु का स्वभाव क्या है; लेकिन अब यह प्रश्न उपस्थित होना स्वाभाविक है कि 'वस्तु के स्वभाव को धर्म क्यों कहा गया है?' अतः हमारे आत्महित के लिए उस पर विचार करना अत्यन्त आवश्यक जानकर उस पर चर्चा की जाती है।

वस्तु के स्वभाव को धर्म क्यों कहा गया है

इस प्रकरण के अन्तर्गत जिस धर्म की चर्चा की जा रही है, वह मात्र आत्मा के धर्म की चर्चा नहीं है, वरन् जिसकी यथार्थ पहिचान एवं निर्णय हुए बिना, आत्मा के धर्म के स्वरूप का भी निर्णय नहीं हो सकता और धर्म का यथार्थ निर्णय हुए बिना आत्मा का धर्म अर्थात् आत्मा की शान्ति प्रगट होना असंभव है, ऐसे वस्तु के धर्म की चर्चा

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

यहाँ की जा रही है।

उस वस्तु के स्वभाव को उस वस्तु का धर्म क्यों कहा गया है, यह हमारी चर्चा का मुख्य विषय है। इस प्रकरण के प्रारंभ में ही कहा गया था कि "वत्थुसहावो धम्मो" अर्थात् वस्तु का स्वभाव ही उस वस्तु का धर्म है। इस ही विषय को समझने के लिए अपन नें वस्तु क्या है, यह समझा एवं वस्तु के स्वभाव क्या हैं, यह भी समझा। अब वस्तु को अपने स्वभाव में ही रहना हर एक वस्तु का अपना-अपना धर्म है इस विषय को समझना है।

यह तो हम समझ ही चुके हैं कि विश्व में वस्तुएँ जाति अपेक्षा छह प्रकार की होने पर भी संख्या अपेक्षा अनंत हैं, उनमें से हर एक वस्तु में अपने-अपने स्वभाव यानी गुण अनन्त-अनन्त हैं, तथा हर एक समय में वस्तु स्वयं कायम रहते हुए, स्वयं पलटती भी रहती है, अर्थात् उस द्रव्य के हर एक गुण परिवर्तित होते रहने से पूर्व अवस्था को छोड़कर नवीन-नवीन अवस्था यानीं पर्याय धारण करते रहते हैं, यह हर एक द्रव्य अर्थात् वस्तु का स्वभाव है।

उस पलटने में ही वस्तु, जैसे उसके स्वयं के स्वभाव हैं उन-उन स्वभावों जैसी ही नवीन-नवीन पर्यायों रूप से पलटना करता रहे अर्थात् उत्पाद करता रहे, उस ही को उस वस्तु का धर्म कहा जाता है। लेकिन उन वस्तुओं में से कोई भी वस्तु अपने-अपने स्वभावरूप अर्थात् अपनी जो स्वयं की क्वालिटी है उस रूप पलटना नहीं करके उसमें जरा भी विपरीत रूप अथवा न्यून रूप नवीन पलटना यानी पर्याय को उत्पाद करे वही उस वस्तु का तथा उस वस्तु के उस स्वभाव का विपरीतपना अर्थात् अधर्म है।

आचार्य अमृतचंद्र ने समयसार गाथा ३ की टीका में लिखा है कि "इसलिए धर्म, अधर्म, आकाश, काल, पुद्गल, जीवद्रव्यस्वरूप लोक में सर्वत्र जो कुछ जितने-जितने पदार्थ हैं वे सब निश्चय से (वास्तव में) एकत्व निश्चय को प्राप्त होने से ही सुन्दरता को पाते हैं। ...

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

टंकोत्कीर्ण की भाँति शाश्वत स्थित रहते हैं।"

उपरोक्त ऊहापोह से यह समझ में आता है कि हर एक वस्तु अपने-अपने स्वभाव के जैसी ही नवीन-नवीन पर्याय करता रहे यही हर एक वस्तु का धर्म यानी स्वभाव है, उस ही में उस वस्तु की शोभा है। यह भी सिद्ध है कि हर एक वस्तु ज्यादा काल तक अपने स्वभावरूप ही रह सकती है लेकिन अपने स्वभाव से विपरीत दशा में ज्यादा काल वस्तु का टिके रहना अर्थात् बने रहना भी संभव नहीं है। इन सब बातों से सिद्ध होता है कि वस्तुओं का अपने-अपने स्वभावरूप बने रहना ही वस्तुओं का अपना-अपना धर्म है।

हमारे प्रत्यक्ष अनुभव से भी सिद्ध है कि जैसे आत्मा के क्षमारूप भाव, निर्मानतारूपभाव,पापाचारीरहितभाव एवं निर्लोभतारूपभाव अनुभव में आते हैं, साथ क्रोधरूपभाव, मानरूपभाव, मायाचारीरूपभाव एवं लोभरूप भाव भी अनुभव में आते हैं। दोनों ही प्रकार के भाव इस आत्मारूपी जीवद्रव्य की ही पर्यायें हैं, क्योंकि दोनों ही प्रकार के भाव बदलते ही रहते हैं इसलिए उनका उत्पाद-व्यय निरन्तर होता ही रहता है। उनमें से उस आत्मा के धर्मरूप भाव कौन-कौन से हैं एवं अधर्मरूप भाव कौन-कौन से हैं और उनको धर्म-अधर्म संज्ञा क्यों दी गई, इस तथ्य को समझना है।

इस संबंध में गम्भीरता से विचार करने पर इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि क्षमा आदि भावों में आत्मा ज्यादा काल ठहर सकता है तथा ठहरना चाहता है इसलिए वे ही आत्मा के स्वाभाविक भाव हैं इसलिए उनको आत्मा का धर्म कहा जाता है। तथा क्रोधादि भावों में ज्यादा काल आत्मा ठहर नहीं सकता एवं ठहरना भी नहीं चाहता इसलिए वे आत्मा के स्वभावभाव नहीं हैं वरन् विभावभाव हैं। इसलिए इस दशा को जीवद्रव्य की विभावदशा कही जाती है। लेकिन दोनों ही एक आत्मद्रव्य की ही पर्यायें हैं, उनमें से स्वाभाविक पर्याय रूप परिणमन करते रहने में ही आत्मा की सुन्दरता है अर्थात् आत्मा को शान्ति की

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

प्राप्ति होती है और विभावदशा में तो आकुलता ही होती है।

उपरोक्त दृष्टान्त के द्वारा यह स्पष्ट हो जाता है कि जिसप्रकार जीव द्रव्य का धर्म, अपने स्वभाव यानीं गुणों के जैसी ही पर्याय उत्पन्न होना है, उसीप्रकार छह द्रव्यों का, संख्या अपेक्षा अनन्त द्रव्यों का धर्म भी अपने स्वभाव जैसी पर्यायें उत्पन्न होते रहना ही है। स्वभाव से विपरीत भाव वाली पर्याय उत्पन्न करना किसी भी द्रव्य का धर्म नहीं है।

इस ही अपेक्षा वस्तु के स्वभाव को धर्म कहा गया है। इससे सिद्ध हुआ कि विश्व की हर एक वस्तु अपनी-अपनी स्वयं की क्वालिटियाँ अर्थात् गुणरूप ही निरन्तर बनी रहें, यही विश्व की सब वस्तुओं का अपना-अपना धर्म है। इस ही से विश्वशान्ति संभव है।

स्वभाव से विपरीत परिणमन करने वाली वस्तुएं कौन?

अब यह समझना है कि विश्व की छह प्रकार की वस्तुओं के धर्म, क्या-क्या हैं। वे वस्तुएँ हैं:– अनन्त जीवद्रव्य, अनंतानंत पुद्‌गल परमाणु, एक धर्मद्रव्य, एक अधर्मद्रव्य, एक आकाश-द्रव्य एवं असंख्यात कालद्रव्य। इनमें से पहले चर्चा कर लें कि इनमें कौन से द्रव्य ऐसे हैं जो अपनी पर्याय अर्थात् पलटना, स्वभावरूप के अतिरिक्त स्वभाव से विपरीत पर्याय का भी उत्पाद कर सकते हैं?

इस संबंध में जिनवाणी में कथन है कि जीवद्रव्य एवं पुद्‌गल द्रव्य के अतिरिक्त अन्य जो चार प्रकार के द्रव्य धर्म, अधर्म, आकाश, काल हैं, वे तो निरन्तर सदाकाल अपने स्वभाव जैसी ही पर्याय का उत्पाद करते रहते हैं, कभी किसी भी काल में इन चारों में से कोई भी द्रव्य कभी स्वभाव से विपरीत पर्याय उत्पन्न नहीं करता। जैसे धर्मद्रव्य हरसमय किसी भी जीव तथा पुद्‌गल को चलने में निमित्त होता है, अधर्मद्रव्य चलकर ठहरने में निमित्त होता है, आकाश हर एक जीव पुद्‌गल को स्थान देने में निमित्त, इसीप्रकार कालद्रव्य कालपरिवर्तन में निमित्त होता है। इनमें कभी किसी भी समय न तो

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

ऐसा हुआ ही और न होगा ही कि इन चारों में से कोई भी अपना काम करना बंद कर दे, अथवा विपरीत उत्पाद करने लगे। इसलिए उपरोक्त चारों द्रव्य =वस्तुएँ तो अनादि अनंत स्वाभाविक उत्पाद ही करती रहती हैं अर्थात् अपने-अपने धर्मरूप ही परिणमन करती रहती हैं।

बाकी रहे जीव एवं पुद्गल द्रव्य, उनमें से पहले पुद्गल द्रव्य के बाबत समझ लें। पुद्गल द्रव्य दो अवस्थाओं में ही हमारे देखने में अर्थात् ज्ञान में आता है। एक तो अणुरूप और एक स्कन्धरूप। अणुरूप अर्थात् अकेली हालत में रहने वाले को ही यथार्थ पुद्गल-द्रव्य कहा गया है। वह ही मूलतः पुद्गल द्रव्य हैं लेकिन वे ही अणुरूप रहने वाले अनेक पुद्गल द्रव्य अकेले रूप न रहकर एकसाथ मिल जाते हैं उस समय के उन मिले हुए पुद्गलों के पिण्ड को स्कन्धरूप पुद्गल कहते हैं। इन दोनों प्रकार की दशाओं में से उस पुद्गल का अणुरूप अकेला रहना वह स्वाभाविक दशा है एवं अणुदशा छोड़कर स्कन्धरूप हो जाना ही पुद्गल-द्रव्य की स्वाभाविक दशा से विपरीत दशा है अर्थात् पुद्गल का अणुरूप रहना ही पुद्गल का धर्म है और स्कन्धरूप दशा ही उसकी अधर्म पर्याय है। इसके अतिरिक्त पुद्गल में रहनेवाले स्पर्श, रस, गंध, वर्ण आदि अनंत गुण कभी विपरीतरूप नहीं होते अर्थात् वे अपने-अपने स्वभाव को छोड़कर अन्य स्वभावरूप कभी नहीं होते। जैसे स्पर्श गुण कभी वर्ण आदि गुणरूप इसीप्रकार वर्णगुण कभी स्पर्श, रस गंध आदि किसी भी गुणरूप नहीं होते वरन् हरएक गुण अपने-अपने गुणों में ही कम-ज्यादा होते हुए निरन्तर उत्पाद-व्यय करते रहते हैं।

इसीप्रकार पुद्गल का स्वभाव अचेतनपना है, अतः इस पुद्गल ने अनादिकाल से कभी अपने अचेतन स्वभाव को छोड़कर चेतनरूप परिणमन नहीं किया, क्योंकि हर एक वस्तु का स्वभाव ही ऐसा है कि वह अपने-अपने स्वभाव में ही परिणमन करती रहती हुई अनादि

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

अनन्त कायम बनी रहती है। यह आगम, अनुमान, अनुभव सभी से पूर्णतया सिद्ध होती है।

जीव नामक वस्तु का स्वभाव

अब इस ही प्रकार जीवद्रव्य के स्वभाव के संबंध में भी समझना है। इसका समझना ही मेरे लिए मूल प्रयोजनभूत विषय है, क्योंकि मैं स्वयं ही जीवद्रव्य हूँ तथा मुझे मेरे लिए ही मेरे में धर्म करना है, अत: यथार्थतया तो मुझे मेरा ही धर्म अर्थात् स्वभाव समझना है।

आत्मा भी एक द्रव्य है, उसमें भी अनंतगुण, स्वभाव, अर्थात् धर्म हैं, लेकिन उन सबमें से ऐसे असाधारण धर्म अर्थात् स्वभाव को पकड़ना चाहिए, जो अकेले जीव में ही तो मिले और अन्य किसी द्रव्य में नहीं मिले एवं उसके बिना जीव कहीं भी कभी भी नहीं रहे, ऐसे ही स्वभाव विशेष को जीव का लक्षण कहा जा सकता है।

''उपयोगो लक्षणम्'' आगम में जीव का लक्षण उपयोग कहा है। ''उपयोगो लक्षणम्'' अर्थात् जीव को पहचानने के लिए जीव का असाधारण लक्षण ''उपयोग'' है। उपयोग अर्थात् ज्ञान का व्यापाररूप प्रवर्तन। तात्पर्य यह है कि आत्मा का ज्ञान एक ऐसा लक्षण है कि वह ज्ञान विश्व के अनन्त द्रव्यों में से मात्र एक आत्मा के अतिरिक्त किसी भी अन्य द्रव्य में नहीं होता तथा वह ज्ञान निरन्तर कार्यशील ही रहता है अर्थात् निरन्तर जानने का कार्य करता ही रहता है, कहीं भी कोई भी काल ऐसा आ ही नहीं सकता जब ज्ञान का कार्य रुक जावे, ज्ञान आत्मा का स्वभाव अर्थात् गुण है, जानना उसकी पर्याय है। कभी कोई भी काल ऐसा आ ही नहीं सकता कि कोई भी द्रव्य-गुण अपना उत्पाद करना रोक दे, इस ही कारण आत्मा भी अपना उत्पाद कैसे रोक सकता है। अत: आत्मा के स्वभाविक परिणमन को ही ''उपयोगो लक्षणम्'' के द्वारा आचार्य महाराज ने जीव को पहचानने का उपाय बताया है।

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

हमारे अनुभव में भी आता है कि आत्मा दु:ख के समय दु:ख को, सुख के समय सुख को, वेदना के समय वेदना को, वेदना मिट जाने पर वेदना मिट जाने को, भूख लगने पर भूख को, क्षुधा मिट जाने पर मिट जाने को, खट्टी को, मीठी को, चरपरी को आदि-आदि; साथ ही अपने ही अन्दर होने वाले क्रोध के समय क्रोध को, मान के समय मान को, माया के समय माया एवं लोभ, हास्य, रति, अरति आदि-आदि; समय-समय पर उत्पन्न होने वाले अनेक प्रकार के भावों को, एवं जिस समय वे कषायें उत्पन्न न हों अथवा होकर शान्त हो जावें उस समय उन शान्त भावों आदि अनन्त प्रकार के स्वाभाविक भावों को भी जानता ही रहता है, वर्तमान में अनेक गुणों की उत्पादरूप प्रगटता ज्ञान की पकड़ में न भी आ रही हो तो भी ऐसे अनन्त स्वभाव, गुण, धर्म आत्मा में हैं, उनके भी अस्तित्व को ज्ञान जान लेता है। इससे सिद्ध हुआ कि आत्मा का ज्ञानरूप रहना ही आत्मा का धर्म है।

ज्ञान के जानने के कार्य की मात्र इतनी ही नहीं, और भी महान विशेषता है कि जो घटना वर्तमान में मौजूद हो ही नहीं और पूर्व में घट चुकी हो उसको भी वर्तमान में वर्तमानवत् जान लेता है तथा जो घटना अभी वर्तमान में घटी ही नहीं है, उसको भी ज्ञान अपने ज्ञान द्वारा जान लेता है। उपरोक्त विशेषताओं के साथ-साथ ज्ञान में ऐसी असाधारण विशेषता है कि ज्ञान में जो कोई घटना ५० वर्ष पहले भी कभी घटी हो तो उसको जब भी याद करो, वह पुरानी हो जाने से कुछ धुंधली नहीं हो जाती, बलिक वर्तमानवत् स्पष्ट ज्ञान में प्रत्यक्ष हो जाती है तथा ५० वर्ष पुरानी घटना होने से उसको ज्ञान में वर्तमान करने के लिए एक सेकेण्ड भी नहीं लगता। ऐसा नहीं है कि ५० वर्ष पुरानी घटना के बाद असंख्य अन्य घटनाएँ घट जाने से वह ५० वर्ष नीचे दबी हुई है, अतः उसे प्रत्यक्ष करने के लिए पीछे की घटनाओं को हटाकर पूर्व की घटना निकालने के लिए समय चाहिए।

इसके साथ ही यह भी विशेषता है कि ५० वर्ष में घटी असंख्य

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

घटनाओं का बोझ तो आत्मा में बढ़ जाना चाहिए। जैसे ५० वर्ष में किसी ने ५०० पुस्तकें पढ़कर उनका ज्ञान प्राप्त किया, वह तो आत्मा में निरन्तर मौजूद है, उनका वजन आत्मा में बढ़ जाना चाहिए, लेकिन उस संबंधी वजन आत्मा में नहीं बढ़ जाता, इससे यह सिद्धान्त निकलता है कि आत्मा का ज्ञान विश्व के समस्त पदार्थों को क्रमशः अथवा एक साथ जानकर अपने ज्ञान के खजाने के स्टोक में रखकर भी कोई वजनी अर्थात् बोझवाला नहीं हो जाता, अत्यन्त निर्भार रहता है। इससे यह भी निष्कर्ष निकला कि आत्मा अमूर्तिक है क्योंकि इतना सब कुछ ज्ञान में रहते हुए भी वजन वाला नहीं होता।

इन सबसे भी ज्यादा ज्ञान में एक और महत्वपूर्ण विशेषता यह है कि जब आत्मा में क्रोधादि कोई भी कषाय उत्पन्न होती है तब उस समय क्रोध आदि की उपस्थिति के काल में ही ज्ञान, उस कषाय की स्थिति, तीव्रता, मन्दता आदि सबको जानते रहने पर भी, उन कषायभावों में एकमेक सा हुआ दीखता हुआ भी, भिन्न रहता हुआ जानने का कार्य करता रहता है, क्योंकि कुछ काल बाद वह कषाय तो शांत हो जाती है, लेकिन कषाय के काल की समस्त घटना सहित क्रोधादि के मंद-तीव्र भावों की समस्त स्थिति का चित्र ज्ञान में वर्तमानवत् उपस्थित हो जाता है, लेकिन उसके साथ-साथ वह कषाय नहीं उत्पन्न होती। इससे सिद्ध होता है कि कषाय उत्पन्न होने के काल में भी (ज्ञान और कषाय एकमेक हो गये जैसा दीखने पर भी) परमार्थतः कषाय से भिन्न रहकर ही ज्ञान जानने का कार्य कर रहा था। इन सब बातों से आत्मा के असाधारण गुण, स्वभाव, धर्म, जो भी कहो, ऐसे एक ज्ञानगुण की अगाध महिमा है।

आगम में उस ज्ञान की एवं उस ज्ञान के धारक भगवान् आत्मा की नहीं कही जा सके—इतनी अपरंपार महिमा गाई है, क्योंकि आत्मा में तो अनन्त गुण हैं, उनमें एक ज्ञानगुण की ही जब इतनी महिमा है, तो अनन्त धर्मों की महिमा एवं उन सबका धारक ऐसा जो आत्मा उसकी

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

कितनी महिमा होनी चाहिए—यह तो हम अनुमान से भी निर्णय कर सकते हैं। **अतः आत्मा का मात्र जानने वाला बने रहना ही आत्मा का धर्म है।**

हमारी यह चर्चा "वत्थु सहावो धम्मो" के अंतर्गत आत्मा एक वस्तु है, उसके धर्म को समझने के लिये चल रही है। मैं स्वयं एक आत्मवस्तु हूँ, अतः मुझे मेरे लिए ही धर्म करना है, अतः मेरे लिए यह समझना ही सबसे अधिक महत्वपूर्ण विषय है।

उपरोक्त ऊहापोह के माध्यम से, आगम के आधार से, तर्क से, एवं अनुभव से भी यह निर्णय में आता है कि **ज्ञान ही आत्मा का असाधारण स्वभाव है**। इस पर से प्रश्न खड़ा होता है, कि इसके समझने मात्र से धर्म कैसे हो गया? धर्म से तो शान्ति अर्थात् निराकुलता रूपी सुख की उत्पत्ति होनी चाहिए, वह इतने समझने मात्र से तो उत्पन्न नहीं हुई। अतः इस संबंध में विस्तृत गवेषणा अत्यन्त आवश्यक है।

ज्ञानस्वभाव के निर्णय से धर्म की उत्पत्ति

उपर्युक्त गवेषणा की मर्यादा तो मात्र इतने तक ही सीमित है कि मेरे निर्णय में ऐसी दृढ़तर श्रद्धा उत्पन्न हो कि इस विश्व में छह जाति के अनन्त द्रव्य हैं उनमें ही मैं भी एक जीवद्रव्य हूँ, अन्य सभी द्रव्यों में अचेतनपना होने से वे न तो अपने आपको जानते हैं और अन्य जगत में कोई और भी हैं, ऐसा भी नहीं जान सकते, क्योंकि उनमें जानने की शक्ति का अभाव है। फिर भी वे सब उन-उन द्रव्यों की अपनी-अपनी क्वालिटियाँ, गुण स्वभाव हैं उनमें ही निरन्तर उत्पाद-व्यय करते हुए, कायम बने रहते हुए, अनादि-अनन्त अपने अस्तित्व को टिकाए हुए—बनाए हुए हैं, कोई आपस में एक-दूसरे के परिणमन में किसी प्रकार का हस्तक्षेप, सहाय, मदद अथवा बाधक

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

रूप नहीं होते वरन् अपना-अपना परिणमन ही करते रहते हैं। इस प्रकार वे सभी द्रव्य अपने-अपने स्वभावों में ही परिणमन करते हुए अनादि अनन्त विश्व की व्यवस्था बनाये हुए हैं। यह ही उन-उन वस्तुओं का निज धर्म है।

इसीप्रकार मैं भी उपरोक्त सभी द्रव्यों से विलक्षण असाधारण चैतन्यस्वभाव अर्थात् स्व और पर को जानने रूप अचिन्त्य सामर्थ्यवान स्वभाव का धारक एक द्रव्य हूँ जगत के किसी भी द्रव्य में जानने की सामर्थ्य नहीं है, अतः वे मेरे अस्तित्व को नहीं जानते, लेकिन मैं जैसा ऊपर वर्णन किया गया–ऐसे अपने अचिन्त्य सामर्थ्यवान् ज्ञान, सुख आदि अनन्त गुणों की महान संपदा सहित अनादि अनन्त जगत के सभी द्रव्यों से महान् सत् रूप से सबको जानता हुआ विराजमान हूँ। उन सबके साथ मेरा सम्बंध कोई है तो मात्र इतना ही पवित्र सम्बंध है कि मैं जैसा वे परिणमन करते हुए विद्यमान हैं उनको मात्र जान लूँ और जब मैं उनको जानूँ तो वे मेरे ज्ञान के ज्ञेय मात्र रहें। इसके अतिरिक्त उनके कार्य में कोई भी प्रकार का हस्तक्षेप, फेरफार अथवा कमी-ज्यादा करने का न मुझे ही, इसीप्रकार न उनको भी कोई प्रकार का अधिकार है, न करते ही हैं और न कर ही सकते हैं। वास्तविक स्थिति यह है कि जगत में अगर जाननेवाला पदार्थ नहीं हो, तो उन द्रव्यों के अस्तित्व की प्रसिद्धि कौन करता, अतः विचार करिये, कीमत करने लायक पदार्थ वह हो सकता है कि जो दूसरे के अस्तित्व को प्रसिद्ध करता है अथवा वह होगा कि अगर उसकी प्रसिद्धि उनको जानने वाला नहीं करे तो जगत् में उसका अस्तित्व ही सिद्ध नहीं हो सके? अर्थात् जिन ज्ञेय पदार्थों को मेरा ज्ञान जानता है वे मेरे लिए कीमत करने योग्य हैं अथवा मैं जो अपने आपके अस्तित्व को जानते हुए भी अन्य पदार्थ अर्थात् ज्ञेयों के अस्तित्व को भी जानता हूँ, वह मेरे लिए कीमत करने योग्य है, आदि-आदि।

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

इसप्रकार उपरोक्त विचारों के माध्यम से, आगम के अभ्यास के आधार से तथा अपने स्वयं के अनुभव में भी उपरोक्त सत्यता प्रमाणित करके श्रद्धा में ऐसी दृढ़ता, विश्वास एवं निर्णय उत्पन्न हो कि जगत में "मैं" ही एक मेरे लिए उत्कृष्ट महिमावान् पदार्थ हूँ, मेरे ज्ञान के जानने में आते हुए जितने भी ज्ञेय हैं, वे मेरे से भिन्न रहकर अपने आपके ही गुणपर्यायों में अनेक प्रकार के वेष बदलते हुए परिणम रहे हैं, उनकी भी प्रसिद्धि करने वाला मेरा ज्ञान ही तो है, अतः वे कैसे भी वेष धारण करते हुए मेरे ज्ञान के सन्मुख उपस्थित हों, मेरे ज्ञान को जरा भी विचलित नहीं कर सकते, इसप्रकार की दृढ़ श्रद्धा उत्पन्न होने से जगत् के समस्त ज्ञेयों के प्रति, वे कोई भी हों, कैसे भी हों, कहीं भी हों, अत्यन्त उपेक्षा वर्तने लगती है, उनके प्रति उत्साह की निवृत्ति खड़ी होती है, कर्तृत्वबुद्धि का अभिप्राय टूटने लगता है, फलस्वरूप तत्सम्बंधी आकुलता खड़ी होने का अवकाश ही नहीं रहता, अतः परिणति में अत्यन्त शान्ति वर्तने लगती है, इस ही का नाम आत्मिक सुख है, यही सुख बढ़ते-बढ़ते पूर्ण सुखरूप परिणमित हो जाता है। यही आत्मा का परमस्वभाव रूप धर्म है। लेकिन जब यह आत्मा अपने जानने रूप स्वभाव का विश्वास भूलकर जो ज्ञेय ज्ञान के जानने में आते हैं, उनके कार्यों का अपने-आपको कर्ता मानने लगता है इस गलत मान्यता के कारण, वे ज्ञेय इसके अनुकूल नहीं परिणमते तब आकुलता स्वयं उत्पन्न कर लेता है और दुखी होता रहता है क्योंकि वे अन्य द्रव्य, तो स्वतंत्र हैं, इसके आधीन हैं नहीं, अतः अपनी उल्टी मान्यता से दुःखी होता रहता है। निष्कर्ष यह है कि आत्मा तो सुखी ही है, उसका स्वभाव दुःखी रहने का है ही नहीं, अतः सुख कहीं से लाना नहीं है, प्राप्त करना नहीं है, बल्कि अपनी गलत मान्यता बदलकर अर्थात् पर का कर्ता, भोक्ता न मानकर, मात्र ज्ञाता मानता रहे ताकि दुःख का उत्पन्न होना ही बंद हो जावे तो आत्मा तो सुखी ही है।

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

स्वचतुष्टय में परचतुष्टयकी नास्ति

उपरोक्त विषय में हर-एक द्रव्य की हर-एक पर्याय की स्वतंत्रता एवं स्वतंत्र कार्यक्षमता को भी समझना आवश्यक है, अतः स्वचतुष्टय से परचतुष्टय की भिन्नता को भी गंभीरतापूर्वक समझना चाहिए। हर एक द्रव्य यानी वस्तु का स्वभाव ही ऐसा है कि हर-एक वस्तु स्वद्रव्य, स्वक्षेत्र, स्वकाल, स्वभाव में ही निरन्तर परिणमन करती रहती है, अपने स्वचतुष्टय को छोड़कर परद्रव्य के द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव में कभी भी किसी भी प्रकार से पहुँचती ही नहीं है, तब फिर परिणमन तो कर ही कैसे सकती है?

स्वचतुष्टय अर्थात् हर-एक द्रव्य स्वतंत्र सत्तावान् पदार्थ अलग-अलग है। वह अपने ही प्रदेशों रूप स्वक्षेत्र में रहता है। उसका स्वयं का उत्पाद स्वयं में हर समय होता रहता है अतः स्वकाल में ही होता है यह तो स्पष्ट ही है कि हर-एक द्रव्य का भाव तो हर-एक द्रव्य का अपना-अपना होता ही है। जैसे आत्मा के सबसे नजदीक और सदा साथ रहने वाले इस शरीर के स्वचतुष्टय, आत्मा के स्वचतुष्टय से अत्यन्त भिन्न होने से दोनों अपने-अपने में निरंतर परिणमन करते हुए अनुभव में आते हैं। उस शरीर में तक़लीफ होने पर आत्मा अपने स्वक्षेत्र में रहते हुए अपनी ही पर्याय में उस तकलीफ को दूर करने सम्बन्धी भाव करता रहता है, लेकिन उन भावों आदि का शरीर की तकलीफ पर किंचित् मात्र भी असर नहीं होता, क्योंकि शरीर रूपी द्रव्य अपने स्वक्षेत्र में रहकर अपनी-अपनी पर्यायों को अपने-अपने भावों अर्थात् क्वालिटियों के रूप में परिणमन करते रहते हैं, वे आत्मा के भावों की किंचित् मात्र भी अपेक्षा नहीं करते। इससे एक महान सिद्धान्त समझ में आता है कि हर एक द्रव्य की हर समय की पर्याय के, दूसरे द्रव्य की हर एक पर्याय के अपने-अपने स्वचतुष्टय ही भिन्न हैं, द्रव्य भिन्न, क्षेत्र भिन्न, काल

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

भिन्न, भाव भिन्न होने से वे किसी में कर भी कैसे सकते हैं? तब यह मेरी मान्यता, कि मैं परद्रव्य की किसी भी पर्याय में कुछ कर सकता हूँ यह किंचित् मात्र भी संभव नहीं होने से, एकदम मिथ्या सिद्ध होती है और यह मान्यता ही एकमात्र आकुलता को उत्पन्न करनेवाली मूलभूत कारण है। अतः जिसको सुखशान्ति चाहिए उसको यह सिद्धान्त समझकर यह उल्टी मान्यता छोड़ देनी चाहिए।

इस ही प्रकार जीवद्रव्य के भी जितने भी गुण हैं उनमें ज्ञानगुण भी स्वद्रव्य-क्षेत्र-काल-भाव को छोड़कर अन्य द्रव्य जो कि ज्ञेय मात्र हैं उनको जानने के लिए उन ज्ञेय द्रव्यों तक तो जा नहीं सकता, लेकिन फिर भी परंचतुष्टय में स्थित उन ज्ञेय रूप परवस्तुओं को अपने स्वचतुष्टय में रहकर मात्र जान लेता है, यह एक अद्‌भुत सामर्थ्य है।

ज्ञानगुण की अचिंत्य महिमा की बात तो पहले की जा चुकी है, लेकिन यहाँ तो हर एक समय उत्पन्न होनेवाली एक समय मात्र की मर्यादा वाली एक पर्याय की चर्चा की जा रही है। जैसा कि ऊपर कहा जा चुका है कि ज्ञानी, अज्ञानी, अल्पज्ञानी, बहुज्ञानी, सम्पूर्ण ज्ञानी कोई भी हो, सब ही अपने-आपको जाने बिना अकेले पर को जानते ही नहीं हैं। यथा, मुझे क्रोध आया तो इसमें अपने आपको जाने बिना अकेले क्रोध का ज्ञान नहीं हुआ, तब फिर अन्य ज्ञेयों की तो बात ही क्या? आत्मा के ज्ञान गुण की पर्याय स्वचतुष्टय में रहकर स्वचतुष्टय में ही तो कार्य करेगी। ज्ञेय जो कि पर हैं वे अपने-अपने स्वचतुष्टय में हैं, उनका भी ज्ञान इस पर्याय को स्वचतुष्टय में रहते हुए होता है।

ज्ञान पर्याय स्व-पर प्रकाशक कही जाती है, वह कैसे?

जैसा कि ऊपर कहा जा चुका है कि ज्ञान की पर्याय का स्वभाव ही ऐसा अद्‌भुत है कि वह जब-जब जानने का कार्य करती है, एक साथ ही स्व और पर दोनों को जानती हुई ही प्रगट होती है, न अकेले स्व को

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

और न अकेले पर को ही जानती है। अतः यह पर्याय की स्वसामर्थ्य है कि उसको एक ही समय स्व और पर दोनों का एक ही साथ ज्ञान होता है।

जैसे दर्पण में प्रकाशित होने वाले अन्य पदार्थों का दिखना सहज स्वाभाविक ही होता है। वे दिखने में आये बिना नहीं रहते, क्योंकि दर्पण का स्वभाव ही ऐसा है कि वह अकेला अपने आपको दिखा ही नहीं सकता। देखनेवाला दर्पण को ही देखना चाहे तो भी पर का भी दर्शन तो वहाँ विद्यमान रहता ही है, अतः दर्पण को देखने वाले को दर्पण के साथ-साथ पर ज्ञेयों का भी दर्शन हुए बिना रह ही नहीं सकता। यह तो देखने वाले की इच्छा है कि वह दर्पण को मुख्य बनाकर दर्पण को देखे अथवा उसमें दिखने वाले अन्य पदार्थों को मुख्य करके उन पदार्थों को देखे; लेकिन दर्पण में तो दोनों का एक साथ ही प्रकाशितपना है। इसीप्रकार आत्मा के ज्ञानगुण की हर एक पर्याय में दर्पण के समान एक साथ ही स्व और पर, दोनों ज्ञेय रूप से विद्यमान है। लेकिन जब यह आत्मा अपनी उस ज्ञान गुण की पर्याय के द्वारा अपने आपको जानता है तब, उसमें तो स्व और पर एक साथ विद्यमान होने पर भी यह आत्मा अपनी रुचि के अनुसार जिसको मुख्य करता है वह ही उसको जानने में आते हुए दिखने लगते हैं और अन्य का अस्तित्व ही नहींवत् हो जाता है, दर्पण के समान।

उपरोक्त चर्चा "वत्थुसहावो धम्मो" विषय के अन्तर्गत जीवद्रव्य का स्वभाव क्या है—इस विषय के स्पष्टीकरण पर चल रही है। अतः जीव द्रव्य का स्वभाव ज्ञान की मुख्यता से उपरोक्त प्रकार से मात्र जानने का ही है, उस जानने की प्रक्रिया भी ऊपर कहे अनुसार स्व को जानते हुए पर का ज्ञान भी हो जाने की है। ऐसे स्वभाव में ही आत्मा का बने रहना वह ही जीवद्रव्य कहो या आत्मा कहो, उसका धर्म है।

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

यही "वत्थु सहावो धम्मो" विषय के माध्यम से आत्मा का धर्म समझने का अभिप्राय है।

आत्मा के धर्म की प्रगटता

उपरोक्त विषय को इसप्रकार समझ लेने पर आत्मा का धर्म अर्थात् आत्मा को शांति की प्राप्ति कैसे होती है—यह तो "धर्म प्राप्त करने के मार्ग" शीर्षक के अन्तर्गत् आगे विशद्‌रूप से स्पष्ट करेंगे। यहाँ तो मात्र इतना ही संकेत पूर्वक समझ लेना चाहिए कि उपरोक्त आत्मस्वभाव को समझकर, आत्मा के जानने की प्रक्रिया को समझकर, तथा ऐसा समझकर कि आत्मा तो मुख्यतया स्व को ही जानता है, पर पदार्थ जो ज्ञेयरूप से आत्मा के ज्ञान में ज्ञात हो रहे हैं वे तो पर हैं, वे अपने-अपने स्वचतुष्टय में परिणमन कर रहे हैं, वे मेरे ज्ञान में ज्ञेय रूप से आते हुए भी उनसे मेरा किंचित् मात्र भी कोई प्रकार का सम्बन्ध नहीं है, वे मेरे ज्ञान में आते हुए भी मेरे लिए उपेक्षणीय है। ऐसी श्रद्धा विश्वास उत्पन्न हो जाने पर रुचि का वेग पर से हटकर स्व की ओर होने के कारण, आत्मा के जानने की प्रक्रिया में भी एक मात्र स्व ही मुख्य हो जाने पर तथा ज्ञेय उपेक्षणीय हो जाने के कारण आकुलता उत्पन्न होने का कोई कारण ही नहीं रहा। अतः आत्मा को निराकुल होने का अर्थात् सुखी होने का एकमात्र यह ही मार्ग होने से यह ही आत्मा का धर्म है अर्थात् शांति प्राप्त करने का मार्ग है।

इसप्रकार "वत्थु सहावो धम्मो" के माध्यम से भी आत्मा को धर्म प्राप्त करने का यही यथार्थ मार्ग है—ऐसा निर्णय में आता है, विश्वास में जमता है, इससे ही सम्यक् श्रद्धा उत्पन्न होती है, यही सम्यग्दर्शन रूप धर्म है।

ज्ञान का स्वभाव ही स्व के साथ पर को भी जानना है

उपरोक्त चर्चा से एक प्रश्न खड़ा होता है कि आत्मा एक ही साथ स्व और पर दोनों का ज्ञायक कैसे हो सकता है? प्रश्न सचमुच

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

महत्वपूर्ण है, क्योंकि ज्ञान की जानने की प्रक्रिया को समझे बिना श्रद्धान में निःशंकता कैसे आ सकती है, अतः उसका समाधान निम्न प्रकार है :–

गम्भीरतया विचार करने पर हम संसारी, अज्ञानी, अल्पज्ञ, छदमस्थ जीवों को भी यह स्पष्टतया ख्याल में आ सकता है कि हमारा अल्पज्ञान भी सामान्यतया कभी भी अकेले पर को जानता हो–ऐसा नहीं है, प्रथम मुझे भी मेरा स्वयं का अस्तित्व ख्याल में आकर ही पर के अस्तित्व की प्रसिद्धि ज्ञान में आती है। जैसे जब-जब भी क्रोध की उत्पत्ति होती है तो मेरी भाषा इसप्रकार की निकलती है कि "मुझे क्रोध आ रहा है" इस पर से आप विचार करें कि मेरे ज्ञान की उस समय की पर्याय में क्रोध की जानकारी उपस्थित हुई, उसके पहले ही अपने अस्तित्व की जानकारी भी प्रस्तुत हो गई या नहीं? क्योंकि यह भाषा ही कि "मुझे क्रोध आ गया" इस बात को सिद्ध करती है कि क्रोध किसको आया, तो ज्ञान जान लेता है कि मुझको आया, अतः ज्ञान ने क्रोध के साथ-साथ उस समय ही अपने अस्तित्व का ज्ञान भी कर ही लिया। इस ही प्रकार किसी भी विषय को लेकर विचार करें तो हमको स्पष्टतया प्रतीति में आवेगा कि कभी भी किसी भी प्रसंग में मेरा ज्ञान पर के ज्ञान के साथ-साथ अव्यक्तपने स्व का ज्ञान भी करता ही है, ऐसा एक भी दृष्टान्त उपस्थित नहीं होगा, जिसमें मेरे को मेरे अस्तित्व का ज्ञान हुए बिना, अकेले पर का ही ज्ञान आता हो, इससे निश्चित होता है कि ज्ञान का स्वभाव ही ऐसा है कि जब-जब भी जानने की प्रक्रिया होती है, ज्ञान स्व और पर को एक साथ ही जानता हुआ उत्पन्न होता है, क्योंकि यह उस ज्ञानगुण का स्वभाव ही है, इस ही बात को समयसार गाथा १७-१८ की टीका में आचार्य श्री अमृतचन्द्रदेव ने भी कहा है कि "अनुभूतिस्वरूप भगवान आत्मा आबाल-वृद्ध सबके अनुभव में सदा ही, स्वयं ही आने पर भी" आदि-आदि। अतः ज्ञानी, अज्ञानी, अल्पज्ञानी, विशेषज्ञानी, सबका

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

ज्ञान सामान्यतया स्व-पर को जानता हुआ ही उत्पन्न होता है। अन्तर इतना ही है कि अज्ञानी ज्ञेयलुब्ध प्राणी स्व को भूलकर परज्ञेय जो ज्ञान में आते हैं उनको ही मुख्य करके उनको ही जानने वाला अपने का मानता चला आ रहा है तथा उन ही को मुख्य करके उनमें अपनी कल्पना से इष्टपना-अनिष्टपना मानकर इष्ट को रखने के लिए तथा जिसको अनिष्ट मानता है उसको दूर करने के लिए निरन्तर अपने आपको चेष्टित कर उनके प्रति रागद्वेष करके अपने उपयोग में तीव्र दौड़ लगा-लगाकर स्वयं दु:खी होता रहता है क्योंकि वे ज्ञेय तो इसके आधीन हैं नहीं जो इसकी इच्छा के अनुसार रहें या दूर हों अत: आकुलतारूपी दु:ख का वेदन ही निरन्तर करता रहता है। इसके विपरीत ज्ञानी पुरुष को स्व का अस्तित्व ही मुख्य बना रहने के कारण अज्ञानी के समान आकुलता नहीं होती, क्योंकि परद्रव्यों के परिणमन स्वतंत्र ही निरन्तर अपने-अपने कारण से होते ही रहते हैं, न तो उनका परिणमन किसी पर की अपेक्षा लेकर हो रहा है और न हो ही सकता है, उनके साथ मेरा तो मात्र परज्ञेय के रूप में उपेक्षित रूप से जान लेने के अतिरिक्त कोई प्रकार का सम्बन्ध ही नहीं है, ऐसी दृढ़तर श्रद्धा, विश्वास, मान्यता जो भी कहो—निरन्तर वर्तने के कारण, उन ज्ञेयों के प्रति इष्ट-अनिष्ट मान्यता रूपी झूठी कल्पना ही उत्पन्न नहीं होती फलस्वरूप तत्संबंधी अज्ञानी के जैसी आकुलता भी नहीं वर्तती, अत: वह निराकुलता रूपी सुख का अपनी-अपनी भूमिका के अनुसार निरन्तर वेदन करता रहता है। अत: संसार दशा में भी सुखी रहता है। इसी विषय को समयसार ग्रंथ की गाथा १७-१८ की टीका में आचार्य अमृतचन्द्र देव ने निम्नप्रकार से समर्थन किया है :—

"परन्तु जब ऐसा अनुभूति स्वरूप भगवान आत्मा आबाल-वृद्ध सबके अनुभव में सदा स्वयं ही आने पर भी अनादि बन्ध के वश परद्रव्यों के साथ एकत्व के निश्चय से मूढ़ अज्ञानी जन को 'जो यह

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

अनुभूति (ज्ञान) है वही मैं हूँ' ऐसा आत्मज्ञान उदित नहीं होता" आदि-आदि।

अतः निर्णय में आता है कि सभी आत्माओं का स्वभाव ही जानना है और ज्ञान का स्वभाव स्वपरप्रकाशक होने के कारण, स्व को जानते हुए परको भी एकसाथ जानता ही है। अतः मेरी आत्मवस्तु का स्वभाव भी स्वपर का ज्ञायक है। यही वत्थु सहावो धम्मो के माध्यम से हमको समझना है कि मेरे आत्मा का धर्म अर्थात् स्वभाव तो मात्र ज्ञायक ही है, कर्ता-भोक्ता नहीं है।

उपरोक्त चर्चा हमारे मूल विषय "धर्म समझने की प्रक्रिया" की तीसरे बिन्दु "धर्म का स्वरूप क्या है" के अन्तर्गत् "वत्थु सहावो धम्मो के माध्यम से" जीव नामक वस्तु अर्थात् मेरी आत्मा का स्वभाव क्या है" इस विषय पर चर्चा चली और यह समझ में आया कि अगर मेरा आत्मा अपने स्वभाव रूप ही परिणमन करता रहे, बना रहे, अर्थात् अरहंत के समान परज्ञेयरूप सारे जगत से उपेक्षित रहकर मात्र स्वज्ञेय को मुख्य बनाकर स्वज्ञेय का ज्ञाता बना रहे तो आकुलता अर्थात् रागद्वेष की उत्पत्ति का अवकाश ही नहीं रहने के कारण परम निराकुल रूपी सुखामृत का स्वादी अनन्त काल तक रह सकता है।

"वत्थुसहावो धम्मो" विषय का उपसंहार

धर्म का स्वरूप समझने के अन्तर्गत "वत्थु सहावो धम्मो" के माध्यम से हमने समझा कि–

(१) जगत में वस्तुएँ जाति अपेक्षा छह होने पर भी संख्या में अनन्त हैं, उन सबमें से मैं भी तो उन अनन्त में से ही शरीरादि सबसे अलग अकेला जीवद्रव्य हूँ।

(२) सत् वस्तु का स्वभाव है, यथा "सत् द्रव्य लक्षणम् उत्पाद व्यय धौव्य युक्तं सत्" अर्थात् हर एक वस्तु सत्स्वभावी होने से, अपने

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

आपके स्वभाव से सदा शाश्वत बनी रहती है और वह सदा नित्य बनी रहने पर भी हर समय अपने आप से ही अपनी अवस्थाएँ पलटती हुई अनन्त काल तक सत्ता में बनी रहती हैं।

(३) "गुणपर्ययवद्द्रव्यं" सूत्र के सिद्धान्तानुसार हर एक द्रव्य की स्वयं की अपनी-अपनी क्वालिटियाँ, शक्तियाँ, योग्यताएँ, गुण होते हैं, तथा वे द्रव्य (वस्तुएँ) अपनी-अपनी गुण, क्वालिटी, शक्तियों में ही निरन्तर पलटन करते ही रहते हैं, जिस पलटन को पर्याय कहते हैं। अतः वस्तु गुणपर्यायवान् ही होती है।

(४) उपरोक्त सिद्धान्तों से निष्कर्ष निकलता है कि विश्व का हर एक द्रव्य अपने-अपने स्वयं के गुणों में ही निरन्तर, बिना किसी अन्य की सहायता के, अपनी-अपनी पूर्व अवस्थाओं को छोड़ती हुई नवीन-नवीन अवस्था अर्थात् पर्यायरूप उत्पन्न होती ही रहती है। ऐसा कोई भी समय नहीं आता कि कोई भी द्रव्य किसी भी समय अपना उपरोक्त क्रम छोड़ देवे अर्थात् अपनी-अपनी पूर्व अवस्था को बदलकर नवीन-नवीन अवस्था रूप उत्पन्न होना बन्द कर दे अथवा एक समय मात्र को भी रुक जावे। तात्पर्य यह है कि मैं भी अनन्त द्रव्यों में ही एक जीवद्रव्य हूँ, मैं स्वयं अपने अनंत गुणों से परिपूर्ण हूँ, साथ ही अपने गुणों की हर समय पूर्व अवस्था छोड़कर बिना किसी अन्य की सहायता, मदद के नवीन-नवीन अवस्थाओं को निरन्तर करता हुआ ही अनादि से अभी तक विद्यमान हूँ एवं अनन्त काल तक भी अपने-अपने गुणों में परिवर्तन करते हुए ही विद्यमान रहूँगा, मेरे इन परिवर्तनों में अन्य द्रव्य की सहायता की कोई अपेक्षा नहीं है क्योंकि अन्य द्रव्य भी तो अपने-अपने गुणों में ही परिणमन कर रहा है, वह अपना परिणमन भी तो किसी समय भी रोक नहीं सकता, अतः वह मेरे परिणमन में सहायता कर भी कैसे सकता है। इसप्रकार सभी द्रव्य अपने-अपने गुण पर्यायों में ही परिणमन करते हुए अनादि अनन्त कायम बने रहते हैं। इसी सिद्धान्त को भगवान

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

अमृतचन्द्राचार्य ने समयसार गाथा ३ की टीका में समर्थन किया है। (५) उपरोक्त सिद्धांत की चार अभावों के माध्यम से आचार्यों ने दृढ़ता के साथ सम्पुष्टि की है कि (i)किसी भी एक द्रव्य का दूसरे द्रव्य में "अत्यन्ताभाव' है, अतः जिसका जिसमें अभाव ही हो वह उसमें कैसे क्या कर सकेगा। (ii)पुद्गल द्रव्य के किसी भी स्कंध में हर एक परमाणु का दूसरे सजातीय परमाणुओं में अत्यंताभाव होते हुए भी एक क्षेत्रावगाह जुड़े होने से "अन्योन्याभाव" है। (iii)किसी भी द्रव्य की वर्तमान पर्याय का उस ही द्रव्य की पूर्व समयवर्ती किसी भी पर्याय में अभाव है उसे "प्राग्भाव" कहा गया है। (IV) हर एक द्रव्य की वर्तमान पर्याय का उस ही द्रव्य की भविष्य में होनेवाली पर्याय में अभाव ही रहेगा उसको "प्रध्वंसाभाव" कहा गया है। (V)इसप्रकार हर एक द्रव्य की हर एक समय होने वाली अवस्था (पर्याय) बिना किसी की सहायता के स्वतंत्रता से हर समय उत्पाद-व्यय करती ही रहती है। जब एक द्रव्य की वर्तमान पर्याय में दूसरे द्रव्य का अथवा पर्याय का अभाव ही है तब वह द्रव्य अथवा पर्याय उस अन्य द्रव्य के परिवर्तन में कैसे, क्यों और किसप्रकार मदद कर सकेगा—ऐसी शंका उपस्थित होने का अवकाश कहाँ रहता है? (VI)उपरोक्त स्थिति में हर एक वस्तु अपने-अपने स्वभावों, गुणों में ही निरन्तर परिणमन कर सकती है और करती ही रहती है, इसी को आचार्य महाराज ने "वत्थु सहावो धम्मो" के द्वारा कहा है कि हर एक वस्तु अपने स्वभाव रूप परिणमन करें वही हर एक वस्तु का धर्म है। (VII)उपरोक्त सिद्धान्त के अनुसार जीव नामक आत्मा भी एक वस्तु है, अतः उसका भी धर्म उसके स्वभाव रूप परिणमन करना ही है। आत्मा का स्वभाव ज्ञान है अतः आत्मा का जाननरूप परिणमन होना ही उसका धर्म है। विभावरूप अर्थात् रागादिरूप परिणमन उसका धर्म नहीं अधर्म है, अतः वत्थु सहावो धम्मो के माध्यम से यह सिद्ध हुआ कि आत्मा का तो मात्र जानना ही धर्म है। जिस धर्म की पूर्ण

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

प्रगटता अरहंत भगवान में प्रगट है, वे सकल वस्तु के ज्ञाता होने पर भी किसी में भी कुछ भी करते नहीं हैं, मात्र ज्ञायक ही है।

परतंत्रता द्योतक कथन एवं स्पष्टीकरण

उपरोक्त विवेचन से उठनेवाले प्रश्न निम्न हो सकते हैं :-

(१) सर्वप्रथम तो यह महत्वपूर्ण शंका उपस्थित होती है कि उपरोक्त कथन के अनुसार यह सिद्ध हुआ कि "कोई भी द्रव्य अथवा उस द्रव्य की पर्याय अन्य द्रव्य या उस अन्य की पर्याय में कुछ कर ही नहीं सकती" लेकिन वर्तमान जगत में तो हमको प्रत्यक्ष इससे विरुद्ध ही दिखता है एवं विरुद्ध ही अनुभव में आता है। कोई भी कार्य बिना किसी दूसरे की सहायता के होता हो—ऐसा दिखता ही नहीं है। जैसे किसी ने गाली दी तो क्रोध होता है, कोई तारीफ कर देता है तो मान कषाय हो जाती है, लेकिन कोई प्रसंग उत्पन्न हुए बिना तो कषाय होती ही नहीं देखी जाती, इसीप्रकार पानी शीतल होने पर भी अग्नि लगने पर गरम होता है, आदि-आदि अनेकों ऐसे दृष्टान्त उपस्थित हो रहे हैं जिनके द्वारा ऐसा ही लगता है कि कोई भी द्रव्य का कार्य बिना दूसरे द्रव्य की सहायता के होता हो—ऐसा दिखता ही नहीं है।

(२) दूसरी यह भी शंका खड़ी होती है कि उपरोक्त कथन के अनुसार "हरएक द्रव्य का धर्म, अपने स्वभाव के अनुरूप ही परिणमन करना अर्थात् पर्याय उत्पन्न करना है" लेकिन जीव और पुद्गल दोनों ही अपने स्वभाव रूप परिणमन नहीं करके विपरीतभाव (विभावभाव) रूप परिणमन क्यों करते हैं।

यथार्थ वस्तुस्थिति को समझने के लिए उपरोक्त शंकाएँ अत्यन्त महत्वपूर्ण, यथास्थान एवं आवश्यक हैं, इनके स्पष्टीकरण हुए बिना वस्तु-स्वतंत्रता के सिद्धान्त को कैसे स्वीकार किया जा सकता है? अतः उपरोक्त शंकाओं का समाधान विस्तारपूर्वक नीचे माफिक समझना चाहिए।

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

वस्तु का परिणमन स्वतंत्र होने पर भी परतंत्रता कैसे?

जबकि हर एक द्रव्य के परिणमन स्वतंत्र हैं तो हरएक द्रव्य का कार्य परद्रव्य की सहायता के बिना होता हुआ दिखाई नहीं देता, इसका कारण क्या?

उपर्युक्त विषय समझने के पूर्व गम्भीरतापूर्वक इस विश्वास को सामने रखना आवश्यक है कि वस्तु का परिणमन कभी भी कहीं भी किसी भी हालत में परतंत्र तो हो ही नहीं सकता, इसी दृढ़तम श्रद्धा के साथ समाधान ढूँढ़ना चाहिए।

उपर्युक्त विषय में गम्भीरता से विचारने पर अनुभव में भी आता है कि कोई गाली देवे लेकिन मैं क्रोध करूँ या नहीं करूँ अथवा कम करूँ या ज्यादा करूँ, ऐसी स्वतंत्रता है या नहीं? इसीप्रकार किसी ने मेरी तारीफ कर दी तो मैं मान के भाव करूँ अथवा नहीं करूँ ऐसी स्वतंत्रता है या नहीं? इसीप्रकार पैसा-धन आदि कम होने पर भी अथवा ज्यादा होने पर भी क्या सभी को लोभ के भाव एक सरीखे ही आते हैं अथवा हर एक के भावों में अन्तर दीख रहा है? इसप्रकार अनुभव में आता है कि बाहर के कारण एक सरीखे मिलने पर भी सभी व्यक्तियों के एक सरीखे भाव तो नहीं होते, मुनिराज को तो किंचित् भी विकृति नहीं होती। अतः यह विश्वास में आता है कि हर एक व्यक्ति स्वतंत्रतापूर्वक अपने-अपने भाव करता है। लेकिन इतना स्पष्टतया दीखने पर भी हमको ऐसा क्यों लगता है कि बाहर के संयोग के कारण हमारे भाव बिगड़ जाते हैं। यह गंभीर मूल समस्या है जिसको हमको विस्तार से समझना है।

स्वतंत्र होने पर भी परतंत्र दिखने का कारण क्या?

उपर्युक्त विषय को समझने के पूर्व, ऊपर कही गई वस्तुव्यवस्था अर्थात् वस्तुस्वातंत्र्य व्यवस्था को समझकर विश्वास में लाकर फिर छह द्रव्यों के समुदाय रूप विश्व की व्यवस्था को समझना चाहिए।

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

प्रश्न खड़ा होता है, कि वस्तु व्यवस्था और विश्वव्यवस्था में क्या अन्तर है? उत्तर है कि बहुत बड़ा अन्तर है।

वस्तुव्यवस्था एवं विश्वव्यवस्था

जगत अर्थात् विश्व में छहप्रकार की वस्तुएँ हैं, उन छहों प्रकार की वस्तुओं की संख्या अपेक्षा अनन्त वस्तुओं के समुदाय का नाम ही विश्व है। उनमें से हरएक वस्तु की व्यवस्था क्या है उसको समझना, तथा छहों द्रव्यों (वस्तुओं) के समुदायस्वरूप विश्व की व्यवस्था क्या है, उसको समझना विश्वव्यवस्था को समझना है।

उपर्युक्त कथन को आचार्यों ने आगम एवं अध्यात्म के नाम से समझाया है। उसमें जीवद्रव्य एक वस्तु है, उसकी स्वयं एक की ही व्यवस्था को अध्यात्मकथन कहा जाता है, तथा जीव के अतिरिक्त सभी द्रव्यों की वस्तुव्यवस्था एवं विश्वव्यवस्था को बतानेवाला कथन आगम कहा जाता है।

उपर्युक्त दोनों विषयों में से सभी द्रव्यों की वस्तुव्यवस्था के संबंध में तो विस्तारपूर्वक ऊपर वर्णन आ ही चुका है और उसके माध्यम से हम समझ चुके हैं कि हर वस्तु अपने स्वभावरूप ही निरन्तर निर्बाधरूप से परिणमन करती ही रहती है, यह ही हर एक वस्तु की व्यवस्था है, क्योंकि कोई भी वस्तु अगर किसी भी वस्तु में हस्तक्षेप करने लगे तो अन्य वस्तु भी हस्तक्षेप करके उस हस्तक्षेप करनेवाली वस्तु के हस्तक्षेप को रोक भी सकती है, इसप्रकार हरएक वस्तु को हस्तक्षेप करने की सामर्थ्य स्वीकार भी की जावे तो वस्तुव्यवस्था ही समाप्त हो जावेगी, अतः वस्तु स्वातंत्र्य स्वीकार करना ही वस्तुव्यवस्था स्वीकार करना है। अब विश्वव्यवस्था को समझना है।

विश्वव्यवस्था में पाँच अचेतन द्रव्यों की व्यवस्था

छह द्रव्य अर्थात् जीवद्रव्य, अनत पुद्गल परमाणु, एक धर्मद्रव्य, एक अधर्मद्रव्य, एक आकाशद्रव्य तथा असंख्यातकालाणु, इसप्रकार

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

जाति अपेक्षा छह तथा संख्या अपेक्षा अनन्तानंत वस्तुओं के समुदाय को ही लोक अर्थात् विश्व कहते हैं। इस विश्व की अनंतानंत वस्तुओं में से हर एक वस्तु हर समय अर्थात् एक सेकण्ड के भी असंख्यातवें भाग में अपनी पर्यायों को यानी अवस्थाओं को पलटती ही रहती हैं अर्थात् कोई ऐसा समय नहीं हो सकता जब सभी वस्तुएँ अपनी-अपनी पूर्व अवस्था को छोड़कर नवीन-नवीन अवस्था धारण नहीं करती हों। तात्पर्य यह है कि काल के छोटे से छोटे काल यानी एकसमय मात्र में भी विश्व में रहने वाली समस्त अर्थात् अनंतानंत वस्तुएँ एक साथ ही अपना-अपना परिणमन करती ही हैं, लेकिन फिर भी कोई भी किसी में हस्तक्षेप नहीं करती, यही विश्व की व्यवस्था है। इस ही बात को आचार्य अमृतचन्द्र ने समयसार गाथा ३ की टीका में निम्नप्रकार से स्पष्ट किया है:—

"इसलिए धर्म, अधर्म, आकाश, काल, पुद्गल, जीवद्रव्य स्वरूप लोक में सर्वत्र जो कुछ जितने पदार्थ हैं वे सब निश्चय से (वास्तव में) एकत्व निश्चय को प्राप्त होने से ही सुन्दरता को पाते हैं, क्योंकि अन्य प्रकार से संकर, व्यतिकर आदि सभी दोष आ जायेंगे। वे सब पदार्थ अपने द्रव्य में अन्तर्मग्न रहने वाले अनन्त धर्मों के चक्र को (समूह को) चुम्बन करते हैं—स्पर्श करते हैं तथापि वे परस्पर एक-दूसरे को स्पर्श नहीं करते, अत्यन्त निकट एक क्षेत्रावगाह रूप से तिष्ठ रहे हैं, तथापि वे सदाकाल अपने स्वरूप से च्युत नहीं होते, पररूप परिणमन न करने से अपनी अनन्त व्यक्ति (प्रगटता) नष्ट नहीं होती, इसलिए जो टंकोत्कीर्ण की भाँति (शाश्वत) स्थिर रहते हैं और समस्त विरुद्ध कार्य तथा अविरुद्ध कार्य दोनों की हेतुता से (निमित्तभाव से) वे सदा विश्व का उपकार करते हैं—टिकाये रखते हैं।"

उपरोक्त प्रकार से आचार्य महाराज ने विश्व की व्यवस्था के स्वरूप को स्पष्ट किया है। उक्त आधार से भी यही निष्कर्ष निकलता है कि इस विश्व की हर एक वस्तु यानी द्रव्य हर समय स्वतंत्रतया

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

अपने-अपने गुण-पर्यायों में परिणमन करते ही रहते हैं–पर के गुणपर्यायों में परिणमन करना अशक्य होने से कोई द्रव्य पर में कुछ करता ही नहीं है, लेकिन इतनी बात अवश्य है कि सभी द्रव्य जो संख्या में अनंतानंत हैं–जैसे जीवद्रव्य अनंत, पुद्गलद्रव्य अनंतानंत, धर्म, अधर्म, आकाश एक-एक असंख्यातकालाणु, सभी में से हर एक द्रव्य हर समय अपनी-अपनी पर्यायों में परिणमन करता ही रहता है वह, दूसरे द्रव्य के कैसे परिणमन हो रहे हैं इसकी अपेक्षा भी नहीं करता, लेकिन फिर भी सभी के परिणमन एकसाथ होने पर उनके परिणमन, किसी अन्य द्रव्य का कोई परिणमन सहजरूप से (बिना किसी प्रयास के) अनुकूल दिखने लगता है और उसी द्रव्य का वह परिणमन किसी को प्रतिकूल दिखने लगता है, जबकि उस अनुकूल-प्रतिकूल दिखनेवाले परिणमन को पता भी नहीं है कि मेरा परिणमन किसी को अनुकूल लग रहा है अथवा प्रतिकूल लग रहा है। इसप्रकार समस्त द्रव्यों के परिणमन अर्थात् पर्यायें किसी के लिए अनुकूलता अथवा प्रतिकूलता उत्पन्न किए बिना ही अपने-अपने क्रमानुसार अनादि-अनंत काल तक निर्बाध गति से परिणमन करती ही रहती हैं। यही आगमसम्मत विश्व की व्यवस्था है। इसके विपरीत अगर कोई भी द्रव्य के परिणमन को दूसरे द्रव्य के परिणमन के अनुकूल बनने के अथवा प्रतिकूल बनने के अधिकार को स्वीकार किया जावे तो अनन्त द्रव्यों के आपस में टकराव की स्थिति उत्पन्न हो जाने से विश्वव्यवस्था ही नहीं रह सकेगी, अतः यह ध्रुव सत्य है कि सभी द्रव्य अपनी-अपनी पर्यायों को ही करते रहते हैं, किसी दूसरे द्रव्य में किसी भी प्रकार का, किसी भी समय, कैसा भी हस्तक्षेप कर ही नहीं सकता। यही आगमसम्मत विश्व की व्यवस्था है।

अन्य दृष्टि से भी इस विषय पर गम्भीरता से विचार किया जावे तो ज्ञान में स्पष्ट होगा कि उपरोक्त छह द्रव्यों में पाँच द्रव्य तो अचेतन हैं, उनमें ज्ञान का अंश भी नहीं है, अतः वे यह जानते ही नहीं हैं कि

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

दूसरे का क्या हो रहा है, ऐसी स्थिति में वे कैसे किसी के अनुकूल या प्रतिकूल बन सकते हैं? जैसे धर्मद्रव्य एवं अधर्मद्रव्य दोनों के कार्य परस्पर विपरीत हैं, धर्मद्रव्य तो गतिमान जीव-पुद्गल को निमित्त कहा जाता है, अधर्मद्रव्य गतिपूर्वक ठहरने वाले द्रव्यों के लिए निमित्त कहा जाता है और दोनों ही द्रव्य हर समय परिणमन तो कर रहे हैं तब कौन से द्रव्य ने किसी भी समय दूसरे द्रव्य के लिए क्या किया? निष्कर्ष यह निकला कि जीव तथा पुद्गलों में से जो भी गतिमान होगा उसको धर्मद्रव्य अनुकूल पड़ने से उस परिणमन में निमित्त कहा जाता है उसी समय अन्य सभी द्रव्य अभावात्मक निमित्त हैं। उसी समय गतिपूर्वक ि र होते हुए द्रव्य को अधर्मद्रव्य अनुकूल निमित्त कहा जाता है, उसी समय बाकी के सभी द्रव्य अभावात्मक निमित्त कहे जाते हैं। अन्य भी तो सारे के सारे द्रव्य एकसाथ परिणमन कर ही रहे हैं तब यह अनुकूलता-प्रतिकूलता का भेद कौन करेगा? विचारने पर स्पष्ट प्रतीत होता है कि पुद्गल, धर्म, अधर्म, आकाश, काल–ये पाँचों द्रव्य तो अचेतन होने से अनुकूलता-प्रतिकूलता करने में असमर्थ ही हैं, वे द्रव्य अनुकूल-प्रतिकूल रूप दूसरे के लिए कैसे बनें जब कि वे जानते ही नहीं कि दूसरे किसी का अस्तित्व भी जगत में है अथवा नहीं। निष्कर्ष यही निकलता है कि कोई किसी के परिणमन में साधक-बाधक नहीं होता है, यही विश्व की सुन्दर व्यवस्था है।

विश्व-व्यवस्था में जीवद्रव्य की स्थिति

प्रश्नः– यहाँ कोई कह सकता है कि–उपर्युक्त कथन में पाँचों अचेतन द्रव्यों की स्थिति बताई, लेकिन विश्व-व्यवस्था में जीवद्रव्य की क्या स्थिति है, यह बात नहीं बताई गई। जबकि जीव ही मूलतः प्रयोजनभूत पदार्थ है अतः उसके बाबत समझना अत्यन्त आवश्यक है, अतः विश्वव्यवस्था में जीव की क्या स्थिति है, यह स्पष्ट कीजिए?

उत्तरः– जब सभी द्रव्य अपने-अपने स्वभावरूप ही परिणमन कर

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

रहे हैं तो जीवद्रव्य भी तो स्वयं एक वस्तु है, अतः वस्तुव्यवस्था के अनुसार वह भी अपने-अपने पर्यायों से अतिरिक्त क्या, क्यों और कैसे कुछ भी कर सकता है? अतः जीव भी निरन्तर अपनी पर्यायों को ही निर्बाधरूप से करता रहता है। जीव का स्वभाव ही जानना है इसलिए इस आत्मा की जाननक्रिया कभी रुकती नहीं, चाहे निगोद में चला जावे अथवा देवलोक में उत्पन्न हो, अथवा मनुष्य, तिर्यंच, सिद्ध भी हो जावे तो भी जाननक्रिया का कहीं भी अभाव हो सकता नहीं तथा अभाव होता हुआ दिखता भी नहीं, इससे सिद्ध है कि जो भी क्रिया निरन्तर अनादि-अनंत जीव से भिन्न न हो सके वह तो जीव की स्वाभाविक क्रिया है और जो उत्पन्न होकर विनष्ट हो जावे उसे जीव की स्वाभाविक क्रिया कैसे कहा जा सकता है? अर्थात् नहीं कहा जा सकता।

इससे सिद्ध होता है कि अन्य द्रव्यों की तरह जीव भी निरन्तर अपनी स्वाभाविक क्रिया ही कर सकता है तथा करता रहता है, उस जाननक्रिया रूप स्वाभाविक क्रिया का एक क्षणमात्र भी आत्मा यानी जीव से कभी वियोग नहीं होता, क्योंकि वस्तु की व्यवस्था ही ऐसी है कि जो उसका स्वभाव है उस रूप निरन्तर परिणमन करती ही रहे। आचार्य उमास्वामी महाराज ने कहा भी है—"उत्पाद-व्यय-ध्रौव्य युक्तं सत्" एवं "सत् द्रव्य लक्षणम्" आदि-आदि, अतः जीवद्रव्य निरन्तर जाननक्रिया करता ही रहता है और अपनी स्वाभाविक क्रिया के द्वारा जिन-जिन वस्तुओं को जानता है वे उस ज्ञान के ज्ञेय अथवा ज्ञान के निमित्त कहे जाते हैं। परवस्तुओं के साथ आत्मा का अगर कोई संबंध कहा जावे तो परम पवित्र एकमात्र ज्ञेय-ज्ञायक संबंध ही है, अन्य कोई प्रकार का किंचित्मात्र भी संबंध नहीं है। यही सारे विश्व की व्यवस्था है कि विश्व के सभी द्रव्य अपनी-अपनी स्वाभाविक पर्यायों में ही निरन्तर परिणमन करते रहें—किसी अन्य के परिणमन में हस्तक्षेप नहीं करें।

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

उपरोक्त द्रव्यों में आपसी संबंध क्या और कैसे

प्रश्नः— आपने यह सिद्ध किया कि जीवद्रव्य का अन्य वस्तुओं के साथ मात्र ज्ञेय-ज्ञायक संबंध है, अन्य कुछ नहीं, लेकिन जिनवाणी में हर एक वस्तु का अन्य वस्तुओं के साथ निमित्त-नैमित्तिक संबंध भी तो कहा गया है? तथा आपने भी ऊपर कहा है कि—"गतिमान जीव-पुद्गल को धर्मद्रव्य तथा गतिपूर्वक स्थिरता को प्राप्त को अधर्मद्रव्य निमित्त कहा गया है, इसीप्रकार जीव को भी जाननक्रिया में जो ज्ञेय पड़ते हैं, वे आत्मा की जानन-क्रिया में निमित्त हैं। अतः निमित्त-नैमित्तिक संबंध समझना अत्यन्त आवश्यक एवं प्रयोजनभूत ज्ञात होता है, अतः वह विषय स्पष्ट होना चाहिए।

समाधान इसप्रकार है कि सर्वप्रथम तो वस्तुव्यवस्था क्या है एंवं विश्वव्यवस्था क्या है, यह सिद्धान्त अनेक प्रकार के पठन, चिन्तन, मनन, सत्समागम आदि के द्वारा स्पष्टरूप से अपने ज्ञान और श्रद्धान अर्थात् विश्वास में बिना कोई शंका के स्पष्ट हो जाना चाहिए, क्योंकि डांवाडोल स्थिति के निर्णय में कभी कोई सिद्धान्त समझ में नहीं आ सकता, उसकी स्थिति "गंगा गये गंगादास, जमना गये जमनादास" जैसी ही रहती है, और ऐसा जीव, अपने प्रयोजन की सिद्धि नहीं कर सकता।

जिस जीव के श्रद्धान में यह आ गया कि विश्व की हर एक वस्तुएँ अपनी-अपनी पर्याय में ही परिणमन कर सकती हैं, अन्य की पर्याय में कुछ कर ही नहीं सकती, क्योंकि हर एक द्रव्य का परिणमन तो अपने-अपने ही क्षेत्र अर्थात् प्रदेशों में करेगा, अन्य के प्रदेशों में पहुँचेगा ही नहीं तथा स्पर्श भी नहीं करेगा तो कैसे उस द्रव्य की पर्याय में कुछ फेरफार कर सकेगा? जिस समय मान लो पर की पर्याय में फेरफार करने जावे उस समय क्या वह द्रव्य अपनी पर्याय का उत्पाद बंद कर देगा अथवा एक ही समय में दो पर्याय उत्पन्न करने

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

लगेगा? इस पर भी कोई कहे कि एकसमय दो पर्याय मान भी ली जाये तो क्या हानि है, लेकिन इस बात का तो जिनवाणी में स्पष्ट निषेध है। आचार्य अमृतचंद्र ने समयसार कलश नं० ५१ से ५४ तक इस बात का स्पष्टीकरण निम्नप्रकार से किया है:—

५१. जो परिणमित होता है वह कर्ता है, जो परिणाम है वह कर्म है और जो परिणति है सो क्रिया है, यह तीनों वस्तुरूप से अभिन्न हैं।

५२. वस्तु एक ही सदा परिणमित होती है, एक के ही सदा परिणाम होते हैं (अर्थात् एक अवस्था से अन्य अवस्था एक की ही होती है) और एक की ही परिणति क्रिया होती है, क्योंकि अनेक रूप होने पर भी वस्तु एक ही है, भेद नहीं है।

५३. दो द्रव्य एक होकर परिणमित नहीं होते, दो द्रव्यों का एक परिणाम नहीं होता और दो द्रव्यों की एक परिणति क्रिया नहीं होती, क्योंकि जो अनेक द्रव्य हैं सो सदा अनेक ही हैं, वे बदल कर एक नहीं हो जाते।

५४. एक द्रव्य के दो कर्ता नहीं होते, और एक द्रव्य के दो कर्म नहीं होते तथा एक द्रव्य की दो क्रियाएँ नहीं होतीं, क्योंकि एक द्रव्य अनेक रूप नहीं होता।

जिनागम के उपरोक्त कथन से भी यह स्पष्ट है कि हर एक द्रव्य अपने-आप में ही रहकर मात्र अपनी स्वयं की पर्याय को ही कर सकता है, अन्य किसी द्रव्य में कुछ भी किंचित्मात्र भी नहीं कर सकता।

उपरोक्त सिद्धान्त जिसकी समझ में आकर श्रद्धा में निःशंकता उत्पन्न हो जावे कि कोई भी द्रव्य किसी भी अन्य द्रव्य में कुछ भी फेरफार करने की सामर्थ्य नहीं रखता, तो मैं भी तो एक जीवद्रव्य हूँ, द्रव्यमात्र की जो सामर्थ्य है, मात्र वह ही सामर्थ्य तो मेरी हो सकती है, विशेषप्रकार अथवा अन्य प्रकार कैसे और क्यों हो सकती है आदि-आदि। इसका प्रमाण साक्षात् अरिहंत भगवान की आत्मा है।

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

भगवान आत्मा का जाननेरूप स्वभाव है उस रूप तो अरिहंत भगवान परिणमते ही रहते हैं, जिस रूप में वे नहीं परिणमते वह आत्मा का स्वभाव ही नहीं है, इसीलिए अन्य प्रकार से नहीं परिणमते, उनमें तो अनन्त शक्ति प्रगट हो चुकी है अतः अन्य द्रव्य में फेरफार करने की सामर्थ्य किसी द्रव्य में स्वीकार की जावे तो अरहंत भगवान को जो अनंत शक्तिवान हैं, उन्हें तो सबकुछ फेरफार कर देना चाहिए। अगर यह स्वीकार किया जावे तो हमको भी ईश्वर का कर्तृत्ववाद ही स्वीकार करना पड़ जावेगा, जो कि जैनधर्म की मान्यता के अत्यन्त विपरीत है। अतः सब प्रकार से निष्कर्ष यही निकलता है कि जैसी ऊपर कही गई वही वस्तुव्यवस्था एवं विश्वव्यवस्था है उसको निःशंक होकर स्वीकार कर, दृढ़ निश्चय के साथ श्रद्धा में बैठाना चाहिए।

निमित्त-नैमित्तिक सम्बन्ध

इस पर से फिर प्रश्न खड़ा होता है कि उपरोक्त कथन से हमारे मूल प्रश्न का समाधान तो नहीं हुआ, कि निमित्त-नैमित्तिक संबंध क्या है?

उत्तर यह है कि, उपरोक्त कथन उस ही प्रश्न के समाधान के लिए किया गया है, क्योंकि विश्व में मात्र एक ही द्रव्य तो नहीं है, द्रव्य तो जाति अपेक्षा छह तरह के तथा संख्या अपेक्षा अनंत-अनंत हैं, वे सबके सब ही अपनी-अपनी पर्याय रूप परिणमते हैं। हमारे ज्ञान में भी यह स्पष्ट प्रतिभासित होता है कि जीव ही अकेला तो द्रव्य नहीं है, उसके ज्ञान में अन्य द्रव्यों का अस्तित्व भी तो ज्ञात होता है, अतः विश्व में जीव के अतिरिक्त भी अन्य द्रव्यों का अस्तित्व तो निश्चित सिद्ध होता है। अतः जीव के परिणमन के समय, अन्य दूसरे द्रव्यों के भी परिणमन होते हैं अतः उन सबके साथ सबका कुछ न कुछ किसी भी प्रकार का संबंध तो होना ही चाहिए, जीव के ज्ञान में अन्य ज्ञेयों

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

का अस्तित्व भी तो ज्ञात होता है, अतः आत्मा जाननेवाला और वे पदार्थ ज्ञान के ज्ञेय-इतना संबंध तो सिद्ध होता ही है। अतः वे ज्ञेय, ज्ञान के निमित्त कहे जाते हैं। ऐसा संबंध नैमित्तिक संबंध है।

इस ही बात को आचार्य अमृतचन्द्र ने समयसार गाथा—३ की टीका में निम्नप्रकार से स्पष्ट किया है—"तथापि वे परस्पर एक-दूसरे को स्पर्श नहीं करते, अत्यन्त निकट एक क्षेत्रावगाहरूप से तिष्ठ रहे हैं तथापि वे सदाकाल अपने स्वरूप से च्युत नहीं होते, पररूप परिणमन न करने से अपनी अनन्त व्यक्ति (प्रगटता) नष्ट नहीं होती, इसलिये जो टंकोत्कीर्ण की भाँति (शाश्वत) स्थित रहते हैं और समस्त विरुद्ध कार्य तथा अविरुद्ध कार्य दोनों ही हेतुता से (निमित्त भाव से) वे सदा विश्व का उपकार करते हैं—टिकाये रखते हैं।"

उपरोक्त आगम प्रमाण में हर एक द्रव्य का आपस में क्या संबंध है, इस बात को बहुत दृढ़तापूर्वक स्पष्टरूप से सिद्ध किया है। अर्थात् हर एक द्रव्य अपनी स्वतंत्र वस्तुव्यवस्था को अपने-आप में बनाये रखते हुये भी अन्य द्रव्य के साथ मात्र निमित्त-नैमित्तिक संबंध रखता ही है। ऐसी ही विश्व की व्यवस्था है।

निमित्त-नैमित्तिक सम्बन्ध माना ही न जावे तो?

विश्व की जैसी व्यवस्था है उसको वैसा ही स्वीकार नहीं करे तो उसका ज्ञान ही सच्चा नहीं रहेगा, उसके स्वीकार नहीं करने से विश्वव्यवस्था तो नहीं बदल जावेगी, उसका ज्ञान ही झूठा होगा।

जो स्थिति आगम सम्मत है उसको स्वीकार नहीं करने का प्रश्न ही खड़ा नहीं होता, आगम से सिद्ध है कि जब-जब जीव पुद्गल गति परिणति को प्राप्त होते हैं तो धर्मद्रव्य निमित्त कहलाता है। इसीप्रकार जब-जब जीव एवं पुद्गल, गतिपूर्वक स्थिरता को प्राप्त होते हैं तब अधर्मद्रव्य निमित्त कहा जाता है तथा सभी द्रव्यों को अवकाश देने में निमित्त आकाश द्रव्य है, इसीप्रकार कालद्रव्य भी

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

परिणमन में सभी द्रव्यों के निमित्त हैं तथा स्वलक्ष्य के अभाव में मात्र परलक्षी ज्ञान होने पर पुद्गल एवं उसके स्कंध कर्म नोकर्म आदि, क्रोधादि कषायों की उत्पत्ति में निमित्त बन जाते हैं। इसीप्रकार अजीव द्रव्य भी एक प्रदेशी परमाणु से पलटकर स्कंधरूप होता है तथा स्कंध से परमाणुरूप होता है उसमें जीवद्रव्य निमित्त कहा जाता है। ऐसी ही सारे विश्व की आगम सम्मत व्यवस्था है। अगर उपरोक्त व्यवस्था को स्वीकार नहीं किया जावे तो छह द्रव्य ही सिद्ध नहीं होंगे और विश्व का अस्तित्व ही समाप्त हो जावेगा। जो कि प्रत्यक्ष में भी बाधित है, एवं आगम के भी विपरीत है। अतः उपरोक्त सत्य को स्वीकार करना ही ज्ञान की सत्यता है।

प्रत्यक्ष रूप से हमारे अनुभव में भी आता है कि जब भी किसी अन्य व्यक्ति को मेरे प्रति द्वेष का भाव हुआ उस समय उस जीव ने तो क्रोधभाव का उत्पाद किया, उसीसमय उस ही व्यक्ति की भाषा रूपी पुद्गल वर्गणाएँ गाली के रूप में उत्पाद हुईं, उसीसमय उस भाषारूपी वर्गणाओं का मेरी कर्णइन्द्रिय के साथ सम्पर्क हुआ, उसी समय मेरी ज्ञान की उस समय की पर्याय ने उन सबको जाना और उसी समय मेरी मान्यता में अर्थात् श्रद्धागुण ने उन वाणी रूपी पुद्गलों में अपनेपन की मान्यता अर्थात् ये गाली मुझे दी गई ऐसा मान लिया, फलस्वरूप चरित्र गुण भी विकृत होकर क्रोध कषाय का उत्पाद हो गया।

इस प्रसंग में गंभीरता से विचार करने पर स्पष्ट होगा कि कार्य तो मात्र एक ही हुआ। जैसे क्रोध करनेवाले व्यक्ति ने क्रोध का उत्पाद किया वह तो उस जीव की उत्पाद की हुई पर्याय है, उसीसमय वाणीरूपी पुद्गल वर्गणाओं का गालीरूप परिणमन का उत्पाद है, उसीसमय मेरे कर्ण से संबंधित पुद्गलों का वाणीरूपी परमाणुओं से संपर्क होने का मेरे कर्ण संबंधित पुद्गलों का उत्पाद हुआ, उसी समय मेरे ज्ञानगुण का तदाकार होना मेरा उत्पाद है, उसी समय मेरे

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

श्रद्धागुण का विपरीत परिणमन भी मेरा उत्पाद है तथा चरित्र की विपरीतता रूप क्रोध का उत्पाद भी मेरा ही उत्पाद है।

इसपर विचार करिये कि समय एक और कार्य अनेक तथा उनके स्वामी भी अलग-अलग व अनेक, फिर भी आपस में किसी न किसी प्रकार से संबंध भी बनता है, यह प्रत्यक्ष अनुभव में आता ही है, अतः इस सत्य को अस्वीकार करना विश्वव्यवस्था को अस्वीकार करना है। ऐसे ही संबंध को निमित्त नैमित्तिक संबंध कहा जाता है और यही आगम सम्मत विश्वव्यवस्था है। छह द्रव्यों का समुदाय वही विश्व है, उस विश्व में हरएक द्रव्य हर समय, अपने आप को कायम रखते हुए अनवरतरूप से अपनी-अपनी पर्यायों में उत्पाद व्यय करता ही रहता है, कोई द्रव्य किसी अन्य द्रव्य के उत्पादव्यय में न साधक ही होता है न बाधक ही, लेकिन फिर भी हरसमय हर एक समय के कार्य में एक-दूसरे की पर्याय का आपस में निमित्त-नैमित्तिक संबंध बनता ही रहता है। ऐसी स्वाभाविक विश्वव्यवस्था है। यह व्यवस्था किसी के रोकने से रुक नहीं सकती, बदल नहीं सकती, घट नहीं सकती एवं बढ़ भी नहीं सकती, लेकिन अनवरत रूप से चलती ही रहती है। इस विषय में गंभीरता से चिंतन-मनन करें तो हमारे विश्वास में भी उक्त विषय की सत्यता प्रमाणित होगी, क्योंकि हमारे दैनिक जीवन में हर समय ऐसे प्रसंग अनवरत रूप से बनते हुए अनुभव में आते हैं। अतः छह द्रव्यों की पर्यायों का हर समय आपस में निमित्त-नैमित्तिक संबंध बनता ही रहता है, इस सत्य को स्वीकार करना ही योग्य है।

निमित्त-नैमित्तिक संबंध एवं कर्ताकर्म संबंध का अंतर

हर एक द्रव्य का अपनी पर्यायों के साथ सम्बन्ध कर्ताकर्म संबंध है। तथा एक द्रव्य के साथ दूसरे द्रव्य का सम्बन्ध वह निमित्त-नैमित्तिक सम्बन्ध है। कर्ता-कर्म सम्बंध, व्याप्य-व्यापक में ही होता है, यथा पर्याय द्रव्य में व्याप्त होती है, द्रव्य-पर्याय में व्यापक

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

होता है, अतः इनका सम्बन्ध कर्ता-कर्म सम्बन्ध है। लेकिन जिनका आपस में व्याप्य-व्यापक न हो उनके सम्बन्ध को निमित्त-नैमित्तिक सम्बन्ध कहा जाता है, जैसे कि जीव के साथ पुद्गल, धर्म, अधर्म आदि द्रव्यों के सम्बंध को निमित्त-नैमित्तिक सम्बन्ध कहा गया है।

इसी बात को आचार्य अमृतचन्द्र देव ने समयसार, गाथा ८० से ८२ की टीका में एवं कलश ४९ एवं ५१ में निम्न प्रकार कहा है कि:—

टीका:—"जीव परिणाम को निमित्त करके पुद्गल कर्म रूप परिणमित होते हैं और पुद्गल कर्म को निमित्त करके जीव भी परिणमित होते हैं। इसप्रकार जीव के परिणाम के और पुद्गल के परिणाम के परस्पर हेतुत्व का उल्लेख होने पर भी जीव और पुद्गल में परस्पर व्याप्य-व्यापक भाव का अभाव होने से जीव को पुद्गल परिणामों के साथ और पुद्गल कर्म को जीव परिणामों के साथ कर्ता-कर्मपने की असिद्धि होने से मात्र निमित्त-नैमित्तिक भाव का निषेध न होने से, परस्पर निमित्त मात्र होने से ही दोनों के परिणाम (होता) है। इसलिए जैसे मिट्टी द्वारा घड़ा किया जाता है (अर्थात् जैसे मिट्टी ही घड़ा बनाती है) उसी प्रकार अपने भाव से अपना भाव किया जाता है इसलिये, जीव अपने भाव का कर्ता कदाचित् होता है, परन्तु जैसे मिट्टी से कपड़ा नहीं किया जा सकता उसी प्रकार अपने भाव से परभाव का किया जाना अशक्य है। इसलिए (जीव) पुद्गल भावों का कर्ता तो कदापि नहीं हो सकता यह निश्चय है।"।।८०-८२।।

व्याप्य-व्यापकता तत्स्वरूप में ही होती है, अतत्स्वरूप में नहीं ही होती, और व्याप्य-व्यापकभाव के संभव के बिना कर्ता-कर्म की स्थिति कैसी? अर्थात् कर्ताकर्म की स्थिति नहीं ही होती।"।।४९।।

"जो परिणमित होता है सो कर्ता है, (परिणमित होने वाले का) जो परिणाम है सो कर्म है और जो परिणमित है सो क्रिया है, ये तीनों वस्तुरूप से भिन्न नहीं हैं।"।।५१।।

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

उपरोक्त आगम वाक्यों से कर्ता-कर्म सम्बन्ध एवं निमित्त-नैमित्तिक संबंध की व्याख्या, लक्षण एवं स्वरूप स्पष्ट हो जाते हैं।

निमित्त-नैमित्तिक सम्बन्ध में पराधीनता का निराकरण

उपरोक्त "निमित्त-नैमित्तिक संबंध नहीं माना जावे" तो प्रकरण के अन्तर्गत जो उदाहरण दिये गये हैं उनसे तो ऐसा लगता है कि निमित्त के अनुसार ही कार्य होता हुआ देखा जाता है। जैसे गाली देने का भाव हुआ तो गाली के शब्द निकले। गाली के शब्द निकले तो हमारे कानों में पड़े, उनसे आत्मा को गाली के शब्दों का ज्ञान हुआ, उससे क्रोध उत्पन्न हुआ, आदि-आदि। अगर गाली देनेवाला व्यक्ति क्रोध नहीं करता तो यह सब क्यों होता? इसप्रकार अनेक प्रसंगों में ऐसा दिखता है कि जो भी कार्य देखे जाते हैं, वे निमित्त के अनुसार ही होते हुए देखे जाते हैं।

उपरोक्त शंका का निराकरण वीतरागता उत्पादक मूल सिद्धान्त को मुख्य रखकर गम्भीर चिन्तन-मनन से ही हृदय में उतर सकता है। यह तो पहले अनेक बार कहा गया है कि ऊपर कही गई वस्तुव्यवस्था एवं विश्वव्यवस्था को सत्समागम, तर्क, आगम, अनुमान एवं अनुभव के द्वारा तथा तीव्रतम रुचि के द्वारा पक्का निर्णय कर श्रद्धा बैठाकर हर एक द्रव्य की स्वतंत्रता का विश्वास नहीं जमे तब तक उपरोक्त शंका का समाधान होना असंभव है।

क्योंकि विश्व में हर समय हर एक द्रव्य परिणमन तो कर ही रहा है, वही उसका कार्य अर्थात् कर्म है और वह द्रव्य उस कार्य का कर्ता है, इसमें कभी भी व्यवधान तो पड़ नहीं सकता, ऐसी ही विश्व की व्यवस्था है। उस एक ही समय में अनन्त द्रव्यों के परिणमन किसी अन्य द्रव्य के किसी परिणमन को अनुकूल भी पड़ सकते हैं, किसी के प्रतिकूल भी पड़ सकते हैं; जो कि उस द्रव्य ने तो कोई कार्य इसलिए किया ही नहीं है कि वह किसी की अनुकूलता का कारण हो अथवा

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

प्रतिकूलता का कारण हो, लेकिन कार्य अर्थात् पर्याय तो सभी द्रव्य अपना-अपना कर ही रहे हैं, ऐसी स्थिति में यह कैसे संभव है कि अनंतानंत द्रव्यों में वह कार्य किसी के अनुकूल अथवा प्रतिकूल न पड़े? अत: यही विश्व की व्यवस्था है कि कोई द्रव्य किसी भी द्रव्य के कार्य में कोई बाधा नहीं डालता हुआ भी आपस में सम्बन्ध होना भी सिद्ध करता है।

इसी बात को आचार्य पूज्यपादस्वामी ने इष्टोपदेश ग्रन्थ की, गाथा ३५ में निम्नप्रकार से स्पष्ट किया है:–

नाज्ञो विज्ञत्वमायाति विज्ञो नाज्ञत्वमृच्छति ।
निमित्तमात्र मन्यस्तु, गतेर्धर्मास्तिकायवत् ।।३५।।

अर्थ :–अज्ञ (अज्ञानी) को न तो कोई ज्ञानी बना सकता है और न ज्ञानी को अज्ञानी बना सकता है। मात्र एक-दूसरे के लिए निमित्त हैं, जैसे गमन करने में धर्मास्तिकाय है।

इसके द्वारा भी यही सिद्ध होता है कि निमित्त कार्य किसी को पराधीन बनाता नहीं है वरन् अपनी और पर की स्वाधीनता को अक्षुण्ण बनाये रखते हुए भी जो अनुकूलता का सम्बन्ध बनता है वही निमित्त-नैमित्तिक सम्बंध कहा जाता है।

इस ही विषय को विशेष स्पष्टता के लिये अन्य प्रकार से विचार करें कि हम जिसको निमित्त कहते हैं वह तो एक अन्य द्रव्य की पर्याय है तथा जिसको हम नैमित्तिक कहते हैं वह एक-दूसरे द्रव्य की पर्याय है। दोनों द्रव्य भिन्न-भिन्न हैं, दोनों पर्यायों के स्वामी भी अन्य-अन्य हैं, वे सब अपनी-अपनी पर्यायों के कर्ता हैं, वे पर्यायें उनकी कर्म हैं। ऐसी स्थिति में विचार करिये कि निमित्त वाले द्रव्य की पर्याय का उत्पादकाल एवं नैमित्तिक वाले द्रव्य की पर्याय का उत्पादकाल एक ही समय है अथवा भिन्न-भिन्न समय का है? अगर भिन्न-भिन्न समय मानेंगे तो यह मानना होगा कि जब निमित्त होगा तब नैमित्तिक

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

नहीं होगा और जब नैमित्तिक होगा तब निमित्त नहीं रहेगा, ऐसी स्थिति में वह निमित्त किसका? और वह नैमित्तिक किस निमित्त की अपेक्षा? अर्थात् ऐसी स्थिति में न निमित्त ही सिद्ध होगा और न नैमित्तिक ही; अतः दोनों का उत्पाद एक ही समय में एक ही साथ अलग-अलग द्रव्यों में मानना ही पड़ेगा। जब यह माना जाता है कि दोनों का उत्पाद, एकसाथ, एक ही समय अलग-अलग द्रव्यों में हुआ है तो वह निमित्त कहलाने वाले द्रव्य की पर्याय, किसी अन्य द्रव्य की पर्याय को अपने अनुकूल करने का कार्य (प्रयास) कब और कैसे करेगी? जब निमित्त वाली पर्याय का उत्पाद हुआ, उसी समय नैमित्तिक कहलाने वाली पर्याय का भी उत्पाद हो गया, दोनों ने अपना-अपना कार्य एक ही समय में सम्पन्न कर लिया तब किसी की अनुकूलता प्रतिकूलता होने नहीं होने का अवकाश ही कहाँ रह जाता है। इस पर भी कुतर्क के रूप में कहा जाय कि भले एक समय ही उत्पाद हो लेकिन अनुकूलता-प्रतिकूलता के विचार से ही उत्पाद किया, ऐसा कहा जावे तो, यह बात सत्यता की कसौटी पर सही नहीं उतर सकती। कारण छह द्रव्यों में पाँच द्रव्य तो अचेतन जड़ हैं, वे तो किसी के अनुकूल रूप परिणमन करने का अथवा प्रतिकूल परिणमन करने का विचार कर ही नहीं सकते, वे तो न अपना ही अस्तित्व जानते हैं, न पर का ही अस्तित्व जानते हैं, तब वे किसी के अनुकूल पड़ने अथवा प्रतिकूल पड़ने की दिशा में, क्या, कब, और कैसे अपना परिणमन करेंगे? अतः उनमें से कोई भी द्रव्य किसी के भी अनुकूल प्रतिकूल पड़ने के लिए परिणमन नहीं करता, वरन् अपनी-अपनी पर्याय अपने-अपने क्रमानुसार परिणमन करते रहते हैं, वे परिणमन सहज ही किसी को अनुकूल निमित्त, (सद्भावरूप निमित्त) किसी को प्रतिकूल निमित्त (अभावरूप निमित्त) कहलाने लगता है, यथार्थ स्थिति यह है कि उस द्रव्य ने तो किसी के लिए कुछ किया ही नहीं था।

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

जीवद्रव्य में निमित्त-नैमित्तिकपना

प्रश्नः– उपरोक्त कथन से जीवद्रव्य के अतिरिक्त पाँचों द्रव्यों के स्वतंत्र परिणमन, उनके आपस का सम्बन्ध एवं निमित्त-नैमित्तिक संबंध की औपचारिकता आदि समझ में आ सकती है, लेकिन जीवद्रव्य तो जानने वाला है यह तो किसी के भी भले-बुरे आदि कार्यों में निमित्त बन सकता है, अतः यह भी विषय स्पष्ट होना चाहिए?

उक्त शंका महत्वपूर्ण है, क्योंकि हमारा प्रयोजन तो हमारी भूल जानकर भूल निकालना है, अतः इस विषय को समझना अत्यन्त आवश्यक है।

उत्तरः-- जीव भी छह द्रव्यों में से ही एक द्रव्य है, जो अन्य पांच द्रव्यों का स्वभाव है वह ही तो जीव द्रव्य का स्वभाव है एवं हो सकता है। सभी द्रव्य जिसप्रकार से "उत्पादव्ययध्रौव्ययुक्तंसत्" हैं उसीप्रकार से जीव भी निरन्तर अनवरतरूप से ध्रुव रहते हुए भी पर्यायें पलटता ही रहता है। मात्र अन्तर है तो इतना ही है कि अन्य द्रव्यों में जिस प्रकार से अपने-अपने विशेष गुण जैसे पुद्गल में स्पर्श, रस, गन्धादिक, धर्म में गति परिणमन में निमित्तत्व, अधर्म में स्थिति परिणमन में निमित्तत्व, आकाश में अवकाशदानपना, काल में परिणमनपना आदि हर एक द्रव्य में अपने-अपने विशेष गुण हैं, उसीप्रकार जीव में ज्ञान अर्थात् जाननपना एक विशेष गुण है। इस प्रकार जाननपने के अतिरिक्त अन्य सभी सामान्य गुणों के परिणमन तो सभी द्रव्यों में समान होने से सभी के कार्यों में समानता है। साथ ही विशेष गुणों के संबंध में विचार करें तो जब हरएक द्रव्यों के विशेष गुण भी अपनी-अपनी क्वालिटी छोड़कर अन्य किसी रूप भी परिणमन नहीं करते, तब आत्मा का ज्ञानगुण अपनी क्वालिटी जाननपना छोड़कर जानन क्रिया के अतिरिक्त और क्या और कैसे कुछ कर सकेगा?

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

अब एक जाननपने के आधार पर चर्चा करेंगे, इसमें सर्वप्रथम सिद्धांत तो यह है कि अगर कोई भूल होती है तो भूल भी जाननेवाला होता है वही कर सकता है, जो कुछ जानता ही नहीं वह तो भूल करेगा ही कैसे, अतः जो कुछ भी नहीं जाननेवाले पाँचों द्रव्य कार्य कर रहे हैं वे सब कार्य तो भूल बिना के हैं अर्थात् स्वाभाविक हैं। अतः जीव भी अगर स्वाभाविक रूप से कार्य करता रहे तो वे सब कार्य भी बिना भूलके ही होने चाहिए, लेकिन अगर वैसा न करके अन्य रूप से करने लगता है तो यह तो स्वीकार करना ही पड़ेगा कि संभव है वह कहीं भूल करता हो, क्योंकि भूल कर सकने की सामर्थ्य भी तो उस अकेले जीव में ही तो है, अतः इस दृष्टि को ध्यान में रखकर हमको जीवद्रव्य के कार्यकलाप का विश्लेषण करना चाहिये।

इस जीव में एक ज्ञानगुण ही अन्य द्रव्यों से अधिकता अर्थात् विशेषता वाला है। अगर यह जीव मात्र जानना-जाननारूप उत्पाद निरन्तर करता रहे, लेकिन उस जाननक्रिया में जानने मात्र के अतिरिक्त अन्य कोई प्रकार की घालमेल नहीं करे तो जैसे सब द्रव्य अपने स्वाभाविक रूप से परिणमन कर रहे हैं, वैसे ही यह भी अनवरतरूप से परिणमन करता रह सकता है जिसका प्रत्यक्ष प्रमाण भगवान् अरहंत की आत्मा है, भगवान अरहंत की आत्मा जाननेरूप प्रर्वतते हुए भी अन्य कोई प्रकार से घालमेल अपने ज्ञान में नहीं करती, अतः उनका परिणमन सभी द्रव्यों के समान स्वाभाविक परिणमन है। अन्य द्रव्य तो अचेतन होने के कारण स्वाभाविक परिणमन करते रहने पर भी सुख-दुःख की अनुभूति नहीं करते। जीव चेतनद्रव्य होने से स्वाभाविक परिणमन करता है तो सुख की अनुभूति करता है और अस्वाभाविक परिणमन करता है तो दुःख की अनुभूति करता है। जब वह भी स्वाभाविक परिणमन करता है तो उसके भी छह द्रव्यों के साथ ज्ञेय-ज्ञायक संबंध रूप निमित्त-नैमित्तिक संबंध बनता ही रहता है अतः उसको दुख की

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

अनुभूति नहीं होती। लेकिन जब यह जीव अपने ज्ञान में विपरीतता के द्वारा जाननक्रिया का कर्ता न रहकर अन्य कुछ भी गड़बड़ी खड़ी करता है अर्थात् उनके साथ सम्बन्ध जोड़ता है तब उस गड़बड़ क्रिया में अन्य जो भी द्रव्य उसके अनुकूल दिखते हैं, उनको उस अनुकूलता का निमित्त मानने लगता है। इसप्रकार यह जीव द्रव्य ही निमित्त-नैमित्तिक संबंध मानने में भूल करता है, निमित्त-वाला द्रव्य इसकी भूल नहीं करा देता, लेकिन यह अपनी गलत मान्यता के कारण अपनी भूल नहीं मानकर अपनी भूल निमित्त पर थोपता रहता है, और राग-द्वेष को बढ़ाता रहता है।

शास्त्र में यह भी आता है, कर्म उदय आने पर विकार होता ही है?

गोम्मटसार ग्रंथ में आता है कि "जब जैसे कर्म का उदय आता है तब आत्मा को वैसा ही विकार होता है, अन्य प्रकार का नहीं होता"— आदि-आदि कथनों से तो ऐसा लगता है कि कर्म का उदय ही आत्मा में विकार उत्पन्न करता है? अतः आपके द्वारा बताया गया स्वतंत्र परिणमन का सिद्धांत उक्त आगम कथन से मेल नहीं खाता?

नाटक समयसार के सर्व विशुद्ध ज्ञान अधिकार पं. बनारसीदासजी ने उक्त प्रश्न पर समाधान नीचे माफिक दिया है :—

"कोऊ शिष्य कहै स्वामी रागदोष परिनाम,
ताकौ मूल प्रेरक कहहु तुम कौन है ।
पुग्गल करम जोग किधौं[1] इन्द्रिन कौ भोग,
किधौं धन किधौं परिजन किधौं भौन[2] है ।
गुरु कहै छहौं दर्व अपने अपने रूप,
सबनि कौ सदा असहाई परिनौन[3] है ।

---

(1) किधौं = अथवा (2) भौन = भवन (3) परिनौन = परिणमन

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

कोऊ दरब काहू को न प्रेरक कदापि तातैं,
रागदोष मोह मृषा मदिरा अचौन[1] है।।"।।६१।।

फिर कहते हैं कि :–

कोऊ मूरख यों कहै रागदोष परिनाम,
पुग्गल की जोरावरी बरतै आतमराम।।६२।।
ज्यों-ज्यों पुग्गल बैल करै, धरि-धरि कर्म जुमेष,
रागदोष को परिनमन त्यों त्यों होइ विशेष।।६३।।
इह विधि जो विपरीत पख गहै सद्दहै कोइ,
सो नर राग विरोध सौं कबहूँ भिन्न न होई।।६४।।
सुगरू कहै जगमैं रहे, पुग्गल संग सदीव,
सहज सुद्ध परिनमन का, औसर लहै न जीव।।६५।।
तातैं चिद्भावनिविषैं, समरथ चेतनराव,
रागविरोध मिथ्यातमैं, समकितमें सिवभाव।।६६।।

पंडित टोडरमलजी ने मोक्षमार्ग प्रकाशक पृष्ठ ३११ पर भी उपरोक्त विवेचन का ही समर्थन नीचे माफिक किया है :–

यहाँ प्रश्न है कि–द्रव्यकर्म के उदय से भावकर्म होता है, भावकर्म से द्रव्यकर्म का बन्ध होता है, तथा फिर उसके उदय से भावकर्म होता है–इसीप्रकार अनादि से परम्परा है, तब मोक्ष का उपाय कैसे हो?

समाधान:–कर्म का बन्ध उदय सदाकाल समान ही होता रहे तब तो ऐसा ही है; परन्तु परिणामों के निमित्त से पूर्वबद्ध कर्म के भी उत्कर्षण-अपकर्षण-संक्रमणादि होने से उनकी शक्ति हीनाधिक होती है; इसलिये उनका उदय भी मंद-तीव्र होता है।

और तत्वनिर्णय न करने में किसी कर्म का दोष है नहीं, तेरा ही दोष है; परन्तु तु स्वयं तो महन्त रहना चाहता है और अपना दोष कर्मादिक को लगाता है, सो जिन आज्ञा माने तो ऐसी अनीति संभव

(1) अचौन=पीना

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

नहीं है। तुझे विषय कषाय रूपही रहना है, इसलिये झूठ बोलता है।

इसप्रकार उपरोक्त आगम वाक्यों से स्पष्ट है कि अपने विकार का उत्पादक कर्म को मानना तो उल्टी मान्यता है, इसप्रकार की मान्यता से स्वच्छन्दता का पोषण करना चाहता है। लौकिक में भी प्रचलित है कि अपराध करनेवाले का अपराध छुड़ाने के लिये सबसे पहले उसकी स्वीकृति कराई जाती है और स्वीकार कर लेने के बाद ही, वह भविष्य में ऐसा अपराध नहीं करेगा—यह विश्वास किया जा सकता है। तो क्या उसके भी विपरीत, धर्मशास्त्र ऐसी आज्ञा देगा कि क्रोधादि विकारी भाव तो आत्मा स्वयं करे और उसकी जिम्मेदारी आत्मा की नहीं होकर कर्म की है? इसका अर्थ यह हुआ कि आत्मा तो क्रोधादि भावों को कम-ज्यादा अथवा अभाव कर ही नहीं सकता; तब फिर लोक में भी बुरे भाव छोड़ने का और अच्छे भाव करने का उपदेश निरर्थक सिद्ध होगा, और जिनवाणी का उपदेश भी रागादि भावों के बढ़ानेवाला सिद्ध होगा, जो कि असंभव है, क्योंकि आत्मशुद्धि का मार्ग तो एकमात्र वीतरागता है।

इससे यह सिद्ध होता है कि कर्म का जब-जब उदय आवे तब आत्मा को विकार करना ही पड़े। ऐसा उपरोक्त कथनों का अभिप्राय नहीं है। उल्टी मान्यता के कारण इसकी आदत पड़ी हुई है कि अपराध स्वयं करता है और दूसरे के सिर थोपने के लिये किसी कर्म को या नोकर्म को कारण बताकर अपने आप को निरपराधी मानता है व सिद्ध भी करता रहता है। जैसे किसी के गाली देने पर आप क्रोध करता है, और अपराध गाली देनेवाले का मानकर उस पर क्रोध करता है; उसीप्रकार शास्त्र पढ़कर शास्त्र के कथनों को अपनी उल्टी मान्यता दृढ़ करने के लिये उल्टा अर्थ निकालता रहता है।

इस पर प्रश्न खड़ा होता है कि उक्त कथनों का यथार्थ अभिप्राय क्या है?

उत्तर:—जीव जब स्वयं विकारी भाव उत्पन्न करता है उस समय

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

विकारी भावरूप कार्य तो जीव ने किया अतः यथार्थ कारण तो जीव का उस समय का परिणमन है लेकिन उसीसमय, "अन्य निमित्तरूप द्रव्य कौन था," उसका ज्ञान कराने के लिये तथा जीव की विकारी भाव रूप पर्याय की जाति एवं तारतम्यता का ज्ञान कराने के लिये, कर्म की प्रधानता से कथन किया गया है; जीव को कर्म के आधीन होना सिद्ध करने के लिये नहीं।

जीव की विकारी पर्याय एवं कर्म का क्या संबंध है तथा उसकी पर्याय का ज्ञान कराने के लिये कर्म के माध्यम से विवेचन क्यों किया गया आदि विषय पर विस्तृत विवेचना भाग दो में की जावेगी।

निमित्त नैमित्तिक शब्द द्वारा भ्रम

निमित्त-नैमित्तिक शब्द से ही ऐसा लगता है कि नैमित्तिक कार्य में निमित्त का कुछ प्रभाव तो मानना ही चाहिए? ऐसा भ्रम भी निर्मूल है, कारण कार्य तो द्रव्य की उस समय की पर्याय है, उस पर्याय की उत्पत्ति के समय स्व और पर दोनों हैं। उस ही अपेक्षा से उपादान की मुख्यता से उस एक ही कार्य को उपादेय शब्द से कहा जाता है तथा निमित्त की मुख्यता से उस ही कार्य को नैमित्तिक शब्द से कहा जाता है। उपादेय के साथ उपादान का व्याप्य-व्यापकपना है लेकिन निमित्त के साथ व्याप्य-व्यापकता का अभाव होने से उस कार्यरूप पर्याय में अंशमात्र भी प्रभाव आदि नहीं हो सकता।

इसप्रकार छह द्रव्यों में आपस में निमित्त-नैमित्तिक संबंध अनिवार्य होते हुए भी, निमित्त, अन्य द्रव्य होने के कारण नैमित्तिक पर्यायों में अंशमात्र भी किसी भी प्रकार का असर, प्रभाव, परिवर्तन आदि कुछ भी नहीं कर सकता।

संयोगी दृष्टि एवं स्वभावदृष्टि

उपरोक्त प्रकार की वस्तुव्यवस्था होने पर भी हमको ऐसा क्यों लगता है कि निमित्त से ही कार्य हो रहा है?

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

समाधान :—इसका कारण मात्र अपनी देखने की दृष्टि की भूल है। कारण यह है कि कार्य तो एक ही हुआ है लेकिन उसमें कारण दो हैं। एक तो वस्तु ने स्वयं उस कार्यरूप परिणमन किया है, अतः कार्य का कारण वह वस्तु है जिस कारण को आगम में उपादान कारण के नाम से कहा गया है। दूसरा कारण वह है जिसने स्वयं ने तो कार्यरूप परिणमन नहीं किया है, लेकिन उस कार्य की उत्पत्ति के समय ही अपने आप में परिणमन करते हुये उस कार्य के अनुकूल रूप पड़ा है अर्थात् अनेक द्रव्यों के परिणमन में उसका ही परिणमन उपादान रूप वस्तु के कार्यरूप परिणमन के अनुकूल हुआ है, उस ही को आगम में निमित्त कारण के नाम से कहा गया है। जैसे कि पानी रूपी पुद्गल के स्कंधों का ठंडी अवस्था से गरम रूप परिणमन तो पानी रूपी पुद्गल स्कंधों का ही हुआ है, अग्नि का एक अंश भी पानी में नहीं आया लेकिन अग्नि की ज्वाला रूप अवस्था की उत्पत्ति एवं पानी की गरम अवस्था रूप उत्पत्ति का काल एक ही होता है अर्थात् एकसाथ ही होता है इसी को आगम में कालप्रत्यासत्ति के नाम से संबोधित किया गया है। इसप्रकार हमारी विपरीतमान्यता के कारण हमको तो मात्र अकेला कार्य ही दिखता है, दो कारण दिखते ही नहीं हैं साथ ही उस कार्य की उत्पत्ति में निमित्त कारण बाह्य वस्तु होने से हमको ऐसा ही दिखता है कि इस निमित्त ने ही कार्य का उत्पादन किया है, क्योंकि उसके उत्पादन के समय हमको वैसा उत्पादन करने की इच्छा भी होती है तथा उसमें हमको अपना कुछ पुरुषार्थ किया हुआ भी दिखता है लेकिन असली उत्पादक जो वस्तु है वह हमारी दृष्टि से बाहर ही रहती है, ऐसा दिखने का मूल कारण तो देखने वाले की दृष्टि का दोष ही है कारण स्वभाव की मुख्यता से देखनेवाले को तो वह कार्य उस वस्तु का परिणमन ही दीखता है और संयोग अर्थात् निमित्त की मुख्यता से देखने वाले को निमित्त ने ही उस कार्य का उत्पादन किया ऐसा दीखता है। इसमें बुद्धिमान् को स्वयं को ही यह निर्णय

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

करना पड़ेगा कि वस्तु-स्थिति क्या है और उस कार्य का असली उत्पादक कौन है तथा असली उत्पादक नहीं होते हुए भी उसको कारण कहने में क्या रहस्य है तथा मेरे को वीतरागता का उत्पादन किसको सत्य मानने में है?

स्वभावदृष्टि वीतरागता की एवं संयोगी दृष्टि सरागता की उत्पादक

स्वभावदृष्टि से कार्य की उत्पत्ति मानने वाले की स्वाधीन दृष्टि होने से परसंयोग की अपेक्षा नहीं रहती तथा परसंयोग, निमित्त को जुटाने की उत्सुकता समाप्त हो जाने से आत्मा की कर्तृत्वबुद्धि टूट जाती है और ज्ञायकपने की श्रद्धा जाग्रत होने से वीतरागता की उत्पत्ति होती है, फलतः क्रमशः रागादि का अभाव होने लगता है और वीतरागता की उत्पत्ति प्रारंभ हो जाती है।

निमित्ताधीन दृष्टि से कार्य की उत्पत्ति माननेवाले की हमेशा पराधीन दृष्टि बनी रहती है तथा परसंयोगों को अनुकूल करने का एवं प्रतिकूल परिस्थितियों को बदल देने का विश्वास होने से कर्तृत्वबुद्धि दृढ़ होती है। फलतः निरंतर संयोगों (निमित्तों) को अनुकूल करने एवं प्रतिकूलता हटाने के प्रयासों में ही निरन्तर दत्तचित्त रहता है—घानी के बैल की तरह २४ घण्टे लगा रहता है, फलस्वरूप उन संयोगों के, अपने प्रयासों के अनुकूल नहीं होने पर राग और द्वेष बढ़ाता रहता है, कारण वे पर निमित्त इसके आधीन तो हैं नहीं जो इसकी इच्छा के अनुकूल हो ही जावे, फलतः संयोगी दृष्टि सरागता की ही उत्पादक है।

कार्य की सम्पन्नता में पुरुषार्थ का स्थान

उपरोक्त कथन से तो ऐसा लगता है कि जब सभी कार्य अपने-अपने समय पर स्वतंत्रतया अपने कारण से होते ही रहते हैं,

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

कोई उनमें व्यवधान भी करता नहीं तथा साधक भी हो सकता नहीं, तब तो पुरुषार्थ की कोई आवश्यकता ही नहीं रहती, इससे तो नियतवाद का पोषण होगा, जो कि आगम सम्मत है नहीं?

उपरोक्त शंका यथास्थान है, इसका समाधान इसप्रकार है कि किसी भी द्रव्य का जो कोई भी कार्य किसी भी समय सम्पन्न होता है तो उसमें अनेक कारण मिलते हैं। (मिलाने नहीं पड़ते) यथा मोक्षमार्ग प्रकाशक के नवें अध्याय में कहा है कि "एक कार्य होने में अनेक कारण मिलते हैं।" लेकिन कथन किसी एक कारण की मुख्यता से ही हो पाता है, उससे ऐसा नहीं समझ लेना चाहिए कि कार्य होने के समय बाकी के अन्य कारणों का सद्भाव ही नहीं रहता। साथ ही यह भी निश्चित है कि अन्य कारणों को मिलाने की भी आवश्यकता नहीं पड़ती, जब-जब भी कार्य की सम्पन्नता होती है सभी कारण स्वतः ही बिना मिलाये (इकट्ठा किये) मिलेंगे ही मिलेंगे। ऐसा नहीं है कि कार्य की सम्पन्नता किसी कारण के नहीं मिलाने के कारण कभी रुक जावे।

निष्कर्ष यह है कि विश्व के हर एक द्रव्य का हर समय कोई न कोई प्रकार का कार्य तो होता ही रहता है, अतः हर समय ही सभी कारण स्वतः रूप से अपने-अपने परिणमन से परिणमते हुए रहते ही हैं, इस ही कारण जब-जब भी कार्य की सम्पन्नता के कारणों का विवेचन किया जावेगा उसको किसी एक कारण की मुख्यता से ही कहना पड़ेगा, अन्य कारणों को गौण रखना ही पड़ेगा। इसप्रकार वस्तु के कार्य सम्पन्नता में सभी द्रव्यों की स्वतंत्रता सम्पन्न कारण कार्य व्यवस्था है।

पाँच समवाय व कार्य की सम्पन्नता

अब यह समझना है कि वे कारण कौन-कौन हैं? इस संबंध में पण्डित फूलचंदजी सिद्धान्त शास्त्री ने "जैन तत्व मीमांसा" पुस्तक के द्वितीय संस्करण के पृष्ठ–१३२ पर इसप्रकार लिखा है–

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

पाँच हेतुओं का समवाय

"साधारण नियम यह है कि प्रत्येक कार्य की उत्पत्ति में पाँच कारण नियम से होते हैं। स्वभाव, पुरुषार्थ, काल, नियति और कर्म। यहाँ पर स्वभाव से द्रव्य की स्वशक्ति या नित्य उपादान लिया गया है। काल से स्वकाल और परकाल का ग्रहण किया है। पुरुषार्थ से जीव का बल-वीर्य लिया गया है, नियति से समर्थ उपादान या निश्चय की मुख्यता दिखलाई गई है और कर्म से बाह्य निमित्त का ग्रहण किया गया है। इन्हीं पाँच कारणों को सूचित करते हुए पंडित प्रवर बनारसीदासजी नाटक समयसार के सर्वविशुद्धज्ञान अधिकार में कहते हैं–

"पद सुभाव पूरवउदै निहचै उद्यम काल ।
पच्छपात मिथ्यात पथ सरवंगी शिवचाल ।।४२।।

गोम्मटसार कर्मकाण्ड (गाथा ८७९ से ८८३ तक) में पाँच प्रकार के एकान्तवादियों का कथन आता है। उसका आशय इतना ही है कि जो इनमें से किसी एक से कार्य की उत्पत्ति मानता है, वह मिथ्यादृष्टि है और जो कार्य की उत्पत्ति में इन पाँचों समवायों को स्वीकार करता है, वह सम्यग्दृष्टि है। अष्टसहस्री पृ० २५७ में भट्टाकलंकदेव ने एक श्लोक दिया है उसका भी यही आशय है। श्लोक इसप्रकार हैं–

तादृशी जायते बुद्धिर्व्यवसायश्च तादृषः ।
सहायास्तादृशाः सन्ति यादृशी भवितव्यता ।।

अर्थ:– जिस जीव की जैसी भवितव्यता (होनहार) होती है, उसकी वैसी ही बुद्धि हो जाती है। वह प्रयत्न भी उसीप्रकार करने लगता है, और उसे सहायक भी उसी के अनसार मिल जाते हैं।" (जैन तत्व मीमांसा)

अष्टसहस्री का उपरोक्त कथन भवितव्यता की मुख्यता से किया गया है, लेकिन साथ ही उसमें बाकी सभी समवायों का तत्समय होना

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

भी स्वीकार किया गया है। इसप्रकार किसी भी एक समवाय की मुख्यता पूर्वक कथन अन्य समवायों को गौणपने रखते हुए किया जाता है वह सम्यक् है, इसके विपरीत अन्य समवायों के बिना मात्र एक ही समवाय से कार्य की उत्पत्ति माने वह मिथ्या है। ऐसी मान्यता वाले को गोम्मटसार कर्मकाण्ड में एकान्ती मिथ्यादृष्टि कहा है।

उपरोक्त पाँचों समवायों का स्व और पर के रूप में वर्गीकरण करें तो चार तो स्व कहे जावेंगे यथा स्वभाव, काललब्धि, होनहार एवं पुरुषार्थ ये चारों तो जीव में ही होंगे लेकिन एक निमित्त ही पर रूप समवाय रहेगा। इसी वर्गीकरण को जिनवाणी में स्व को अन्तरंग (आभ्यंतर) कारण कहा है और पर को बहिरंग (बाह्य) कारण कहा गया है। इसप्रकार जिनवाणी में अनेक नामों से, अनेक अपेक्षाओं से, अनेक जगह, अनेक-अनेक प्रकार से कथन आते हैं लेकिन सबका तात्पर्य वस्तुस्वातंत्र्य के सिद्धान्त के माध्यम से समझकर आत्मा में वीतरागता प्रगट करना है।

आचार्य श्री समंतभद्र स्वामी ने स्वयंभू स्तोत्र की वासुपूज्य भगवान की स्तुति के श्लोक में कहा है कि:-

बाह्योतरोपाधिसमग्रतेयं कार्येषु द्रव्यगतः स्वभावः ।
नैवान्यथा मोक्षविधिश्च पुंसा तेनाभिबन्द्यस्तमृषिर्बुधानाम् ।।५।।

अर्थ-कार्यों में यह बाह्य और आभ्यंतर दोनों कारणों की समग्रता, हे भगवन् आपके मत में द्रव्यगत स्वभाव है। अन्यथा पुरुष को मोक्ष की विधि भी नहीं बनती। इसलिए ऋद्धियों से युक्त आप बुधजनों से वन्दनीय हैं।

उपरोक्त श्लोक द्वारा भी यही सिद्ध किया है कि स्व और पर दोनों कारणों की समग्रता ही कार्य की उत्पत्ति होती है। उसमें पाँच प्रकार की स्थितियाँ सहजरूप से बनती ही वनती हैं; बनानी नहीं पड़ती मिलाना नहीं पड़ती वस्तु की स्थिति ही ऐसी है कि पाँचों स्थितियों का समवायीकरण निश्चितरूप से होता ही होता है। उन पाँच समवायों में

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

से एक पुरुषार्थ नाम का भी समवाय है अतः यह प्रश्न ही समाप्त हो जाता है कि कार्य की सम्पन्नता में पुरुषार्थ का कोई स्थान नहीं रहता।

मोक्षमार्ग में पुरुषार्थ की मुख्यता

इसपर से प्रश्न खड़ा होता है कि अगर कार्य की सम्पन्नता में पाँचों समवाय स्वतः ही मिलते ही मिलते हैं जिन पाँचों में पुरुषार्थ नाम का समवाय भी शामिल है, तो हमको पुरुषार्थ करने का भी अवकाश कहाँ रह जाता है? फलतः नियतवाद का ही प्रसंग उपस्थित रहेगा।

इसका समाधान आचार्यकल्प पं० टोडरमलजी ने मोक्षमार्ग प्रकाशक के नवमें अधिकार के पुरुषार्थ वाले प्रकरण में नीचे माफक दिया है।

"यहाँ प्रश्न है कि मोक्ष का उपाय काललब्धि आने पर भवितव्यतानुसार बनता है, या मोहादिक के उपशमादि होने पर बनता है, या अपने पुरुषार्थ से उद्यम करने पर बनता है सो कहो। यदि प्रथम दोनों कारणों के मिलने पर बनता है तो हमें उपदेश किसलिये देते हो? और पुरुषार्थ से बनता है तो उपदेश सब सुनते हैं, उनमें कोई उपाय कर सकता है, कोई नहीं कर सकता; सो कारण क्या?

समाधानः—एक कार्य होने में अनेक कारण मिलते हैं। सो मोक्ष का उपाय बनता है वहाँ तो पूर्वोक्त तीनों ही कारण मिलते हैं, और नहीं बनता वहाँ तीनों ही कारण नहीं मिलते। पूर्वोक्त तीनों कारण कहे उनमें काललब्धि व होनहार तो कोई वस्तु ही नहीं है; जिस काल में कार्य बनता है वही काललब्धि, और जो कार्य हुआ वही होनहार। तथा जो कर्म के उपशमादि हैं वह पुद्गल की शक्ति है, उसका आत्मा कर्ता-हर्ता नहीं है। तथा पुरुषार्थ से उद्यम करते हैं सो यह

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

आत्मा का कार्य है; इसलिये आत्मा को पुरुषार्थ से उद्यम करने का उपदेश देते हैं।"

इसके आगे फिर कहते हैं कि–"इसलिये जो पुरुषार्थ से मोक्ष का उपाय करता है उसको सर्व कारण मिलते हैं और उसको अवश्य मोक्ष की प्राप्ति होती है–ऐसा निश्चय करना।"

इसप्रकार उपरोक्त कथन से निश्चित होता है कि कार्य की सम्पन्नता में उपरोक्त पाँचों समवायों की एकसाथ स्वतः समग्रता होती ही है, लेकिन इन पाँचों में से जीव तो बुद्धिपूर्वक एकमात्र पुरुषार्थ ही कर सकता है, बाकी के चारों समवायों के संबंध में यह जीव कुछ भी नहीं कर सकता, वे तो अपने आप ही स्वयं कार्य की सम्पन्नता के समय मिलेंगे ही मिलेंगे। अतः पाँच समवायों के सिद्धान्त समझनेवाले का निःशंकतया एकमात्र पुरुषार्थ ही कर्तव्य है; नियतवाद को कोई अवकाश नहीं रह सकता।

कर्मोदय में आत्मा का पुरुषार्थ अकार्यकारी कहनेवाले कथनों का अभिप्राय

जिनवाणी में ऐसा कथन आता है कि जैसा-जैसा कर्म का उदय आता है, वैसे-वैसे आत्मा के भाव होते हैं। ऐसे कथनों के द्वारा ऐसी शंका खड़ी हो जाना स्वाभाविक है कि कर्म का उदय जब अनुकूल होगा तभी आत्मा पुरुषार्थ कर पावेगा, अतः पुरुषार्थ करने का उपदेश निरर्थक दीखने लगता है? लेकिन इस कथन का तात्पर्य ऐसा है नहीं, यह कथन तो कर्म कहो अथवा अन्य कोई भी निमित्त कहो पांच समवायों में एक निमित्त समवाय भी है उसकी मुख्यता से किया गया है, इसका तात्पर्य ऐसा नहीं है कि कार्य की सम्पन्नता के समय अकेला एक निमित्त ही समवाय था और चारों समवायों का अभाव ही था। यह कथन एक निमित्त समवाय को मुख्य करके अन्य समवायों को गौणरूप में रखते हुए किया गया है, क्योंकि कथन तो पाँच

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

समवायों में से किसी एक समवाय की मुख्यता से ही हो सकता है, अन्य कोई उपाय है ही नहीं। इसप्रकार के कथन को समझने के समय अपनी मान्यता स्पष्ट होनी चाहिए कि कार्य की सम्पन्नता तो पाँचों की समग्रता में ही हुई है, मात्र कथन एक की मुख्यता से किया गया है।

काललब्धि के अभाव में पुरुषार्थ अकार्यकारी कथन का अभिप्राय

इसीप्रकार जिनवाणी में, काललब्धि की मुख्यता से कथन आते हैं, तथा भवितव्यता योग्यता नियति, होनहार, क्रमबद्ध आदि की मुख्यता से भी कथन आते हैं; उन कथनों को भी उपरोक्त सिद्धान्त को दृष्टिगत रखकर ही समझना चाहिए। आचार्य श्री समन्तभद्र स्वामी ने स्वयंभूस्तोत्र की सुपार्श्वनाथ भगवान की स्तुति के श्लोक ३ में भवितव्यता की मुख्यता से कहा भी है कि:–

अलंघ्यशक्तिर्भवितव्यतेयं हेतुद्वयाऽऽविष्कृत-कार्य-लिंगा ।
अनीश्वरो जन्तुरहंक्रियार्तः संहत्य कार्येष्विति साध्ववादीः ।।३।।

अर्थः–हेतुद्वय के द्वारा उत्पन्न होने वाला कार्य ही जिसका लिंग है ऐसी यह भवितव्यता अलंघ्य शक्ति है। अहंकार से पीड़ित सुखादिक कार्यो के सम्पन्न करने में समर्थ नहीं है। यह आपने ठीक ही कहा है अर्थात् जैसी वस्तुस्थिति है वैसा कहा है।।३।।

इस प्रकार जिनवाणी का कोई भी कथन एकान्त तथा पराधीनता पोषक एवं पुरुषार्थ का घातक नहीं हो सकता; सब कथनों का तात्पर्य मात्र एक वीतरागता का उत्पादन ही होता है।

आचार्य अमृतचंद्र देव ने पंचास्तिकाय संग्रह की गाथा १७२ की टीका में भी कहा है कि:–

"अलं विस्तरेण। स्वस्ति साक्षान्मोक्षमार्गसारत्वेन शास्त्र तात्पर्यभूताय वीतरागत्वायेति।"

अर्थ–विस्तार से वस हो। जयवंत वर्ते वीतरागता जो कि साक्षात्

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

मोक्षमार्ग का सार होने से शास्त्र तात्पर्यभूत है।

इसप्रकार कार्य सम्पन्नता में स्वाधीनता तथा पाँचों समवायों की समग्रता स्वीकार करते हुए, आत्मा को करने योग्य एक मात्र पुरुषार्थ ही है, ऐसा मानकर मोक्षमार्ग प्राप्त करने का प्रयत्न करना चाहिये।

मोक्षमार्ग प्राप्त करने का पुरुषार्थ तत्व निर्णय

इस पर से प्रश्न उपस्थित होता है कि मोक्षमार्ग प्राप्त करने का पुरुषार्थ क्या है?

इस विषय की स्पष्टता के लिये जिज्ञासु जीवों को मोक्षमार्ग प्रकाशक ग्रन्थ के नौवें अधिकार का "पुरुषार्थ से ही मोक्ष प्राप्ति" का पूरा प्रकरण पृष्ठ ३०९ से ३१३ तक अवश्य पढ़ना चाहिए। उसके पृष्ठ ३१२ पर कहा है कि–

"तथा इस अवसर में जो जीव पुरुषार्थ से तत्वनिर्णय करने में उपयोग लगाने का अभ्यास रखें, उनके विशुद्धता बढ़ेगी; उससे कर्मों की शक्ति हीन होगी, कुछ काल में अपने-आप दर्शनमोह का उपशम होगा; तब तत्वों की यथावत् प्रतीति आवेगी। **सो इसका तो कर्तव्य तत्व निर्णय का अभ्यास ही है,** इसी से दर्शनमोह का उपशम तो स्वयमेव होता है; उसमें जीव का कर्तव्य कुछ नहीं है।"

उपरोक्त समस्त विषयों पर विचार करने के पश्चात् भी जो जीव तत्व निर्णय रूप अभ्यास करने में उपरोक्त पांचों समवायों में से किसी एक समवाय, कर्म अथवा अन्य निमित्त आदि का बहाना लेकर तत्वनिर्णय में उपयोग नहीं लगाता, उसको भी पुरुषार्थ जाग्रत करने के लिए सचेत करते हुए उक्त ग्रंथ के पृष्ठ ३११ पर कहते हैं कि–

"**और तत्व निर्णय करने में किसी कर्म का दोष है नहीं, तेरा ही दोष है,** परन्तु तू स्वयं तो महन्त रहना चाहता है और अपना दोष कर्मादिक को लगाता है; सो जिन आज्ञा माने तो ऐसी अनीति सम्भव नहीं है। तुझे विषय कषाय रूप ही रहना है, इसलिये झूठ बोलता है।

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

मोक्ष की सच्ची अभिलाषा हो तो ऐसी युक्ति किसलिए बनाएं? सांसारिक कार्यों में अपने पुरुषार्थ से सिद्धि न होती जाने, तथापि पुरुषार्थ से उद्यम किया करता है, यहाँ पुरुषार्थ खो बैठा; इसलिए जानते हैं कि मोक्ष को देखा-देखी उत्कृष्ट कहता है; उसका स्वरूप पहिचानकर उसे हितरूप नहीं जानता। हित जानकर उसका उद्यम बने सो न करे यह असंभव है।"

उपरोक्त कथन सुनकर भी जो जीव तत्व निर्णय में पुरुषार्थ नहीं लगाते उनके लिये उक्त ग्रन्थ के पृष्ठ ३१२ पर ही कहा है कि :–

"इसलिये जो विचार शक्ति सहित हो और जिसके रागादिक मन्द हों–वह जीव पुरुषार्थ से उपदेशादिक के निमित्त से तत्वनिर्णयादि में उपयोग लगाए तो उसका उपयोग वहाँ लगे और तब उसका भला हो। यदि इस अवसर में भी तत्व निर्णय करने का पुरुषार्थ न करे, प्रमाद से काल गंवाये–या तो मन्द रागादि सहित विषय कषायों के कार्यों में ही प्रवर्ते, या व्यवहार धर्म कार्यों में प्रवर्ते; तब अवसर तो चला जायेगा और संसार में ही भ्रमण होगा।"

उक्त तत्व निर्णय की महिमा बताते हुए पंडित प्रवर टोडरमल जी उक्त ग्रन्थ के पृष्ठ २६० पर कहते हैं कि:–

"देखो तत्व विचार की महिमा। तत्व विचार रहित देवादिक की प्रतीति करे, बहुत शास्त्रों का अभ्यास करे, वृतादिक पाले, तपश्चरणादि करे, उसको तो सम्यक्त्व होने का अधिकार नहीं; और तत्व विचारवाला इनके बिना भी सम्यक्त्व का अधिकारी होता है।"

इसप्रकार उक्त कथन से यह स्पष्ट हो जाता है कि इस जीव को मोक्षमार्ग प्राप्त करने के लिये एकमात्र तत्व निर्णय रूप अभ्यास ही कार्यकारी है, अतः जिज्ञासु पात्र जीव को अन्य विकल्पों को छोड़कर एकमात्र तत्वनिर्णय करने का ही अभ्यास करना चाहिए। इस ही से मोक्षमार्ग की प्राप्ति संभव है।

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

उपसंहार

इस पुस्तक का मुख्य उद्‌देश्य यह सिद्ध करना है कि आत्मार्थी जीवको, जिसको यह लगा हो कि मेरी वर्तमान पर्याय तो निश्चित रूप से नाश होगी ही। वर्तमान में इस शरीर और इससे संबंधित स्त्री-पुरुष, मकान, धनदौलत, आदि जिसके जोड़ने, रक्षा करने में मैंने मेरी सारी जिन्दगी लगा दी है यह सब तो छोड़कर मुझे अन्यत्र जन्म लेना ही होगा अतः अन्यत्र कहां जावेगा, वहां क्या होगा आदि-आदि विचारों द्वारा जिसे संसार भ्रमण से भयभीतता उत्पन्न हुई हो और ऐसा उपाय प्राप्त करने की जिज्ञासा जागृत हुई हो कि मेरी आत्मा को इसप्रकार के जन्म और मरण नहीं करना पड़े ऐसा उपाय करना चाहिये। उस आत्मार्थी जीव को इस पुस्तक के माध्यम से सारे विश्व की व्यवस्था, उसमें ६ द्रव्यों का अस्तित्व एवं स्थिति तथा उन सबके स्वभाव सबके परिणमन की स्वतंत्रता, सबके स्वतंत्र परिणमन होने पर भी आपस में एक दूसरे से क्या संबंध है, सबके स्वतंत्र परिणमन होते रहने पर भी परतंत्रता क्यों दिखती है, संयोगी दृष्टि एवं स्वभाव दृष्टि का अंतर, निमित नैमित्तिक संबंध एवं कर्ताकर्म संबंध क्या है और दोनों में क्या अन्तर है। पांच समवायों की समग्रता निश्चित होते हुए भी पुरुषार्थ के द्वारा ही कार्य सिद्धी होती है। छह द्रव्यों के परिणमन स्वतः होते ही रहते हैं अन्य किसी द्वारा हस्तक्षेप संभव नहीं हो सकता है, इस विषय को चार अभावों के माध्यम से तथा स्वचतुष्टय में परचतुष्टय की नास्ति आदि अनेकतर्कों से सिद्ध किया गया है। "वत्थु सहावो धम्मो" के आधार से हर एक वस्तु अपने स्वभाव रूप ही परिणमन करती है, वही उस वस्तु का धर्म है। अतः

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

आत्मा भी मात्र ज्ञान रूप ही परिणमन कर सकती है और करती है लेकिन उसकी अस्वीकृति, अश्रद्धा, मात्र ही विकार उत्पन्न करती है, कर्म आदि के कारण विकारों की उत्पत्ति मानना मिथ्या मान्यता रूप मिथ्यात्व है आदि-आदि अनेक विषयों की चर्चाओं को समझकर हृदयंगम कर जिस आत्मार्थी ने यह स्वीकार कर लिया कि मेरी आत्मा के अन्दर कोई भी विकार उत्पन्न करा देने में असमर्थ है, ऐसी दृढ़तम श्रद्धा उत्पन्न करने वाला आत्मार्थी ही अपनी गलती को स्वीकार कर, उनके अभाव करने का प्रयास कर सकता है। ऐसा आत्मार्थी जीव जब उन विकारी भावों के अभाव करने का उपाय ढूँढता है उसको वह उपाय इस पुस्तक के भाग २ में वर्णित विषय के माध्यम से समझाने का प्रयास किया गया है, जिसको भली प्रकार समझ कर तीसरे भाग में बताई गई विधि का अनुसरण करे तो अपनी विभाव परणति का अभाव कर स्थाई शांति प्राप्त करने के मार्ग को अपना कर संसार भ्रमण से छुटकारा पा सकता है। इसप्रकार इस प्रथम भाग के विषय का उपसंहार होता है।

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

हमारे यहाँ प्राप्त महत्त्वपूर्ण प्रकाशन

समयसार/बृहज्जिनवाणी संग्रह/मोक्षशास्त्र	२०.००
प्रवचनसार/अष्टपाहुड	२०.००
प्रवचनरत्नाकर भाग १/आध्यात्मिक पाठ संग्रह	१२.००
पण्डित टोडरमल व्यक्तित्व और कर्तृत्व	११.००
नियमसार/पचास्तिकाय/समयसार नाटक/भावदीपिका	१०.००
मोक्षमार्गप्रकाशक/आ० कुन्दकुन्द और उनके टीकाकार	१०.००
सिद्धचक्र विधान/प्रवचनरत्नाकर भाग २, ३, ४ एवं ५	१०.००
ज्ञानगोष्ठी/जिनेन्द्र अर्चना (पूजन संग्रह)	७.००
तीर्थंकर महावीर और उनका सर्वोदय तीर्थ (हि., गु., म., क., अं.)	६.००
सत्य की खोज [कथानक] (हि., गु., म., क, त.)	६.००
पुरुषार्थसिद्धयुपाय/जिनवरस्यनयचक्रम्/धर्म के दश लक्षण (हि., गु., म., अं.)	६.००
क्रमबद्धपर्याय (हि., गु., म., क, त., अ.)/अध्यात्मरत्नत्रय	५.००
आचार्य कुन्दकुन्द और उनके पच परमागम	५.००
बारह भावना एक अनुशीलन/बनारसीविलास/अर्द्धकथानक	५.००
अध्यात्म संदेश/छहढाला/आचार्य कुन्दकुन्द और उनके पंच परमागम	५.००
बनारसीदास विशेषांक/वीतराग विज्ञान प्रशिक्षण निर्देशिका	५.००
श्रावक धर्म प्रकाश/भक्तामर प्रवचन/बनारसीदास (कार्ड्स)	५.००
गागर मे सागर/चौबीस तीर्थंकर पूजन/आप कुछ भी कहो	४.००
वीतराग विज्ञान पाठमाला भाग १, २, ३ का सेट	३.५०
बालबोध पाठमाला भाग १, २, ३ का सेट	२.७०
तत्वज्ञान पाठमाला भाग १, २ का सेट	२.६५
बनारसीदास व्यक्तित्व व कर्तृत्व/चौसठ ऋद्धिविधान/पंचकल्याणक	३.००
चिद्विलास/परमार्थवचनिका	२.५०
णमोकार महामन्त्र/विदेशों में जैनधर्म . उभरते पदचिह्न	२.००
जिनपूजन रहस्य	१.५०
मैं कौन हूँ/अहिंसा महावीर की दृष्टि में/भरतबाहुबली नाटक	१.२५
बारहभावना (पद्य)/लघु जैन सिद्धान्त प्रवेशिका/कुन्दकुन्द शतक	१.००
बनारसीदास जीवन और साहित्य/विदेशों मे जैनधर्म : बढ़ते कदम	१.००
जिनेन्द्र वंदना और बारह भावना/णमोलोए सव्व साहूणं	१.००
महावीर वन्दना/मैं ज्ञानानन्द स्वभावी हूँ (केलेण्डर)	०.५०
गोम्मटेश्वर बाहुबली/अर्चना (पूजन संग्रह)	०.४०
वीतरागी व्यक्तित्व : भगवान महावीर (हि., गु.)	०.२५

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

ओ३म्

आर्यसमाज के दस नियम

(संक्षिप्त व्याख्या)

प्रो. रत्न सिंह

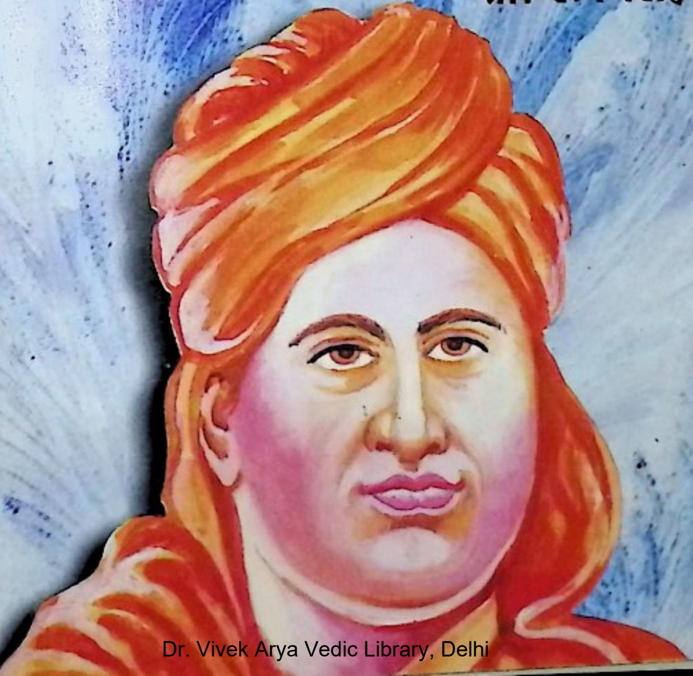

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

ओ३म्

आर्यसमाज के दस नियम

(संक्षिप्त व्याख्या)

लेखक
प्रोफेसर रत्नसिंह

विजयकुमार गोविन्दराम हासानन्द

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

प्रकाशक : विजयकुमार गोविन्दराम हासानन्द
४४०८, नई सड़क, दिल्ली–६
दूरभाष : ३९१४९४५, ३९७७२१६
E-mail : ajayarya@ndb.vsnl.net.in
Website : www.vedicbooks.com
संस्करण : प्रथम, फरवरी, २००१
मूल्य : १४.०० रुपये
शब्द संयोजन : भगवती लेज़र प्रिंट्स
नई दिल्ली–६५, दूरभाष : ६४१४३५९
मुद्रक : स्पिडो ग्राफिक्स, दिल्ली

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

प्रस्तावना

क्रान्ति के अग्रदूत, आदित्य ब्रह्मचारी वेदोद्धारक, यज्ञ-प्रचारक, योग-प्रसारक गोभक्त, भारतीय संस्कृत प्रेमी महर्षि दयानन्द सरस्वती ने चैत्रशुक्ल ५, संवत् १९३२ तदनुसार १० अप्रैल १८७५ में आर्यसमाज की स्थापना की। लगभग दो वर्ष पश्चात् लाहौर [अब पापिस्तान में] में आर्यसमाज की स्थापना की। बम्बई आर्यसमाज की स्थापना के समय जो नियम निर्मित किये गये थे, वे महर्षि दयानन्द ने नहीं बनाये थे। लाहौर आर्यसमाज स्थापना के समय नियमों का निर्माण महर्षि ने स्वयं अपनी आर्ष दृष्टि और ऋम्भरा प्रज्ञा से निर्मित किये थे।

महर्षि द्वारा निर्मित ये नियम बेजोड़ हैं। इन नियमों में चौथे नियम से लेकर अन्तिम दसवें नियम तक सात नियम तो ऐसे हैं जो सार्वभौम हैं। नास्तिक, आस्तिक, पुरानी, जैनी, किरानी, कुरानी— किसी भी मत, पन्थ और सम्प्रदाय को माननेवाला इन नियमों को मानने से इन्कार नहीं कर सकता। 'सत्य के ग्रहण करने और असत्य के त्यागने में सर्वदा उद्यत रहना चाहिए।' इस नियम का क्या कोई विरोध कर सकता है? "संसार का उपकार करना इस समाज का मुख्योद्देश्य है", इस नियम का क्या अपलाव किया जा सकता है, इस प्रकार अन्य नियम भी हैं।

हाँ, पहले नियम—"सब सत्य विद्या और जो पदार्थ विद्या से जाने जाते हैं, उन सबका आदिमूल परमेश्वर है", का उच्चारण करते ही नास्तिक अलग हट जाएँगे। दूसरे नियम में ईश्वर के 'निराकार' और 'अजन्मा' विशेषणों को देखकर पौराणिक भी अलग हो जाएँगे। तीसरा नियम और समाज की शोभा और विशेषता है, जो संसार की किसी भी संस्था, सोसायटी, मत, पन्थ और सम्प्रदाय में नहीं मिलेगी।

आर्यसमाज के इन नियमों में गूढ़ रहस्य छिपे हुए हैं। आर्यसमाज के सभी प्रमुख सिद्धान्तों का इन नियमों में समावेश है, मनुष्य के कर्त्तव्यों का निर्देश है, सार्वभौम भाई-चारे का सन्देश है। संक्षेप

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

मनुष्य के द्वारा करणीय सभी आवश्यक बातों का संकेत है।

इन नियमों की विस्तृत व्याख्या होनी चाहिए थी। आर्यजगत् के दार्शनिक विद्वान् प्रो० रत्नसिंह जी ने इन नियमों की व्याख्या लिखना आरम्भ किया। सन् १९७६ में साप्ताहिक जन-ज्ञान में पाँच नियमों की व्याख्या प्रकाशित हुई और यह लेखमाला बन्द हो गई। मेरे और स्वामी विद्यानन्द सरस्वती के बार-बार आग्रह और निवेदन करने पर नियमों की व्याख्या पूर्ण हो गई। व्याख्या पाण्डित्यपूर्ण, खोज़पूर्ण और महर्षि के ग्रन्थों से समर्थित है। शैली मनमोहक है। इस व्याख्या को पढ़कर पाठक के हृदय पटल पर महर्षि के व्यक्तित्व की छाप अङ्कित हो जाएगी। इस कृति के लिए प्रो० रत्नसिंह जी आर्यजगत् के धन्यवाद के पात्र हैं।

प्रोफैसर महोदय में योग्यता है, सूझ-बूझ है, अपनी बात को प्रस्तुत करने की क्षमता है। यदि वे महर्षि दयानन्द के ग्रन्थों में बिखरे हुए दर्शनों के सूत्रों पर भी एक ग्रन्थ लिख दें तो अति कल्याणकर होगा। आशा है सुधी पाठक इसे स्वयं पढ़ेंगे और अन्यों को पढ़ने की प्रेरणा करेंगे।

वेद-मन्दिर
लेखरामनगर [इब्राहीमपुर]
दिल्ली-११००३६
दूरभाष : ७२०२२४९

विदुषामनुचरः
जगदीश्वरानन्द

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

प्राक्कथन

"इसलिए जो उन्नति करना चाहो तो 'आर्यसमाज' के साथ मिलकर उसके उद्देश्यानुसार आचरण करना स्वीकार कीजिये, नहीं तो कुछ हाथ न लगेगा।" यह विचार महर्षि दयानन्द ने सत्यार्थप्रकाश एकादश समुल्लास में ब्राह्मसमाज और प्रार्थनासमाज के गुण-दोषों की विवेचना करते हुए प्रकट किया है। महर्षि द्वारा ही आर्यसमाज की स्थापना चैत्र शुक्ल ५, शनिवार, संवत् १९३२ तदनुसार १० अप्रैल, सन् १८७५ को मुम्बई में हुई थी। वैसे तो इससे पूर्व राजकोट में आर्यसमाज स्थापित हो चुका था, जिसका कार्य ५-६ मास तक चलता रहा, परन्तु फिर एक अप्रत्याशित कारण से उसका कार्य बन्द हो गया। उधर मुम्बई का आर्यसमाज अभी तक चल रहा है, इसलिए मुम्बई में स्थापित आर्यसमाज की तिथि को ही आर्यसमाज-स्थापना-दिवस माना जाता है। मुम्बई में आर्यसमाज की स्थापना किस दिन हुई थी, इस विषय पर मतैक्य नहीं है। इस सम्बन्ध में दो मत हैं—१० अप्रैल और ७ अप्रैल। पं० युधिष्ठिर मीमांसक १० अप्रैल को सही मानते हैं जबकि सार्वदेशिक आर्यप्रतिनिधिसभा दिल्ली ने सन् १९३९ ई० में हुई अपनी बैठक में ७ अप्रैल को सही मानते हुए चैत्र शुक्ल १ संवत् १९३२ को आर्यसमाज-स्थापना-दिवस नियत किया है। अब सभी आर्यसमाजें इसी तिथि को आर्यसमाज स्थापना दिवस मनाती हैं।

आर्यसमाज के नियम

राजकोट आर्यसमाज के नियम स्वामी दयानन्द ने बनाये और वे मुद्रित कर लिये गये थे। इस समय उन नियमों की

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

एक भी प्रति उपलब्ध नहीं है। इसलिए उनके बारे में किसी भी प्रकार की कोई जानकारी नहीं है। मुम्बई में आर्यसमाज स्थापना के अवसर पर २८ अट्ठाईस नियमों की रचना की गई जो अगले दो वर्षों तक सब आर्यसमाजों को मान्य रहे। १९ अप्रैल, १८७७ ई० को स्वामीजी लाहौर पधारे, जहाँ उनको दीवान रतनचन्द दाढीवाले के बाग़ में ठहराया गया। कुछ धूर्तों ने दीवान साहब से शिकायत की कि दयानन्द को ईसाइयों ने उत्कोच देकर सब मनुष्यों को ईसाई बनाने के लिए नियत किया है, ऐसे नास्तिक को अपने बाग़ में ठहराने से आपको घोर पाप लगेगा। दीवान साहब उनकी बातों में आ गये और उन्होंने स्वामीजी से अन्य स्थान में जाकर ठहरने के लिए कहा। इस अवसर पर जिसने महाराज को आश्रय दिया वह खानबहादुर डॉक्टर रहीम खाँ थे। उन्होंने अत्यन्त प्रसन्नतापूर्वक अपनी कोठी उनको ठहरने के लिए दे दी। यहाँ दो मास तक स्वामीजी का प्रचारकार्य चलता रहा। श्रोताओं की वैदिक धर्म में श्रद्धा बढ़ती गई और उनकी रुचि आर्यसमाज-स्थापित करने की हुई। श्रद्धालुजनों के आग्रह और सहयोग से डॉक्टर रहीम खाँ की कोठी पर ज्येष्ठ शुक्ल १३ संवत् १९३४ विक्रमी तदनुसार २४ जून १८७७ ई० को लाहौर आर्यसमाज की स्थापना की गई। लाहौर आर्यसमाज की स्थापना के सम्बन्ध में एक विशेष बात यह है कि आर्यसमाज के जो नियम मुम्बई में बने थे, वे संख्या और विस्तार में अधिक थे और उनमें कितनी ही बातें ऐसी थीं जो उप-नियमों के अन्तर्गत आनी चाहिएँ थीं, क्योंकि वे आर्यसमाज के उद्देश्य और मन्तव्य से नहीं, प्रत्युत आर्यसमाज के संगठन और सदस्यों के परस्पर व्यवहार से सम्बन्ध रखती थीं, अतः स्वामीजी ने उनका संशोधन करना उचित समझा और उनके स्थान पर वर्त्तमान दस नियम रचे। आज यही नियम सब आर्यसमाजों में प्रचलित हैं।

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

आर्यसमाज क्या है ?

इसका उत्तर एक वाक्य में यह दिया जा सकता है— "सत्य पर आधारित एक सार्वभौम आर्यसंगठन का नाम आर्यसमाज है।"

इस वाक्य के दो भाग हैं—पहला भाग—आर्यसमाज सत्य पर आधारित है। दूसरा भाग—यह एक सार्वभौम संगठन है। संक्षेपतः इनपर विचार किया जाता है। यह सिद्ध है कि महर्षि दयानन्द को सत्य बहुत प्रिय था। पुष्टि में निम्न तथ्य प्रस्तुत हैं—

१. अपने प्रसिद्ध अमरग्रन्थ का नाम सत्यार्थप्रकाश, अर्थात् सत्य-सत्य अर्थ का प्रकाश रक्खा है।

२. इसी ग्रन्थ के उत्तरार्द्ध की अनुभूमिका में वे लिखते हैं—"मेरा तात्पर्य किसी की हानि वा विरोध करने में नहीं, किन्तु सत्यासत्य का निर्णय करने-कराने का है।"

३. आर्यसमाज मुम्बई की स्थापना के अवसर पर राजकृष्ण महाराज ने महर्षि दयानन्द से कहा—"नियमों में जीव-ब्रह्म के एकत्व के सिद्धान्त का समावेश होना चाहिए, पीछे से उसे छोड़ देंगे। ऐसा करने से हम अनेक लोगों को आर्यसमाज की ओर आकर्षित कर सकेंगे।" इसके उत्तर में महर्षि ने कहा—"मैं आर्यसमाज को असत्य पर कदापि स्थापित नहीं करूँगा।" (क्योंकि सत्य उन्हें बहुत प्रिय था)

४. क्योंकि सत्योपदेश के बिना अन्य कोई भी मनुष्य-जाति की उन्नति का कारण नहीं है। —सत्यार्थप्रकाशभूमिका

५. सर्वसत्य का प्रचार कर, सबको ऐक्यमत में करा, द्वेष छुड़ा, परस्पर में दृढ़ प्रीतियुक्त कराके, सबसे सबको सुख-लाभ पहुँचाने के लिए मेरा प्रयत्न और अभिप्राय है।

—स्वमन्तव्यामन्तव्यप्रकाश

६. आर्यसमाज के दस नियमों में से प्रथम पाँच नियमों

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

में प्रत्येक नियम में 'सत्य' शब्द का प्रयोग हुआ है।

दूसरे भाग में कहा गया है कि आर्यसमाज एक सार्वभौम आर्यसंगठन है। यह सत्य है कि आर्यसमाज किसी देश-विशेष या वर्ग-विशेष तक सीमित संगठन नहीं है। संसार का कोई भी व्यक्ति जो इसके मन्तव्यानुसार आचरण करना स्वीकार करता है, इसका सदस्य बन सकता है। इसकी पुष्टि में आर्यसमाज के संस्थापक महर्षि दयानन्द के विचार प्रस्तुत हैं—

१. संसार का उपकार करना इस समाज का मुख्य उद्देश्य है। —छठा नियम

२. "यद्यपि मैं आर्यावर्त्त देश में उत्पन्न हुआ और बसता हूँ तथापि जैसे इस देश के मत-मतान्तरों की झूठी बातों का पक्षपात न कर, याथातथ्य प्रकाश करता हूँ वैसे ही दूसरे देशस्थ वा मत वालों के साथ भी वर्त्तता हूँ।"

—सत्यार्थप्रकाशभूमिका

३. "मेरा कोई नवीन कल्पना वा मतमतान्तर चलाने का लेशमान्त्र भी अभिप्राय नहीं है, किन्तु जो सत्य है उसको मानना मनवाना और जो असत्य है उसको छोड़ना और छुड़वाना मुझको अभीष्ट है। यदि मैं पक्षपात करता तो आर्यावर्त्त में प्रचलित मतों में से किसी एक मत का आग्रही होता।" —स्वमन्तव्यामन्तव्यप्रकाश

४. (प्रश्न) तुम्हारा मत क्या है ? (उत्तर) वेद, अर्थात् जो-जो वेद में करने और छोड़ने की शिक्षा की है, उस-उसका हम यथावत् करना-छोड़ना मानते हैं।

—सत्यार्थप्रकाश समु० ३

५. मुम्बई में आर्यसमाज की स्थापना के अवसर पर स्वामीजी ने अपने भाषण में कहा था—"हमारा कोई स्वतन्त्र मत नहीं है। मैं तो वेद के अधीन हूँ।"

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

नियमों पर एक दृष्टि

कर्त्तव्यों को तीन वर्गों में विभाजित किया जा सकता है—(१) स्व के प्रति कर्त्तव्य, (२) अन्यों के प्रति कर्त्तव्य, (३) ईश्वर के प्रति कर्त्तव्य। आर्यसमाज के दस नियमों में इन तीनों वर्गों के कर्त्तव्यों का संकेत मिलता है। प्रथम दो नियमों में ईश्वर के प्रति कर्त्तव्य का संकेत है। ईश्वर का स्वरूप बतलाकर उसी की उपासना करने की बात कही है। नियम संख्या ३-४ और ५ में अपने प्रति कर्त्तव्यों का संकेत किया गया है। वे कर्त्तव्य हैं—वेद का पढ़ना-पढ़ाना और सुनना-सुनाना, सत्य का ग्रहण और असत्य का त्याग तथा सब काम धर्मानुसार करना। नियम संख्या ६,७,८,९ व १० में अन्यों के प्रति कर्त्तव्यों को बतलाया गया है। वे कर्त्तव्य इस प्रकार हैं—(क) संसार का उपकार करना, अर्थात् शारीरिक, आत्मिक और सामाजिक उन्नति करना। (ख) सबसे प्रीतिपूर्वक, धर्मानुसार यथायोग्य वर्त्तना। (ग) अविद्या का नाश और विद्या की वृद्धि करना। (घ) अपनी ही उन्नति से सन्तुष्ट न रहकर सबकी उन्नति करना और (ङ) सामाजिक सर्वहितकारी नियम पालने में परतन्त्र रहना।

नियमों में वैदिक सिद्धान्त—आर्यसमाज का धर्म वेद है। वैदिक सिद्धान्तों की विस्तृत व्याख्या महर्षि दयानन्दरचित ग्रन्थों में और उन सिद्धान्तों का संक्षेप 'स्वमन्तव्यामन्तव्यप्रकाश' में दिया गया है और उसका भी सार आर्यसमाज के नियमों में है। जो निम्न प्रकार है—

वैदिक सिद्धान्त

१. ईश्वर की सत्ता, जगत् का आदिमूल निमित्तकारण, वेद अपौरुषेय हैं। —पहला नियम

२. अद्वैतवाद, अवतारवाद, अनेकेश्वरवाद, मूर्त्तिपूजा का खण्डन। —दूसरा नियम

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

३. परम धर्म का उपदेश, दैनिक-जीवन कैसे व्यतीत करना चाहिए। —तीसरा, चौथा, पाँचवा नियम

४. आहार-विहार, वर्णाश्रम-व्यवस्था। —छठा नियम

५. यथा योग्य व्यवहार। —सातवाँ नियम

६. विद्या-अविद्या। —आठवाँ नियम

७. स्वार्थवाद, परार्थवाद, सामाजिक धर्म, स्वतन्त्रता व परतन्त्रता। —नवाँ, दसवाँ नियम

नियमों का क्रम—दर्शनशास्त्र की दो प्रमुख शाखाएँ हैं—तत्त्वज्ञान और प्राचारशास्त्र या नीतिशास्त्र। तत्त्वज्ञान के अन्तर्गत किसी पदार्थ के स्वरूप का वर्णन किया जाता है, अर्थात् जो पदार्थ जैसा होता है उसको वैसा कहा जाता है और वाक्य के विधेय में 'है' का प्रयोग किया जाता है। प्राचारशास्त्र का सम्बन्ध आचरण से होता है और इसके विधेय में 'चाहिए' का प्रयोग किया जाता है। 'चाहिए', 'है' पर आश्रित रहता है। आर्यसमाज के प्रथम तीन नियम तत्त्वज्ञान व ज्ञान-मीमांसा-सम्बन्धी हैं। इनमें ईश्वर की सत्ता, उसका स्वरूप, जगत् और आत्मा की सत्यता इन सब तत्त्वज्ञान-सम्बन्धी और वेदोत्पत्ति ज्ञान-मीमांसा-सम्बन्धी विषयों का उल्लेख है। इनमें 'है' क्रिया का प्रयोग किया गया है। अन्तिम सात नियम प्राचार सम्बन्धी हैं और इनके विधेय में 'चाहिए' का प्रयोग किया गया है। इस तथ्य को यहाँ स्पष्ट किया जाता है।

अब देखिए कि प्रथम तीन नियमों के विधेय में 'है' का प्रयोग किया गया है।

पहला नियम — सब सत्य विद्या............परमेश्वर है।

दूसरा नियम — ईश्वर सच्चिदानन्द स्वरूप.........सृष्टिकर्त्ता है।

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

तीसरा नियम — वेद सब सत्य विद्याओं.............. परम धर्म है।

इसके बाद अगले सातों नियमों के विधेय में 'चाहिए' का प्रयोग है।

चौथा नियम — सत्य के ग्रहण करने............रहना चाहिए।

पाँचवा नियम — सब काम धर्मानुसार........करने चाहिएँ।

छठा नियम — संसार का उपकार.................. उन्नति करना (चाहिए)।

सातवाँ नियम — सबसे प्रीतिपूर्वक.................. वर्त्तना चाहिए।

आठवाँ नियम — अविद्या का नाश.................. करनी चाहिए।

नवाँ नियम — प्रत्येक को अपनी ही............. समझनी चाहिए।

दसवाँ नियम — सब मनुष्यों को.................. परतन्त्र रहना चाहिए तथा स्वतन्त्र रहना (चाहिए)।

इससे स्पष्ट है कि इन नियमों की रचना का क्रम बहुत तर्कपूर्ण है। इनके क्रम में किसी भी प्रकार का परिवर्त्तन नहीं किया जा सकता। इसी प्रकार इन नियमों के शब्दों में कोई भी व्यक्ति तथा आर्यप्रतिनिधिसभा (प्रान्तीय वा सार्वदेशिक) किसी भी प्रकार की काट–छाँट, परिशोधन और परिवर्धन नहीं कर सकती। महर्षि दयानन्द ने जिस रूप में इनका निर्माण किया है, वही रूप सदैव रहेगा।

आर्यसमाजों के साप्ताहिक सत्संग में शान्तिपाठ से पूर्व आर्यसमाज के नियमों का सम्मिलित पाठ किया जाता है।

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

इसके अतिरिक्त अनेक आर्यशिक्षण-संस्थाओं में विद्यार्थियों को ये नियम कण्ठस्थ कराये जाते हैं। इस प्रकार आर्यजनों में इन नियमों का व्यापक प्रचार है। इन नियमों की भावना और सिद्धान्तों को सही प्रकार से समझ सकें, इस उद्देश्य से मैंने प्रस्तुत पुस्तक में नियमों की सरल व्याख्या करने का साहस किया है। अपनी अल्प बुद्धि के अनुसार मैंने जैसा समझा है, वैसा लिख दिया है।

आशा है स्वाध्यायशील आर्यजन इस प्रयास से लाभान्वित होंगे और त्रुटियों की ओर मेरा ध्यान दिलाने का कष्ट करेंगे।

प्रोफेसर रत्नसिंह
बी-२१, गान्धीनगर,
गाजियाबाद (उ०प्र०)

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

पहला नियम

सब सत्यविद्या और जो पदार्थ विद्या से जाने जाते हैं, उन सबका आदिमूल परमेश्वर है।

इस नियम के तीन भाग हैं—

१. सब सत्यविद्या, २. विद्या (सत्यविद्या) से जो पदार्थ जाने जाते हैं, ३. परमेश्वर उन सबका, अर्थात् सत्यविद्या और उससे जिन पदार्थों का बोध होता है, आदिमूल है।

यहाँ सत्यविद्या, पदार्थ तथा आदिमूल पदों के अर्थ विचारणीय हैं, यतः ये दसों नियम महर्षि दयानन्दजी द्वारा रचित हैं, अतः उक्त पदों का वही अर्थ ग्राह्य है, जो उन्होंने अपने ग्रन्थों में किया है।

सर्वप्रथम 'विद्या' शब्द के अर्थ पर विचार किया जाता है। इस शब्द के अर्थ ये हैं—

"जिससे ईश्वर से लेके पृथिवीपर्यन्त पदार्थों का सत्य विज्ञान होकर, उनसे यथायोग्य उपकार लेना होता है, इसका नाम 'विद्या' है।"

—आर्योद्देश्यरत्नमाला, सं० १६

"जिससे पदार्थ को यथावत् जानकर न्याययुक्त कर्म किये जावें वह 'विद्या' और जिससे किसी पदार्थ का यथावत् ज्ञान न होकर अन्यायरूप कर्म किये जाएँ वह 'अविद्या' कहाती है।"

—व्यवहारभानुः

"जिससे पदार्थों का यथार्थस्वरूप बोध होवे वह विद्या कहाती है।"

—सत्यार्थप्रकाश, समु० ९

इन उद्धरणों का सार यही है कि 'विद्या' वह है जिससे संसार के समस्त पदार्थों, चेतन व अचेतन दोनों का यथार्थ ज्ञान प्राप्त होता है। प्रायः लोक में विद्या का प्रयोग भिन्न अर्थ

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

में भी किया जाता है। जेब काटने व धोखा देने की कला को भी विद्या कहा जाता है। जादू, टोना व दूसरों को ठगना भी 'विद्या' है। क्या परमेश्वर इस प्रकार की विद्याओं का भी आदिमूल है ? यदि उक्त नियम में केवल विद्या शब्द का ही प्रयोग किया जाता तो कुछ व्यक्ति इस प्रकार की शङ्का कर सकते थे, यद्यपि यह शङ्का बहुत उथली है। महर्षि दयानन्दजी ने विद्या शब्द से पूर्व सत्य विशेषण रखकर इस प्रकार की शङ्का के लिए कोई गुंजाइश नहीं छोड़ी। वैसे यदि गहन दृष्टि से देखा जाए तो महर्षि की दृष्टि में 'विद्या' और 'सत्यविद्या' में कोई अन्तर नहीं है, किन्तु फिर भी नियम के भाव को अधिक स्पष्ट करने के लिए यहाँ 'सत्यविद्या' पद का प्रयोग किया गया है।

अब प्रश्न यह उपस्थित होता है कि सत्यविद्या किसे कहते हैं ? सत्यविद्या उसे कहते हैं जो तीन काल में एकरस रहती है, जिसका विकास या ह्रास, अर्थात् उन्नति या अधोगति नहीं होती। यह अपरिवर्तनशील, नित्य व शाश्वत होती है, जैसे दो और दो का योग सदैव चार होता है। किसी भी काल में इसके योग में ह्रास व वृद्धि सम्भव नहीं। इस दृष्टि से मनुष्य के ज्ञान को सत्यविद्या की संज्ञा नहीं दी जा सकती, क्योंकि उसका ज्ञान परिवर्तनशील है, उसमें उन्नति व अधोगति होती रहती है, अतः स्पष्ट है कि ईश्वरीय ज्ञान को ही सत्यविद्या कहा जा सकता है और उसी ज्ञान को वेद नाम से पुकारा जाता है। इस धारणा की पुष्टि तृतीय नियम से होती है। वहाँ लिखा है कि—"वेद सब सत्य विद्याओं का पुस्तक है।" इस प्रकार प्रस्तुत नियम में प्रयुक्त 'सत्यविद्या' पद का अर्थ हुआ 'वेद'। सत्यविद्या से पूर्व विशेषणरूप में सब पद रक्खा हुआ है, अतः 'सब सत्यविद्या' पद का अभिप्राय हुआ 'सब वेद', अर्थात् चारों वेद।

नियम का दूसरा भाग इस प्रकार है—"जो पदार्थ विद्या

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

से जाने जाते हैं।'' इसका अर्थ हुआ कि 'वेद' से जिन-जिन पदार्थों का ज्ञान होता है। वेद का प्रतिपाद्य विषय क्या है, इसकी व्याख्या तृतीय नियम में की जाएगी। यहाँ पदार्थ पद का अर्थ विचारणीय है। तर्क-कौमुदी के अनुसार 'अभिधेया: पदार्था:', अर्थात् शब्द द्वारा व्यक्त किसी भी वस्तु को पदार्थ कहते हैं। इस अर्थ में संसार की सभी ज्ञेय वस्तुओं को पदार्थ कह सकते हैं। पदार्थों का वर्गीकरण करते हुए वैशेषिक दर्शन में छह पदार्थ माने गये हैं, जिनके नाम ये हैं—द्रव्य, गुण, कर्म, सामान्य, विशेष और समवाय। बाद में चलकर अभाव को भी सातवाँ पदार्थ मान लिया गया है। द्रव्य के ९ भेद हैं, जो इस प्रकार हैं—पृथिवी, जल, अग्नि, वायु, आकाश, काल दिग्, आत्मा (जीवात्मा व परमात्मा) तथा मन। सत्यार्थप्रकाश अष्टमसमुल्लास में महर्षि दयानन्दजी ने परमेश्वर व जीव के साथ ही काल और आकाश को भी अनादि माना है। अनादि पदार्थ कार्यरूप में परिणत न होने के कारण अपने निमित्तकारण की अपेक्षा नहीं रखते। यदि प्रस्तुत नियम में पदार्थ पद का प्रयोग उक्त अर्थ में किया जाए तो यह मानना पड़ेगा कि ईश्वर अपना स्वयं का तथा जीवात्मा, काल व आकाश का निमित्तकारण है, अर्थात् वह इन सबको उत्पन्न करता है, किन्तु यह आशय महर्षि के सिद्धान्त के विरुद्ध है, अत: पदार्थ पद का अर्थ यहाँ पर कार्यजगत् करना ही समीचीन है, क्योंकि किसी शब्द का अर्थ प्रकरण और लेखक के आशय को लेकर किया जाता है।

नियम के तीसरे भाग में कहा गया है कि उन सबका, अर्थात् वेद और कार्यजगत् का परमेश्वर आदिमूल है। आदि का अर्थ है—जिसके पूर्व और परे कुछ न हो। मूल का अर्थ है कारण। सत्यार्थप्रकाश अष्टम समुल्लास में सांख्यदर्शन के ''मूले मूलाभावाद-मूलं मूलम्'' सूत्र के अर्थ में महर्षि ने लिखा है कि—'मूल का मूल', अर्थात् 'कारण का कारण

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

नहीं होता।' इस अर्थ के आधार पर आदिमूल का अर्थ हुआ आदिकारण। सत्यार्थप्रकाश के इस प्रकरण में आदिकारण का अर्थ प्रकृति किया गया है। इस आधार पर कुछ विद्वान् बिना गम्भीरता से विचार किये प्रस्तुत नियम में प्रयुक्त आदिमूल शब्द का अर्थ प्रकृति लेकर इस नियम का यह अर्थ करने का प्रयत्न करते हैं कि परमेश्वर इस जगत् का उपादानकारण है, क्योंकि आदिमूल का अर्थ है प्रकृति और प्रकृति है जगत् का उपादानकारण। उनकी दृष्टि में आदिमूल का अर्थ उपादानकारण है, परन्तु यह व्याख्या सर्वथा अनुचित है और महर्षि के मन्तव्य के सर्वथा विरुद्ध। सत्यार्थप्रकाश अष्टमसमुल्लास में महर्षि ने प्रश्नोत्तररूप में इस विषय का विवेचन इस प्रकार किया है—

प्रश्न—जगत् के कारण कितने होते हैं?

उत्तर—तीन—एक निमित्त, दूसरा उपादान, तीसरा साधारण। निमित्तकारण उसको कहते हैं कि जिसके बनाने से कुछ बने, न बनाने से न बने। आप स्वयं बने नहीं, दूसरे को प्रकारान्तर बना देवे। दूसरा उपादानकारण उसको कहते हैं, जिसके बिना कुछ न बने वही अवस्थान्तररूप होके बने और बिगड़े भी। तीसरा साधारणकारण उसको कहते हैं कि जो बनाने में साधन और साधारण निमित्त हो। निमित्तकारण दो प्रकार के हैं। एक, सब सृष्टि को कारण से बनाने, धारने और प्रलय करने तथा सबकी व्यवस्था रखनेवाला मुख्य निमित्तकारण परमात्मा। दूसरा, परमेश्वर की सृष्टि में से पदार्थों को लेकर अनेकविध कार्यान्तर बनानेवाला साधारण जीव। उपादानकारण, प्रकृति, परमाणु जिसको सब संसार के बनाने की सामग्री कहते हैं।

इस उदाहरण से स्पष्ट है कि महर्षि के मन्तव्यानुसार ईश्वर जगत् का निमित्तकारण है, उपादानकारण नहीं। नवीन वेदान्ती लोग मकड़ी का उदाहरण देकर ब्रह्म को जगत् का

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

उपादानकारण सिद्ध करते हैं। उनका विचार है कि जिस प्रकार बिना किसी बाह्य सामग्री की सहायता लिये अपने भीतर से तन्तु निकालकर मकड़ी जाला बना लेती है, उसी प्रकार ब्रह्म अपने में से जगत् को बना आप जगदाकार हो जाता है। इस मत के खण्डन में महर्षि का कथन है कि—"जो तुम्हारे कहने के अनुसार जगत् का उपादानकारण ब्रह्म होवे तो वह परिणामी, अवस्थान्तरयुक्त, विकारी हो जावे और उपादानकारण के गुण-कर्म-स्वभाव कार्य में भी आते हैं।" ब्रह्म चेतन है, इसलिए पृथिव्यादि कार्य भी चेतन होने चाहिएँ, किन्तु ऐसा देखने में नहीं आता। इसका कारण यही है कि ईश्वर जगत् का केवल निमित्तकारण है; उपादानकारण नहीं। इस आधार पर प्रस्तुत नियम में आदिमूल का अर्थ निमित्तकारण ही हुआ, अतः इस नियम का भाव इस प्रकार हुआ—वेद और कार्यजगत् का निमित्तकारण परमेश्वर है। बीज रूप में इस नियम से आर्यसमाज के दो मौलिक-सिद्धान्तों की जानकारी मिलती है—(१) **वेद अपौरुषेय** हैं, (२) परमेश्वर जगत् का निमित्तकारण है। इसमें यह भी अन्तर्निहित है कि यह जगत् सत्य है, मिथ्या नहीं और नवीन वेदान्तियों का ब्रह्मवाद का सिद्धान्त असत्य है। इसके साथ ही इस नियम में **भौतिकवाद** के इस मत का भी खण्डन हो जाता है कि जगत् बिना किसी चेतन सत्ता की सहायता के प्रकृति से स्वयं उत्पन्न हो जाता है। इन तीनों सिद्धान्तों का विवेचन करना यहाँ सम्भव न हो सकेगा, तथापि प्रथम सिद्धान्त—'वेद अपौरुषेय हैं', का संक्षेपतः वर्णन करना आवश्यक एवं उपयुक्त प्रतीत होता है।

वेद ही ईश्वरीय ज्ञान है

आर्यसमाज की मान्यता है कि वेद ईश्वर द्वारा प्रदत्त वह सर्वप्रथम ज्ञान है जो मनुष्यों को सृष्टि-उत्पत्ति के साथ

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

दिया था। यह मान्यता केवल शब्दप्रमाण पर ही आधारित नहीं हैं, वरन् तर्क-सङ्गत भी है। वेद की अपौरुषेयता पर विचार करते समय हमारे सामने एक प्रश्न उपस्थित होता है, जिसपर विचार करना आवश्यक है। वह यह है कि विभिन्न मतावलम्बी सभी लोग अपने-अपने धर्मग्रन्थों को ईश्वरीय ज्ञान मानते हैं। ऐसी अवस्था में किसको ईश्वरीय ज्ञान माना जाए और किसको नहीं? इसके उत्तर में हम यही कह सकते हैं कि सब मतों के दावों को कसौटी पर कसकर देख लो जो उसपर खरा उतर जाए वही ईश्वरीय ज्ञान हो सकता है। यहाँ कतिपय कसौटियाँ प्रस्तुत की जाती हैं—

१. ईश्वरीय ज्ञान मानवसृष्टि के साथ ही सृष्टि के आरम्भ में मिलना चाहिए।

२. ईश्वरीय ज्ञान किसी देशविशेष की भाषा में न हो।

३. ईश्वरीय ज्ञान के ग्रन्थ में किसी देश का भूगोल व इतिहास नहीं होना चाहिए।

४. उसमें कोई भी बात सृष्टिक्रम के विपरीत न हो।

५. वह ज्ञान ईश्वर के गुण-कर्म और स्वभाव के अनुकूल होना चाहिए।

६. मानव के पूर्ण कल्याण के लिए जितना ज्ञान अपेक्षित है, वह उस ग्रन्थ में होना चाहिए।

कहने की आवश्यकता नहीं कि इन कसौटियों पर केवल वेद ही खरा उतरता है। वेद का प्रकाश ईश्वर ने सृष्टि के आरम्भ में अग्नि, वायु, आदित्य और अङ्गिरा नामक चार ऋषियों के हृदय में किया था। आर्यसमाज का दावा है कि वेद में न इतिहास है और न उसमें कोई सृष्टिक्रम के विरुद्ध बात है। वेद के ईश्वरीय ज्ञान होने के सम्बन्ध में कई शङ्काएँ प्रस्तुत की जाती हैं। उन सबका महर्षि दयानन्दजी ने

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

सत्यार्थप्रकाश सप्तमसमुल्लास और ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका के वेदोत्पत्तिविषय प्रकरण में विस्तार के साथ तर्कसङ्गत समाधान किया है।

इस नियम की एक दूसरी व्याख्या

कुछ विद्वानों ने इस नियम की एक भिन्न व्याख्या की है उस पर भी विचार कर लेना चाहिए। उनके विचार में अन्वय करने के उपरान्त इस नियम का रूप यह होगा—"जो सब सत्यविद्या और पदार्थविद्या से जाने जाते हैं, उन सबका आदि मूल परमेश्वर है।"

जो सबका अर्थ है—ईश्वर, जीव व प्रकृति। ये तीनों अनादि व अनन्त हैं।

सत्यविद्या कहते हैं ब्रह्मविद्या को। इसी को पदार्थविद्या कहते हैं।

पदार्थविद्या का अर्थ है सृष्टिविद्या-सम्बन्धी विद्या। यही भौतिक विज्ञान है। इसी को अपरा विद्या कहते हैं।

इस प्रकार इस नियम का यह अर्थ हुआ कि ब्रह्मविद्या और सृष्टिविद्या से ईश्वर, जीव व प्रकृति को जाना जाता है और ईश्वर इन सबका निमित्तकारण है।

यह अर्थ दोषपूर्ण है। इसमें कई आपत्तियाँ हैं। प्रथम आपत्ति तो यह है कि ईश्वर अपना स्वयं का तथा जीव व प्रकृति का निमित्तकारण नहीं है। द्वितीय आपत्ति यह है कि तीसरे नियम में आता है कि—'वेद सब सत्यविद्याओं का पुस्तक हैं। यदि सत्यविद्या का अर्थ ब्रह्मविद्या है तो क्या वेद में पदार्थविद्या नहीं है? तीसरे नियम में सत्यविद्या नहीं बल्कि सत्यविद्याओं लिखा है। इस अवस्था में सत्य-विद्या का अर्थ केवल ब्रह्मविद्या कैसे किया जाएगा? अतः इस नियम का जो अर्थ हमने पहले किया है, वही ठीक है।

जैसाकि हम प्राक्कथन में लिख चुके हैं कि आर्यसमाज

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

के दश नियमों का आधार वेद हैं, यहाँ प्रमाणरूप में इस नियम के आधार वेद-मन्त्र उद्धृत किये जाते हैं—

१. ऋतं च सत्यं चाभीद्धात्तपसोऽध्यजायत।

अर्थ—ऋतं यथार्थं सर्वविद्याधिकरणं वेदशास्त्रम् (यथार्थ सब विद्या का ख़ज़ाना वेदशास्त्र)

सत्यं—त्रिगुणात्मक प्रकृति जिसका नाम अव्यक्त, सत्, प्रधान है जो स्थूल व सूक्ष्म जगत् का कारण है (अर्थात् प्रकृति) वह भी (अध्यजायत) कार्यरूप में प्रकट हुई। भावार्थ यह है कि ईश्वर ने वेद की रचना की और कार्यजगत् को प्रकृति से उत्पन्न किया।

२. तस्माद्यात्सर्वहुत ऋचः सामानि जज्ञिरे।
छदाᳬसि जज्ञिरे तस्माद्यजुस्तस्मादजायत॥

—यजुः० अ० ३१, मं० ७

अर्थ—उस परब्रह्म से (**ऋचः**) ऋग्वेद (**यजुः**) यजुर्वेद (**सामानि**) सामवेद और (**छन्दांसि**) अथर्ववेद ये चारों वेद उत्पन्न हुए हैं।

३. यस्मादृचो अपातक्षत् यजुर्यस्मादपाकषन्।
सामानि यस्य लोमाण्यथर्वाङ्गिरसो मुखम्।
स्कम्भं तं ब्रूहि कतमः स्विदेव सः॥

—अथर्व० १०।७।२०

अर्थ—जो सर्वशक्तिमान् परमेश्वर है उसी से ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद, अथर्ववेद ये चारों उत्पन्न हुए हैं।

४. हिरण्यगर्भः समवर्त्तताग्रे भूतस्य जातः पतिरेक आसीत्। स दाधार पृथिवीं द्यामुतेमां कस्मै देवाय हविषा विधेम॥

—यजुः० १३।४

अर्थ—जो (**हिरण्यगर्भः**) स्वप्रकाशस्वरूप और जिसने प्रकाश करनेहारे सूर्य-चन्द्रमादि पदार्थ उत्पन्न करके धारण किये हैं जो (**भूतस्य**) उत्पन्न हुए सम्पूर्ण जगत् का (**जातः**) प्रसिद्ध (**पतिः**) स्वामी (**एकः**) एक ही चेतनस्वरूप

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

(**आसीत्**) था, जो (**अग्रे**) सब जगत् के उत्पन्न होने से पूर्व (**समवर्त्तत**) वर्त्तमान था (**सः**) सो (**इमाम्**) इस (**पृथिवीम्**) भूमि (**उत**) और (**द्याम्**) सूर्यादि को (**दाधार**) धारण कर रहा है। हम लोग उस (**कस्मै**) सुखस्वरूप (**देवाय**) शुद्ध परमात्मा के लिए (**हविषा**) ग्रहण करने योग्य योगाभ्यास और अतिप्रेम से (**विधेम**) विशेष भक्ति किया करें।

इस नियम से यह तो सर्वथा स्पष्ट ही है कि आर्यसमाज एक ईश्वर-विश्वासी समाज है। स्वभावतः प्रश्न होता है कि वह ईश्वर कौन है? उसका क्या स्वरूप है? इसका उत्तर अगले नियम में दिया गया है।

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

दूसरा नियम

ईश्वर सच्चिदानन्दस्वरूप, निराकार, सर्वशक्तिमान्, न्यायकारी, दयालु, अजन्मा, अनन्त, निर्विकार, अनादि, अनुपम, सर्वाधार, सर्वेश्वर, सर्वव्यापक, सर्वान्तर्यामी, अजर, अमर, अभय, नित्य, पवित्र और सृष्टिकर्त्ता है। उसी की उपासना करनी योग्य है।

संसार के सभी अवैदिक आस्तिक (ईश्वर-विश्वासी) सम्प्रदायों ने अपने-अपने तथाकथित धर्म-ग्रन्थों में ईश्वर के स्वरूप का वर्णन किया है, किन्तु उनमें एकरूपता का सर्वथा अभाव है। इसका कारण यह है कि साम्प्रदायिक लोगों ने ईश्वर का विवेचन तर्क के आधार पर न कर उसमें कल्पना का आश्रय लिया है। इसका परिणाम यह हुआ है कि जब कोई श्रद्धालु जिज्ञासु इन मत-मतान्तरों द्वारा प्रतिपादित ईश्वर के स्वरूप का अध्ययन करता है तो वह यह निर्णय नहीं कर पाता कि किस मत का ईश्वर वास्तविक है और किसका अवास्तविक। कोई ईश्वर को एक कहता है तो कोई अनेक, कोई उसे सर्वव्यापक मानता है, तो कोई उसे देशविशेष में स्थित मानता है। किसी ने उसे निराकार माना है तो दूसरे ने उसे साकाररूप में प्रस्तुत किया है। किसी का ईश्वर सगुण है तो किसी का निर्गुण। एक साधारण बुद्धि का व्यक्ति निर्णय नहीं कर पाता कि किसका ईश्वर सच्चा है और किसका झूठा?

महर्षि दयानन्दजी ने आर्यसमाज के दूसरे नियम में वेद के आधार पर ईश्वर के वास्तविक स्वरूप का वर्णन किया है। वेद ईश्वरीय ज्ञान है, यह प्रथम नियम में सिद्ध हो चुका है। ईश्वर पूर्ण है, अतः उसका ज्ञान भी पूर्ण है। उसके ज्ञान वेद पर आधारित ईश्वर का स्वरूप निश्चितरूपेण सत्य व

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

वास्तविक होगा, इसमें सन्देह की गुंजाइश हो ही नहीं सकती। महर्षि ने ईश्वर का स्वरूप प्रस्तुत करने के लिए उसके जिन गुणों का वर्णन कर उन्हें जिस क्रम में प्रस्तुत किया है, वह बड़ा विलक्षण है। आगे चलकर इसपर प्रकाश डाला जाएगा। इस नियम से अद्वैतवाद, अनेकेश्वरवाद, अवतारवाद व मूर्त्तिपूजा आदि कई अवैदिक विचारधाराओं का स्वतः खण्डन हो जाता है। इन सब बातों का दिग्दर्शन आगे चलकर होगा। सर्वप्रथम हम इस नियम में रक्खे हुए शब्दों पर क्रमशः विचार करते हैं—

सच्चिदानन्द—यह तीन शब्दों से मिलकर बना है। वे हैं सत्+चित्+आनन्द। इन तीनों का अर्थ पृथक्-पृथक् लिखते हैं—

सत्—(अस भुवि) इस धातु से सत् शब्द सिद्ध होता है—"यदस्ति त्रिषु कालेषु न बाध्यते तत् सद्ब्रह्म" जो सदा वर्त्तमान, अर्थात् भूत, भविष्यत्, वर्त्तमानकालों में जिसका बाध न हो, अर्थात् जो त्रिकालाबाध्य हो, उस परमेश्वर को सत् कहते हैं। परमेश्वर सदा विद्यमान रहता है, उसका नाश कभी नहीं होता, इसलिए उसे सत् कहते हैं। राम और कृष्णादि महापुरुषों को ईश्वर नहीं कह सकते, क्योंकि वे तीनों काल में विद्यमान नहीं रह सकते थे।

चित्—जो चेतनस्वरूप सब जीवों को चिताने और सत्यासत्य का जनानेहारा है, इसलिए उस परमात्मा का नाम 'चित्' है। ईश्वर जीवात्मा को सत्यासत्य का बोध किस प्रकार कराता है, इस सम्बन्ध में सत्यार्थप्रकाश सप्तम व द्वादश समुल्लास में महर्षि ने लिखा है कि पापाचरणोच्छा समय में भय, शङ्का, लज्जा तथा अच्छे कामों के करने में अभय, निःशङ्कता और आनन्दोत्साह उत्पन्न करके ईश्वर जीवात्मा को सत्यासत्य का बोध कराता है।

आनन्द—जिसमें सब मुक्त जीव आनन्द को प्राप्त होते

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

और जो सब धर्मात्मा जीवों को आनन्द-युक्त करता है, इससे ईश्वर का नाम आनन्द है।

इन तीनों शब्दों के विशेषण होने से परमेश्वर को 'सच्चिदानन्दस्वरूप' कहते हैं, अर्थात् सत्स्वरूप होने से सत्, चित्स्वरूप होने से चित् और आनन्दस्वरूप होने से आनन्द और इन तीनों को मिलाकर सत्+चित्+आनन्द=सच्चिदानन्दस्वरूप कहा गया है।

निराकार—जिसका कोई भी आकार नहीं और जो न कभी शरीर धारण करता है, इसलिए परमेश्वर का नाम 'निराकार' है।

सर्वशक्तिमान्—"सर्वा: शक्तयो विद्यन्ते यस्मिन् स सर्वशक्तिमानीश्वर:" जो अपने कार्य करने में किसी अन्य की सहायता की इच्छा नहीं करता, अपने ही सामर्थ्य से अपने सब काम पूरा करता है, इसलिए उस परमात्मा का नाम सर्वशक्तिमान् है। यहाँ 'सर्व' शब्द का अर्थ 'सब' नहीं है बल्कि इसका अर्थ है 'योग्य सब', अर्थात् जिसमें सम्पूर्ण योग्य शक्तियाँ हैं। इसका आशय यह है 'अपना कार्य करने में निरपेक्षता', अर्थात् अपने कार्य करने में किसी अन्य पर आश्रित नहीं। यही सर्वशक्तिमत्ता है। '**कर्तुमकर्तुमन्यथा कर्तुं समर्थ:**', अर्थात् करने योग्य और न करने योग्य को करने की सामर्थ्य रखनेवाले को सर्वशक्तिमान् नहीं कहते।

न्यायकारी—न्यायकर्त्ता को न्यायकारी कहते हैं। न्याय उस पक्षपातरहित धर्मरूप आचरण को कहते हैं, जो प्रत्यक्षादि प्रमाणों की परीक्षा से सत्य-सत्य सिद्ध हो। ईश्वर को न्यायकारी इसलिए कहते हैं कि उसका स्वभाव ही न्याय, अर्थात् पक्षपातरहित धर्म करने का है।

दयालु—जो अभय का दाता, सत्यासत्य सर्वविद्याओं को जानने, सब सज्जनों की रक्षा करने और दुष्टों को यथायोग्य

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

दण्ड देनेवाला है, इससे परमात्मा का नाम दयालु है।

अजन्मा—जो स्वयं जन्म नहीं लेता है, अर्थात् जन्मरहित को अजन्मा कहते हैं।

अनन्त—जिसका अन्त अवधि, मर्यादा, अर्थात् इतना लम्बा, चौड़ा, छोटा, बड़ा है—ऐसा परिमाण नहीं है, इसलिए परमेश्वर का नाम 'अनन्त' है।

निर्विकार—जिसमें कोई विकार, अर्थात् दोष न हो।

अनादि—जिसका आदिकारण कोई भी नहीं है, उसको अनादि कहते हैं।

अनुपम—जो उपमारहित है, अर्थात् अत्युत्कृष्ट है।

सर्वाधार—जो विश्वभर का आधार शक्तिरूप है।

सर्वेश्वर—जो सबका ईश्वर है।

सर्वव्यापक—जो सब जगत् में व्यापक है।

सर्वान्तर्यामी—जो सबके अन्तर् को जाननेवाला और सब जगत् को नियम में रखनेवाला है।

अजर—जो जीर्ण, अर्थात् क्षीण नहीं होता, वह जरारहित अजर कहाता है।

अमर—जिसको मरणधर्म हो ही नहीं और सदैव वर्त्तमान रहे।

अभय—जिसको किसी प्रकार का भय न हो, अर्थात् भयरहित।

नित्य—जो निश्चल, अविनाशी है।

पवित्र—जो स्वयं शुद्ध, सब अशुद्धियों से पृथक् और सबको पवित्र करनेवाला है, उसको पवित्र कहते हैं।

सृष्टिकर्त्ता—जो सब जगत् की रचना करनेवाला है।

उपासना—उपासना शब्द का अर्थ समीपस्थ होना है। इसका अभिप्राय अष्टाङ्ग योग से परमात्मा के समीप होकर

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

उसके आनन्दस्वरूप में अपने आत्मा को मग्न करना।

उसी की उपासना करनी योग्य है—जिस ईश्वर का लक्षण इस नियम में वर्णन किया गया है, उसी की उपासना करनी चाहिए। जो ऐसा न हो उसको न तो ईश्वर मानना चाहिए और न उसकी उपासना करनी चाहिए।

यह नियम आकार में सब नियमों से बड़ा है। इसमें ईश्वर-सम्बन्धी दार्शनिक पक्ष बहुत सुन्दर रीति से प्रस्तुत किया गया है। यहाँ ईश्वर के जिन गुणों का वर्णन किया गया है, उनसे कई अवैदिक मन्तव्यों का स्वतः खण्डन हो जाता है। अद्वैत वेदान्त के अनुसार ब्रह्म ही सत्य है, जगत् मिथ्या है और जीव व ब्रह्म में अभेद है।

इस नियम में ईश्वर को सृष्टिकर्त्ता बतलाकर जगत् के मिथ्यात्व का तथा ईश्वर की उपासना करनी योग्य है, कहकर उपासक जीव का ईश्वर से अभेद होने का खण्डन कर दिया गया है। सर्वेश्वर, सर्वव्यापक, सर्वान्तर्यामी तथा 'उसी की' शब्दों से अनेकेश्वरवाद का निषेध हो जाता है। सभी धार्मिक सम्प्रदायों ने ईश्वर को महत्तम सत्ता के रूप में स्वीकार किया है। उसके दर्शन की अभिलाषा भी सभी को रहती है, परन्तु योगाभ्यास तथा शुद्धान्तःकरण के बिना उसका दर्शन सम्भव नहीं है, अतः इनके अभाव में अनेक मतावलम्बियों ने ईश्वर के स्वरूप के सम्बन्ध में कल्पना से काम लेकर अपने मापदण्ड से ही उसका वर्णन किया है। मनुष्य स्वयं बिना शरीर व इन्द्रियों के कर्म करने में अशक्य है, अतः इन लोगों ने यही समझ लिया कि वह ईश्वर भी हमारी तरह देहधारी है। ईश्वर को निराकार बतलाकर उसके साकार होने का निषेध कर दिया गया है। यदि ईश्वर साकार हो तो उसके नाक, कान, हाथ, पैर आदि अवयवों का बनानेवाला कोई दूसरा होना चाहिए। यदि यह कहा जाए कि वह बिना क़िसी अन्य की अपेक्षा के स्वयमेव साकार हो जाता है तो

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

इससे भी यह सिद्ध होता है कि साकार होने से पूर्व वह निराकार था। यदि ईश्वर को व्यापक न मानोगे तो उसमें सर्वज्ञता आदि गुणों का भी अभाव मानना पड़ेगा। इस प्रकार के गुणों से रहित एकदेशी, साकार ईश्वर वस्तुतः ईश्वर तो नहीं होगा वह कोई सांसारिक बड़ा व्यक्ति अवश्य हो सकता है। ईश्वर के साकार न होने से उसके अवतार लेने का प्रश्न भी पैदा नहीं होता।

तर्क के आधार पर ईश्वर को एकदेशी नहीं माना जा सकता, क्योंकि जो एकदेशी होवे तो वह सर्वान्तर्यामी, सर्वज्ञ, सर्वनियन्ता, सबका स्रष्टा, सबका धर्त्ता और प्रलयकर्त्ता नहीं हो सकता। ऐसा न हो सकने का कारण यह है कि कर्त्ता जहाँ उपस्थित नहीं है वहाँ वह क्रिया नहीं कर सकता। इस नियम में ईश्वर को न्यायकारी व दयालु दोनों बतलाया गया है। वादी आपत्ति करता हुआ कहता है कि ये दोनों गुण परस्पर विरोधी हैं और तर्कशास्त्र के नियमानुसार एक वस्तु में दो परस्पर विरोधी गुण उपस्थित नहीं रह सकते, अतः ईश्वर या तो न्यायकारी है या दयालु—दोनों नहीं। सत्यार्थप्रकाश सप्तमसमुल्लास में महर्षि दयानन्दजी ने विस्तारपूर्वक इस शङ्का का समाधान प्रस्तुत किया है। वस्तुतः न्याय और दया में कोई भेद नहीं है। दोनों का प्रयोजन अपराधी को दुःख से हटाकर सुख पहुँचाना है। संसार में सुख-दुःख की व्यवस्था से ईश्वर का न्याय स्पष्ट है और उसकी दया तो यही है कि उसने संसार के समस्त पदार्थ उत्पन्न करके जीवों के कल्याण के लिए उन्हें दिये हुए हैं। ईश्वर को दयालु माननेवाले आर्यसमाजी का कर्त्तव्य हो जाता है कि वह स्वयं भी ईश्वर के इस गुण को अपने जीवन में धारण कर अन्य जीवों पर दया करे, हिंसा से सदैव पृथक् रहे। इससे यह निष्कर्ष निकलता है कि मांसाहारी व्यक्ति आर्यसमाज का सदस्य नहीं बन सकता है।

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

'ईश्वर सर्वशक्तिमान् है', के सही अभिप्राय को न समझकर अनेक सम्प्रदायों ने अनेक चमत्कारों को जन्म दिया है। उन्होंने यह समझा है कि सर्वशक्तिमान् होने से ईश्वर सब-कुछ कर सकता है। वास्तव में सर्वशक्तिमान् शब्द का यह सही अर्थ नहीं है। अनेक काम ऐसे हैं, जिन्हें ईश्वर नहीं कर सकता है। यथा—अपने समान दूसरे ईश्वर की रचना करना, अपनी हत्या करना, झूठ बोलना, चोरी करना आदि। सर्वशक्तिमान् शब्द का अर्थ सत्यार्थप्रकाश सप्तम समुल्लास में इस प्रकार लिखा है—'ईश्वर अपने काम, अर्थात् उत्पत्ति, पालन, प्रलय आदि और सब जीवों के पुण्य-पाप की यथायोग्य व्यवस्था में किञ्चित् भी किसी की सहायता नहीं लेता, अर्थात् अपने अनन्त सामर्थ्य से ही सब अपना काम पूर्ण कर लेता है।' परमेश्वर अपने और दूसरों के गुण-कर्म-स्वभाव के विरुद्ध कुछ भी नहीं कर सकता। उसके नियम सत्य व पूर्ण हैं, इसलिए उनमें वह परिवर्तन नहीं कर सकता।

इस नियम में ईश्वर को सृष्टिकर्त्ता कहा गया है। नास्तिक लोगों को ईश्वर का सृष्टिकर्त्ता होना स्वीकार नहीं है। सत्यार्थप्रकाश अष्टसमुल्लास में प्रश्नोत्तर रूप में महर्षि ने इस विषय पर प्रकाश डाला है।

प्रश्न—इस जगत् का कर्त्ता न था, न है और न होगा, किन्तु अनादिकाल से यह जैसा-का-वैसा बना है। न कभी इसकी उत्पत्ति हुई न कभी विनाश होगा?

उत्तर—बिना कर्त्ता के कोई भी क्रिया वा क्रिया-जन्य पदार्थ नहीं बन सकता। जिन पृथिवी आदि पदार्थों में संयोग विशेष से रचना दीखती है, वे अनादि कभी नहीं हो सकते और जो संयोग से बनता है वह संयोग के पूर्व नहीं होता और वियोग के अन्त में नहीं रहता, चूँकि यह जगत् कार्यरूप है, अतः इसका निमित्तकारण अवश्य होना चाहिए।

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

इसपर वादी कहता है कि जो ईश्वर को जगत् का कर्त्ता मानते हो तो ईश्वर का कर्त्ता कौन है ? इसके उत्तर में महर्षि का कथन है कि—"कर्त्ता का कर्त्ता और कारण का कारण कोई भी नहीं हो सकता, क्योंकि कर्त्ता और कारण के होने से ही कार्य होता है। जिसमें संयोग-वियोग नहीं होता, जो प्रथम संयोग-वियोग का कारण है, उसका कर्त्ता वा कारण किसी प्रकार नहीं हो सकता।"

धार्मिक क्षेत्र में ईश्वर की सगुणता व निर्गुणता के प्रश्न पर भी पर्याप्त विवाद रहता है। कुछ लोगों का विचार है कि ईश्वर सगुण है, जबकि दूसरे लोग उसे निर्गुण समझते हैं। इस विचारधारा के मूल में यह भ्रान्ति काम कर रही प्रतीत होती है कि ईश्वर सगुण व निर्गुण दोनों नहीं हो सकता, क्योंकि ये दोनों परस्पर विरोधी गुण हैं और एक वस्तु में दो परस्पर विरोधी गुण रह नहीं सकते जैसाकि हम पूर्व लिख चुके हैं। इस भ्रान्ति के निवारण हेतु महर्षि दयानन्दजी ने सत्यार्थप्रकाश सप्तमसमुल्लास में लिखा है—"जो गुणों से सहित वह सगुण और जो गुणों से रहित वह निर्गुण कहाता है। अपने-अपने स्वाभाविक गुणों से सहित और दूसरे विरोधी के गुणों से रहित होने से सब पदार्थ सगुण और निर्गुण हैं। कोई भी ऐसा पदार्थ नहीं है कि जिसमें केवल निर्गुणता वा केवल सगुणता हो, किन्तु एक ही में सगुणता और निर्गुणता सदा रहती है। वैसे ही परमेश्वर अपने अनन्त ज्ञान-बलादि गुणों से सहित होने से सगुण और रूपादि जड़ के तथा द्वेषादि जीव के गुणों से पृथक् होने से निर्गुण कहाता है।" प्रस्तुत नियम में ईश्वर की सगुणता व निर्गुणता दोनों का समावेश है। सच्चिदानन्द-स्वरूप, सर्वशक्तिमान्, न्यायकारी, दयालु, सर्वाधार, सर्वेश्वर, सर्वव्यापक, सर्वान्तर्यामी, नित्य, पवित्र और सृष्टिकर्त्ता से उसकी सगुणता और निराकार, अजन्मा, अनन्त, निर्विकार, अनादि, अनुपम, अजर, अमर

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

और अभय से उसकी निर्गुणता का परिचय मिलता है।

इस नियम में प्रयुक्त शब्दों का चयन एवं क्रम बड़ा बुद्धिसङ्गत है। शब्दों के क्रम में परिवर्तन नहीं किया जा सकता। एक काल्पनिक संवाद से हम अपने विचार को स्पष्ट करेंगे। एक जिज्ञासु महर्षि दयानन्दजी से ईश्वर के स्वरूप के सम्बन्ध में प्रश्न करता है और महर्षि उसका उत्तर देते हैं। इसी क्रम में जिज्ञासु प्रश्न करता है कि ईश्वर कैसा है? (उत्तर) ईश्वर सच्चिदानन्दस्वरूप है। ईश्वर आनन्दस्वरूप है, इसलिए वह हमसे श्रेष्ठ व उत्तम है। अपने से उत्तम वस्तु को देखने की इच्छा स्वभावतः सबमें रहती है, अतः जिज्ञासु इसी स्वाभाविक मनोवैज्ञानिक आधार पर प्रश्न करता है कि उस ईश्वर को मुझे दिखाओ। महर्षि जिज्ञासु के अभिप्राय को समझ लेते हैं कि वह इन भौतिक नेत्रों से ही ईश्वर के दर्शन करना चाहता है जोकि सम्भव नहीं है, अतः महर्षि उत्तर देते हैं कि वह ईश्वर तो निराकार है। यह सुनकर जिज्ञासु का हृदय बैठ जाता है, जैसेकि दूध में उफान आने पर पानी का छींटा मारने से दूध नीचे बैठ जाता है। जिज्ञासु सोचता है कि जो ईश्वर आकार-रहित है उसमें शक्ति भी नहीं होगी। ऐसी शङ्का करने पर महर्षि कहते हैं कि बात ऐसी नहीं है, वह ईश्वर तो सर्वशक्तिमान् है। यहाँ यह शङ्का हुई कि जो राजा अपने राज्य में सर्वशक्तिमान् होता है, जिसके ऊपर कोई अंकुश नहीं होता वह प्रायः अत्याचारी हो जाता है, उसके यहाँ न्याय के लिए कोई स्थान नहीं रहता। इस शङ्का के किये जाने पर महर्षि उत्तर देते हैं कि वह ईश्वर तो न्यायकारी है। प्रायः न्याय और दया को विरोधी समझकर यह धारणा बना ली गई है कि ईश्वर न्यायकारी और दयालु दोनों नहीं हो सकता। इस भ्रान्ति का निवारण करने के लिए ही महर्षि ने लिखा है कि ईश्वर न्यायकारी के साथ-साथ दयालु भी है। किसी व्यक्ति का पूर्ण परिचय प्राप्त करने के

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

लिए हम उसका नाम जानने के साथ ही उसकी आयु की जानकारी भी प्राप्त करते हैं। यह जानने के बाद कि ईश्वर सच्चिदानन्दस्वरूप, निराकार, सर्वशक्तिमान्, न्यायकारी व दयालु है, जिज्ञासु पूछता है कि ऐसे महान् ईश्वर का जन्म कब हुआ था ? उत्तर में महर्षि कहते हैं कि ईश्वर का जन्म कभी नहीं होता, वह तो अजन्मा है। जिसका जन्म नहीं उसका अन्त भी नहीं। इसी नियम से ईश्वर अनन्त है। जिन पदार्थों का जन्म होता है उनका अन्त भी अवश्यम्भावी है जैसे मनुष्य देह और यह भी निर्विवाद है कि जिसका जन्म व अन्त होगा उसमें मनुष्य-देहवत् विकार अवश्य उत्पन्न होंगे। इसके विपरीत, चूँकि ईश्वर अजन्मा व अनन्त है इसीलिए वह निर्विकार है, चूँकि वह अजन्मा और अनन्त है, इसलिए वह अनादि भी है। यह सब-कुछ सुनकर जिज्ञासु कहता है कि—हे महर्षे! मेरी समझ में यह सब-कुछ नहीं आता। आप मुझपर दया करके कुछ उपमाओं के सहारे से उस ईश्वर का स्वरूप समझाइए। इसपर महर्षि कहते हैं कि वह ईश्वर तो अनुपम है। भौतिक उपमाओं से अभौतिक ईश्वर को नहीं समझाया जा सकता है। जिज्ञासु पूछता है कि अच्छा यह तो बतलाइए कि उस ईश्वर से मेरा कोई सम्बन्ध है या नहीं ? इसपर महर्षि कहते हैं कि तुझसे ही नहीं वरन् समस्त जगत् से उसका सम्बन्ध है। वह सर्वाधार व सर्वेश्वर है। वह सर्वाधार व सर्वेश्वर है, इसीलिए वह सर्वव्यापक व सर्वान्तर्यामी भी है। यहाँ जिज्ञासु को यह शङ्का होती है कि जो ईश्वर सर्वाधार व सर्वेश्वर है, वह सारे जगत् की रचना व धारणा करते-करते जीर्ण हो जाता होगा। इस शङ्का के निवारण में महर्षि कहते हैं कि वह ईश्वर अजर व अमर है, चूँकि वह न बूढ़ा होता और न कभी मरता है, इसलिए उसे कोई भय नहीं, अतः वह अभय है। अजर, अमर, अभय होने का फल है उसका नित्य व पवित्र होना। जिज्ञासु पूछता

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

है कि वह ईश्वर क्या करता है? उत्तर में कहा गया कि वह सृष्टिकर्त्ता है। जिज्ञासु ने जब ईश्वर का स्वरूप समझ लिया तो महर्षि ने उसको उसके कर्त्तव्य की ओर संकेत दिया कि तू उसी ईश्वर की उपासना किया कर और किसी की नहीं।

इस नियम के आधार—वेद-मन्त्र

१. स पर्यगाच्छुक्रमकायमव्रणमस्नाविरꣳशुद्धमपापविद्धम्। कविर्मनीषी परिभूः स्वयम्भूर्याथातथ्यतोऽर्थान् व्यदधाच्छाश्वतीभ्यः समाभ्यः॥ —यजुः०, अ० ४०, मं० ८

अर्थ—परमात्मा सर्वव्यापक, शीघ्रकारी और अनन्त बलवान्, शुद्ध, सर्वज्ञ, सर्वान्तर्यामी, सर्वोपरि विराजमान, सनातन, स्वयं सिद्ध, जीव को अपनी सनातन विद्या से यथावत् अर्थों का बोध वेद द्वारा कराता है। वह अजन्मा, निराकार, शुद्ध और पवित्र है।

२. यो जिनाति न जीयते हन्ति शत्रुमभीत्य।
स पवस्व सहस्त्रजित्॥ —ऋ० ९।५५।४

अर्थ—जो परमेश्वर सबको जीतता है, आप नहीं जीता जाता, सर्वथा सर्वदा निर्भय, शत्रुनाशक है, वह असंख्यों का जीतनेवाला हमें पवित्र एवं सुरक्षित करे।

इससे ईश्वर का अभय होना सिद्ध है।

३. वेदाहमेतं पुरुषं महान्तमादित्यवर्णं तमसः परस्तात्। तमेव विदित्वातिमृत्युमेति नान्यः पन्था विद्यतेऽयनाय॥ —यजुः० ३१।१८

अर्थ—वह परमेश्वर सबसे बड़ा, सबका प्रकाश करनेवाला और अविद्या-अन्धकार, अर्थात् अज्ञान आदि दोषों से अलग है। उसी की उपासना सबको करनी उचित है। उससे भिन्न की नहीं।

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

तीसरा नियम

वेद सब सत्य विद्याओं का पुस्तक है, वेद का पढ़ना-पढ़ाना और सुनना-सुनाना सब आर्यों का परम धर्म है।

इस नियम के दो भाग हैं। प्रथम भाग में वेद को सब सत्य विद्याओं का पुस्तक कहा गया है। अपनी संज्ञा करके तो वेद संख्या में एक ही है, इसी कारण इस नियम में वह एक वचन से ग्रहण किया गया है। इससे यह भ्रान्ति नहीं होनी चाहिए कि अर्थभेद से भी पुस्तकरूप में वह एक ही है। इस रूप में वेद चार हैं जिनके नाम हैं ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद और अथर्ववेद। नियम के द्वितीय भाग में आर्यों के मुख्य कर्त्तव्य का निर्देश किया गया है।

अब से एक शती पूर्व वेद को सब सत्य विद्याओं का पुस्तक बतलाकर महर्षि दयानन्दजी ने बड़े साहस का परिचय दिया है। इसपर संक्षेप में यहाँ विचार करना आवश्यक है। अब से लगभग पाँच सहस्र वर्ष पूर्व महाभारत युद्ध के पश्चात् भारत ही नहीं समस्त संसार का अधःपतन आरम्भ हो चुका था। सच्चे वैदिक विद्वानों के अभाव में वेद के सम्बन्ध में भ्रान्तियाँ फैलने लगी थीं। आर्यों के हृदय में वेद के प्रति आस्था तो रही, किन्तु इस आस्था का उपयोग घृणित अनैतिक कृत्यों और अन्धविश्वासों के समर्थन में किया जाने लगा। मध्यकाल में शङ्कराचार्य, रामानुजाचार्य, बल्लभाचार्य, सायण, उव्वट, महीधर आदि भाष्यकारों ने वेद को परमप्रमाण माना, किन्तु उन्होंने कुछ ऐसी भयङ्कर भूलें भी कीं जिनके कारण अनेक पाश्चात्य विद्वानों और उनका अन्धानुकरण करनेवाले भारतीय विद्वानों ने वेदों के विषय में अनेक भ्रान्त धारणाएँ बना लीं। इनमें से कुछ इस प्रकार

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

हैं—

१. वेदशब्द से अभिप्राय ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद और अथर्ववेद इन चार मन्त्रसंहिताओं से है। सृष्टि के आरम्भ में ईश्वर ने इन चारों वेदों का प्रकाश किया। वेदों की व्याख्यारूप में बहुत काल पश्चात् ऋषियों ने ब्राह्मणग्रन्थ, आरण्यक व उपनिषदों की रचना की। केवल चार वेद ही ईश्वरकृत होने से स्वतःप्रमाण हैं, शेष ग्रन्थ परतःप्रमाण हैं। इन मध्यकालीन आचार्यों और भाष्यकारों ने वेदेतर ग्रन्थों—ब्राह्मण, आरण्यक व उपनिषदों का भी वेद में समावेश कर लिया। ब्राह्मणग्रन्थ व उपनिषदों में नचिकेता, याज्ञवल्क्य, मैत्रेयी, गार्गी, जनक, अश्वपति, हरिश्चन्द्र इत्यादि का इतिहास है। इन ग्रन्थों को वेद मानने से एक भ्रान्ति यह फैल गई कि वेद में इतिहास है। सायण, महीधर और उव्वट आदि के भाष्य का अनुकरण करके पाश्चात्य विद्वानों ने इस विचारधारा को बहुत फैलाया। वेदों में इतिहास की भ्रान्ति का एक प्रमुख कारण यह है कि अनेक पौराणिक पुरुषों, राजाओं, ऋषियों, नदियों आदि के नाम वेदों में उपलब्ध हो जाते हैं। वेदों में आये हुए ऐसे अनेक नाम किसी व्यक्ति या स्थान-विशेष के वाचक न होकर यौगिक है और यौगिक होने के कारण ही गुणवाची हैं।

२. कुछ आचार्यों ने वेद-मन्त्रों के आधार पर यज्ञों में पशुहिंसा का विधान सिद्ध कर दिया जबकि मन्त्रसंहिताओं में इसका कहीं भी विधान नहीं है। इसका दुष्परिणाम यह हुआ कि अनेक विचारशील लोगों को वेदों से घृणा हो गई।

३. इन भाष्यकारों ने अपने ग्रन्थों में एक ईश्वर के स्थान पर सैकड़ों देवी-देवताओं की पूजा का विधान किया जो वस्तुतः वैदिक-शिक्षा के सर्वथा विरुद्ध था। वेदों में सैकड़ों मन्त्र ऐसे हैं, जिनमें स्पष्टतया एकेश्वरवाद का प्रतिपादन किया गया है। इस प्रसङ्ग में महर्षि दयानन्दजी ने

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका में लिखा है—

(प्रश्न) कितने ही आजकल के आर्य और यूरोप देशवासी, अर्थात् अंग्रेज आदि लोग इसमें ऐसी शङ्का करते हैं कि वेदों में पृथिव्यादि भूतों की पूजा कही है। वे लोग यह भी कहते हैं कि पहिले आर्यलोग भूतों की पूजा करते थे, फिर पूजते-पूजते बहुत काल पीछे उन्होंने ईश्वर को भी पूज्य जाना था। (उत्तर) यह उनका कहना मिथ्या है, क्योंकि आर्यलोग अग्नि आदि नामों करके वेदोक्त प्रमाण से एक परमेश्वर की ही उपासना करते चले आये हैं।

—ऋ०भा०भू० वेदविषयविचारविषय

४. इन लोगों ने वेद-मन्त्रों के ऐसे अर्थ किये हैं, जो सर्वथा असत्य, अश्लील अयुक्त और असम्भव है। "गणानां त्वा गणपति....." मन्त्र का महीधर ने इतना अश्लील अर्थ किया है कि उसको पढ़कर लज्जा के मारे सिर नीचे झुक जाता है। महर्षि दयानन्दजी ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका में इस मन्त्र का सही अर्थ देने के बाद दुःख से लिखते हैं कि— 'विचारना चाहिए कि इस सत्य अर्थ के गुप्त होने और मिथ्या नवीन अर्थों के प्रचार होने से मनुष्यों को भ्रान्त करके वेदों का कितना अपमान कराया है।'

जहाँ तक पाश्चात्य वैदिक विद्वानों का सम्बन्ध है, वे इन मध्यकालीन भारतीय आचार्यों व भाष्यकारों से एक कदम आगे बढ़ गये। इन लोगों ने भारतीय आचार्यों की भाँति वेदों को पवित्र व ईश्वरीय ज्ञान स्वीकार न कर इतना मात्र कहा कि वे मानव पुस्तकालय में प्राचीनतम ग्रन्थ हैं। इन लोगों ने मध्यकालीन आचार्यों के भाष्यों का अनुवाद किया है, अतः जो दोष उनके भाष्यों में थे वे इनके अनुवाद में भी रहे। एक दुर्भाग्यपूर्ण बात यह रही कि इन पाश्चात्य विद्वानों के मन में विकासवाद में विश्वास के कारण यह भावना घर किये हुए थी कि चूँकि वेदों की रचना मानवजाति के प्रारम्भिक काल

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

में असभ्य, जङ्गली व अशिक्षित लोगों ने की थी, इसलिए वेदों में कोई उच्चकोटि का विज्ञान व दार्शनिक विचार नहीं मिल सकते। प्रो० मैक्समूलर जैसे भारी विद्वान् ने एक स्थान पर लिख ही डाला कि—"That the Veda is full of childish, silly even to our minds monstrus conceptions, who would deny? But even these monstrosities are interesting and instructive."

अर्थात् वेद मूर्खतापूर्ण और राक्षस के समान विकराल, बेहूदा विचारों से भरपूर हैं, इससे कौन इन्कार कर सकता है, किन्तु ये भी मनोरञ्जक व शिक्षाप्रद हैं।

ऐसी विषम स्थिति में महर्षि दयानन्दजी का प्रादुर्भाव हुआ था। अपने अगाध पाण्डित्य से उन्होंने सहस्रों वर्षों से जमा होते हुए कूड़े-करकट के नीचे से वेदों को निकालकर ऊपर रख दिया। उन्होंने इस भ्रान्त धारणा को दूर किया कि वेद धूर्त और निशाचरों की पुस्तक हैं और ये गड़रियों के गीत हैं। इस भ्रान्त धारणा के स्थान पर उन्होंने आर्यसमाज के प्रस्तुत नियम में यह स्थापना की कि वेद सब सत्य विद्याओं का पुस्तक है। इस सम्बन्ध में कुछ लोग यह शङ्का करते हैं कि क्या वेदों में सभी प्रकार की विद्याएँ उपस्थित हैं। गत पचास वर्षों में विज्ञान ने आश्चर्यजनक उन्नति की है। ऐसे अनेक यन्त्रों का निर्माण किया है, जिनकी हमारे पूर्वज कल्पना भी नहीं कर सकते थे। मानव ज्ञान क्रमशः विकास की ओर अग्रसर है। क्या वेद-ज्ञान इस नियम का अपवाद है। इसके उत्तर में हम यही कहना चाहते हैं कि ईश्वर के नियम व उसका ज्ञान एकरस, अखण्डित व अपरिवर्तनशील होता है। इसलिए वेद में वर्णित ज्ञान में किसी प्रकार का परिवर्तन नहीं हो सकता। वेद के अन्दर जो नाना प्रकार के विज्ञान के सिद्धान्त वर्णन किये हैं, वे गणितविद्या के समान ऐसे सत्य हैं कि उनमें कुछ भी संशोधन व परिवर्तन

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

नहीं हो सकता। वेद में सब सत्य विद्याएँ हैं, कहने का आशय यह है कि बीजरूप में सब सत्य विद्या उसमें हैं। अपनी बुद्धि से आगे चलकर मनुष्य उस बीजरूप विद्या का विस्तार करता है।

ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका में महर्षि लिखते हैं कि—"वेदों में दो विद्या हैं—एक अपरा, दूसरी परा। इनमें से अपरा यह है कि जिससे पृथिवी और तृण से लेके प्रकृतिपर्यन्त पदार्थों के गुणों के ज्ञान से ठीक-ठीक कार्य सिद्ध करना होता है और दूसरी परा कि जिससे सर्वशक्तिमान् ब्रह्म की यथावत् प्राप्ति होती है। यह परा-विद्या अपराविद्या से अत्यन्त उत्तम है, क्योंकि अपरा का ही उत्तम फल पराविद्या है।"

—ऋ०भा०भू० वेदविषयविचार

हमारा विश्वास है कि वेद में परमेश्वर ने मनुष्य के लिए उपयोगी सब प्रकार का ज्ञान दे दिया है। वेद में मनुष्य के वैयक्तिक, पारिवारिक व सामाजिक कर्त्तव्यों का उपदेश है। अपने प्रति, अन्यों के प्रति व ईश्वर के प्रति हमारे कर्त्तव्य कर्मों का वहाँ वर्णन किया गया है। अनेक प्रकार की भौतिक व आध्यात्मिक विद्याओं का वेद में प्रतिपादन किया गया है। कुछ विद्याओं का यहाँ उल्लेखमात्र पर्याप्त होगा। वे हैं—राजनीति, सैन्य एवं युद्ध, शिक्षाविज्ञान, ऋतुविज्ञान, अग्नि-विज्ञान, विमानविज्ञान, वृष्टिविज्ञान, गणितविज्ञान, चिकित्सा-विज्ञान, यातायात, सिंचाई, उद्योग-धन्धे, कृषिविज्ञान, पशु-पक्षी-पालन, गृह-निर्माण इत्यादि। महर्षि ने ऋग्वेदादिभाष्य-भूमिका में लिखा है—"वेदों में अवयवरूप विषय तो अनेक हैं, परन्तु उनमें से चार मुख्य हैं—(१) एक विज्ञान, अर्थात् सब पदार्थों को यथार्थ जानना, (२) दूसरा कर्म, (३) तीसरा उपासना और (४) चौथा ज्ञान है। इसी पुस्तक में अन्यत्र लिखा है कि वेद में सम्पूर्ण विद्या हैं, उनमें मिथ्या कुछ भी नहीं है। इस तथ्य की जानकारी उस समय होगी जबकि

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

चारों वेद का भाष्य बन और छपकर सब बुद्धिमानों के ज्ञानगोचर होगा, तब सब किसी को उत्तम विद्यापुस्तक वेद का परमेश्वररचित होना भूगोलभर में विदित हो जाएगा और यह भी प्रगट हो जाएगा कि ईश्वर-कृत सत्य पुस्तक वेद ही है वा कोई दूसरा भी हो सकता है।''

प्रस्तुत नियम के दूसरे भाग में महर्षि ने आर्यों के परम धर्म को बतलाया है और वह है वेद का पढ़ना-पढ़ाना और सुनना-सुनाना। इस नियम के माध्यम से महर्षि ने मानवमात्र के सामने एक क्रान्तिकारी कार्यक्रम प्रस्तुत किया है। महर्षि के प्रादुर्भाव से पूर्व सभी मनुष्यों को वेद पढ़ने का अधिकार नहीं था। जन्मजात ब्राह्मणों तक ही वेद का पढ़ना-पढ़ना सीमित हो चुका था। शूद्र और सब वर्णों की स्त्रियों को एक ही श्रेणी में रखकर उन्हें वेद-ज्ञान से वंचित कर दिया गया था। ब्रह्मसूत्र शाङ्करभाष्य में श्री शङ्कराचार्य ने लिखा है कि—''इसलिए भी शूद्र को वेद पढ़ने का अधिकार नहीं, क्योंकि स्मृति के द्वारा इनके लिए वेद के सुनने का, पढ़ने का निषेध करते हुए स्मृति में कहा है कि यदि शूद्र वेद के शब्द सुन ले तो उसके कान को सीसे और लाख से भर देना चाहिए। शूद्र चलता-फिरता शमशान है, इसलिए उसके समीप अध्ययन भी नहीं करना चाहिए। वह बिना सुने कैसे अध्ययन कर सकता है? वेद के उच्चारण करने पर जीभ काट डालने और शरीर के टुकड़े-टुकड़े कर डालने का विधान है।'' श्री शङ्कराचार्य स्त्रियों का भी वेदाध्ययनाधिकार नहीं मानते थे। श्री रामानुजाचार्य, श्री माध्वाचार्य, श्री बल्लभाचार्य तथा सायणाचार्य का भी यही मत था। सहस्रों वर्षों में महर्षि दयानन्द पहले महापुरुष थे जिन्होंने इस अन्याय के विरोध में अपनी आवाज़ उठाई। इस विषय में महर्षि के मन्तव्य को सत्यार्थप्रकाश तृतीय समुल्लास से उद्धृत करते हैं—

प्रश्न—क्या स्त्री और शूद्र वेद पढ़ें? जो ये पढ़ेंगे तो

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

हम फिर क्या करेंगे? और इनके पढ़ने में प्रमाण भी नहीं है जैसा यह निषेध है—**स्त्रीशूद्रौ नाधीयातामिति श्रुतेः।** स्त्री और शूद्र न पढ़े यह श्रुति है।

उत्तर—सब स्त्री और पुरुष, अर्थात् मनुष्यमात्र को पढ़ने का अधिकार है। तुम कुआँ में पड़ो और यह श्रुति तुम्हारी कपोल-कल्पना से हुई हैं। किसी प्रामाणिक ग्रन्थ की नहीं और सब मनुष्यों के वेदादिशास्त्र पढ़ने-सुनने के अधिकार का प्रमाण यजुर्वेद के छब्बीसवें अध्याय में दूसरा मन्त्र है—

यथेमां वाचं कल्याणीमावदानि जनेभ्यः।
ब्रह्मराजन्याभ्यां शूद्राय चार्याय च स्वाय चारणाय च॥

परमेश्वर कहता है कि जैसे मैं (**जनेभ्यः**) सब मनुष्यों के लिए (**इमाम्**) इस (**कल्याणीम्**) कल्याण, अर्थात् संसार और मुक्ति के सुख देनेहारी (**वाचम्**) ऋग्वेदादि चारों वेदों की वाणी का (**आवदानि**) उपदेश करता हूँ, वैसे तुम भी किया करो।

आगे चलकर महर्षि लिखते हैं—क्या परमेश्वर शूद्रों का भला करना नहीं चाहता? क्या ईश्वर पक्षपाती है कि वेदों को पढ़ने-सुनने का शूद्रों के लिए निषेध और द्विजों के लिए विधि करे? जो परमेश्वर का अभिप्राय शूद्रादि के पढ़ाने-सुनाने का न होता तो इनके शरीर में वाक् और श्रोत्र-इन्द्रिय क्यों रचता? जैसे परमात्मा ने पृथिवी, जल, अग्नि, वायु, चन्द्र, सूर्य और अन्नादि पदार्थ सबके लिए बनाये हैं, वैसे ही वेद भी सबके लिए प्रकाशित किये हैं और जहाँ कहीं निषेध किया है उसका यह अभिप्राय है कि जिसको पढ़ने-पढ़ाने से कुछ भी न आवे वह निर्बुद्धि और मूर्ख होने से शूद्र कहाता है। उसका पढ़ना-पढ़ाना व्यर्थ है और जो स्त्रियों के पढ़ने का निषेध करते हो वह तुम्हारी मूर्खता, स्वार्थता और निर्बुद्धिता का प्रभाव है। देखो वेद में कन्याओं के पढ़ने का प्रमाण—

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

ब्रह्मचर्येण कन्या युवानं विन्दते पतिम्।

—अथर्व० ११।५।१८

जैसे लड़के ब्रह्मचर्य सेवन से पूर्ण विद्या और सुशिक्षा को प्राप्त होके युवति विदुषी, अपने अनुकूल प्रिय सदृश स्त्रियों के साथ विवाह करते हैं वैसे (**कन्या**) कुमारी (**ब्रह्मचर्येण**) ब्रह्मचर्य सेवन से वेदादिशास्त्रों को पढ़, पूर्ण विद्या और उत्तम शिक्षा को प्राप्त युवति होके पूर्ण युवावस्था में अपने सदृश प्रिय विद्वान् (**युवानम्**) पूर्ण युवावस्था युक्त पुरुष को (**विन्दते**) प्राप्त होवे। इसलिए स्त्रियों को भी ब्रह्मचर्य और विद्या का ग्रहण अवश्य करना चाहिए।

इस नियम में सभी आर्यों को वेद के पढ़ने-पढ़ाने और सुनने-सुनाने का आदेश दिया गया है। इससे यह शङ्का उत्पन्न होती है कि आर्यसमाज केवल ब्राह्मणों का समाज है, क्योंकि वेद अध्ययन-अध्यापन का कार्य केवल ब्राह्मणों का होता है। क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र का मुख्य कार्य-क्रमशः रक्षा करना, धनोपार्जन करना व सेवा करना है। यदि ये वर्णस्थ लोग भी वेदाध्ययन में ही रत रहें तो सामाजिक व्यवस्था छिन्न-भिन्न हो जाए। इस शङ्का के निवारणार्थ यहाँ सत्यार्थप्रकाश तृतीय समुल्लास से उद्धरण प्रस्तुत करते हैं— "क्योंकि जो ब्राह्मण हैं वे ही केवल विद्याभ्यास करें और क्षत्रियादि न करें तो विद्या, धर्म, राज्य और धनादि की वृद्धि कभी नहीं हो सकती।....................इसलिए ब्राह्मण भी अपना कल्याण चाहें तो क्षत्रियादि को वेदादि सत्य शास्त्र का अभ्यास अधिक प्रयत्न से करावें।..............इसलिए सब वर्णों के स्त्री-पुरुषों में विद्या और धर्म का प्रचार अवश्य होना चाहिए।" स्पष्ट है कि अपने-अपने वर्ण के लिए निर्धारित कर्त्तव्य कर्मों का पालन करने के लिए वेद का पढ़ना सभी वर्णों के लिए आवश्यक है। विद्या के अभाव में कोई भी व्यक्ति अपने वर्ण के कर्त्तव्यों का पालन सुचारु रूप

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

से करने में समर्थ न हो सकेगा।

यहाँ दो बातें और विचारणीय हैं। प्रथम यह कि आर्यसमाज के सदस्यों का दोहरा कर्त्तव्य है। उनके लिए वेद का पढ़ना ही पर्याप्त नहीं है, उसे पढ़कर तदुपरान्त अन्यों को पढ़ाना भी उनका कर्त्तव्य है, किन्तु इतना ही पर्याप्त नहीं है। पढ़ने और पढ़ाने के साथ ही वेद को सुनना और सुनाना भी चाहिए। जो व्यक्ति स्वयं पढ़ नहीं सकता वह पढ़ा भी नहीं सकेगा, किन्तु वह दूसरों से वेदोपदेश सुन तो सकता है और सुने हुए उपदेश को दूसरों को भी सुना सकता है। इस प्रक्रिया का लाभ यह होगा कि वेदज्ञान का प्रचार बड़ी सुगमता से सभी लोगों में हो सकेगा। पढ़ने-पढ़ाने के लिए विद्यालय और सुनने-सुनाने के लिए मञ्च का होना आवश्यक है। दूसरी बात यह है कि इस नियम में वेद के पढ़ने-पढ़ाने और सुनने-सुनाने को केवल धर्म ही नहीं वरन् परम धर्म बतलाया गया है। अग्नि का धर्म ताप या उष्णता है। यदि अग्नि में ताप न रहे तो उसे अग्नि की संज्ञा नहीं दी जा सकती, उसे तो राख कहेंगे। इसी भाँति आर्यसमाज के सदस्यों का परम धर्म वेद का पढ़ना-पढ़ाना व सुनना-सुनाना है। यदि कोई आर्य इस धर्म का पालन नहीं करता तो उसे हम मनुष्य तो कह सकते हैं, उसे प्रोफेसर, वकील, डॉक्टर, व्यापारी सभी कुछ कह सकते हैं, परन्तु उसे आर्यसमाजी कदापि नहीं कह सकते। यह भी सत्य है कि वेद का पढ़ना-पढ़ाना तभी सम्भव है जबकि हमारे पास वेद पुस्तक उपस्थित हो। इसका अर्थ यह निकला कि प्रत्येक आर्यसमाजी के घर में वेद-ग्रन्थों का होना आवश्यक है। यदि ऐसा नहीं है, तो वह आर्यसमाजी कहलाने का अधिकारी नहीं है।

यह नियम आर्यसमाज का व्यावर्तक गुण है, जो इसे अन्य साम्प्रदायिक संगठनों से पृथक् कर देता है। आर्यसमाज की भाँति ईश्वर-विश्वासी संगठन अनेक हैं। पौराणिक हिन्दु,

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

मुसलमान, ईसाई आदि सभी ईश्वर में विश्वास रखते हैं। नैतिकता के अनेक गुणों में आर्यसमाज की भाँति उनका भी विश्वास है, किन्तु वेद का पढ़ना-पढ़ाना और सुनना-सुनाना एक ऐसा धर्म है, जो केवल आर्यसमाज के पास है।

वेदाध्ययन के लिए महर्षि दयानन्दजी ने सत्यार्थप्रकाश तृतीय समुल्लास में कतिपय पूर्व दशाओं का निर्धारण किया है जिनकी ओर आर्यसमाज को विशेष ध्यान देना चाहिए। वेद का अध्ययन तभी सम्भव है जबकि उससे पहिले कई वर्ष तक महाभाष्य, मनुस्मृति, वाल्मीकि रामायण और महाभारत के अच्छे प्रकरण, षड्दर्शन, दशोपनिषद् और चारों ब्राह्मण-ग्रन्थों का अध्ययन पूर्ण हो जाए। इस प्रकार इस नियम का अन्तर्निहित क्षेत्र अति व्यापक है।

इस नियम के आधार—वेद-मन्त्र

१. यथेमां वाचं कल्याणीमावदानि जनेभ्यः।
ब्रह्म राजन्याभ्याᳬ शूद्राय चार्याय च स्वाय चारणाय च॥

—यजुः० २६।२

इस मन्त्र का अर्थ ऊपर लिख चुके हैं।

२. ये त्रिषप्ताः परियन्ति विश्वा रूपाणि बिभ्रतः।
वाचस्पतिर्बला तेषां तन्वो अद्य दधातु मे॥

—अथर्व० १।१।१

भावार्थ—तृण से लेकर परमेश्वर पर्यन्त जो पदार्थ संसार की स्थिति के कारण हैं, उन सबका तत्त्वज्ञान वेदवाणी के स्वामी सर्वगुरु जगदीश्वर की कृपा से सब मनुष्य वेद द्वारा प्राप्त करें।

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

चौथा नियम

सत्य के ग्रहण करने और असत्य के छोड़ने में सर्वदा उद्यत रहना चाहिए।

मनुष्य एक सामाजिक प्राणी है। समाज से पृथक् इसके जीवन की कल्पना भी नहीं की जा सकती। समाज में रहता हुआ वह कई प्रकार के समूह बना लेता है। एक दृष्टि से सभी समूहों को दो वर्गों में विभाजित किया जाता है— स्वसमूह और परसमूह। स्वसमूह के सभी सदस्य अपने को उस समूह के अन्दर रहनेवाला मानते हैं और परसमूह के सदस्यों को अपने से बाह्य समझते हैं। उनके प्रति उपेक्षा, तिरस्कार, विरोध, भय, रोष और कभी-कभी घृणा भी रखते हैं। अपना परिवार, अपनी जाति और अपना मज़हब स्वसमूह है। पराया परिवार, परायी जाति और पराया मज़हब परसमूह है। स्वसमूह और परसमूह में खींचातानी रहती है। इसी को तनाव या संघर्ष कहते हैं। सामाजिक संघर्ष को बढ़ावा देने में पूर्वाग्रह का बहुत बड़ा हाथ रहता है। इसके कारण एक स्वसमूह के लोग अपने को परसमूह के सदस्यों से श्रेष्ठ और अधिक बुद्धिमान् मानने लगते हैं। अपनी निकृष्टतम वस्तु भी श्रेष्ठ है और पराई श्रेष्ठतम वस्तु भी निकृष्ट है। इसी भावना से समाज में कलह व अशान्ति उत्पन्न हो जाती है। मनुष्य अपना विवेक खो बैठता है। सामूहिक तनाव की शान्ति के अनेक उपाय समय-समय पर भिन्न-भिन्न विचारकों ने सुझाये हैं। हमारी सम्मति में स्थायी शान्ति प्राप्त करने का स्वर्णिम उपाय आर्यसमाज के प्रस्तुत नियम में बतलाया गया है। बिना पूर्वाग्रह व पक्षपात के जो भी सत्य हो (चाहे वह अपने अनुकूल हो वा प्रतिकूल) उसे ग्रहण करना चाहिए

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

और असत्य का परित्याग कर देना चाहिए।

इस नियम के होते हुए भी कई अविवेकी पुरुषों ने आर्यसमाज पर हठ, दुराग्रह व पक्षपात का मिथ्या आरोप किया है। इन लोगों के विचार में आर्यसमाजी अपनी-अपनी कहता है, दूसरे की कभी नहीं सुनता और तार्किक होने के कारण अपनी असत्य बात को सत्य और दूसरे की सत्य बात को असत्य सिद्ध कर देता है। इन आक्षेपकर्त्ताओं का ध्यान हम महर्षि दयानन्दजी के कतिपय वाक्यों की ओर आकृष्ट करना चाहते हैं, जिनके आधार पर प्रस्तुत नियम की रचना की गई है। महर्षि दयानन्दजी को सत्य अति प्रिय है, इसीलिए उन्होंने अपने अमर ग्रन्थ का नाम 'सत्यार्थप्रकाश' रखा है। इस सन्दर्भ में वे लिखते हैं—'मेरा इस ग्रन्थ के बनाने का मुख्य प्रयोजन सत्य-सत्य अर्थ का प्रकाश करना है, अर्थात् जो सत्य है उसको सत्य और जो मिथ्या है उसको मिथ्या ही प्रतिपादन करना सत्य अर्थ का प्रकाश समझा है।'

महर्षि दयानन्द ने कहीं भी अपने को साम्प्रदायिक पैग़म्बरों की भाँति पूर्ण ज्ञानी नहीं कहा है। पूर्ण ज्ञानी केवल ईश्वर है, मनुष्य अल्पज्ञ व अल्पशक्तिवाला है। इसलिए उससे भूल हो सकती है। इसी भावना से महर्षि लिखते हैं— 'इस ग्रन्थ में जो कहीं-कहीं भूलचूक से अथवा शोधने तथा छापने में भूलचूक रह जाए उसको जानने-जनाने पर जैसा वह सत्य होगा वैसा ही कर दिया जाएगा'। कितनी निरभिमानता व निष्पक्षता थी महर्षि में? हमें इस बात पर गर्व है कि इन सौ वर्षों में अभी तक महर्षि के सिद्धान्तों में कोई भी व्यक्ति एक भी त्रुटि सिद्ध नहीं कर सका। महर्षि मानव-स्वभाव के दुर्बल पक्ष से पूर्ण परिचित थे। इसलिए वे लिखते हैं—'और जो कोई पक्षपात से अन्यथा शङ्का, खण्डन वा मण्डन करेगा, उसपर ध्यान न दिया जाएगा। हाँ, जो मनुष्यमात्र का हितैषी होकर कुछ जनावेगा उसको सत्य-

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

सत्य समझने पर उसका मत संगृहीत होगा।' महर्षि दयानन्द ने स्पष्टतः इस तथ्य को स्वीकार किया है कि सभी मतों में विद्वान् हुए हैं। यह बात भिन्न है कि पक्षपात का परित्याग करने में वे कहाँ तक सफल हो सके हैं। महर्षि का कथन है, 'यद्यपि आजकल बहुत-से विद्वान् प्रत्येक मतों में हैं वे पक्षपात छोड़ सर्वतन्त्र सिद्धान्त, अर्थात् जो-जो बातें सबके अनुकूल सबमें सत्य हैं उनका ग्रहण और जो एक-दूसरे से विरुद्ध बातें हैं, उनका त्याग कर परस्पर प्रीति से वर्त्तें-वर्त्तावें तो जगत् का पूर्ण हित होवे।'

आर्यसमाज पर पक्षपात का दोषारोपण करनेवाले महानुभावों से निवेदन है कि वे गम्भीरता से महर्षि के इन वाक्यों पर विचार करें—'यद्यपि मैं आर्यावर्त्त देश में उत्पन्न हुआ और बसता हूँ, तथापि जैसे इस देश के मत-मतान्तरों की झूठी बातों का पक्षपात न कर याथातथ्य प्रकाश करता हूँ वैसे ही दूसरे देशस्थ वा मत-वालों के साथ भी वर्त्तता हूँ। जैसा स्वदेशवालों के साथ मनुष्योन्नति के विषय में वर्त्तता हूँ, वैसा विदेशियों के साथ भी तथा सब सज्जनों को भी वर्त्तना योग्य है, क्योंकि मैं भी जो किसी एक का पक्षपाती होता तो जैसे आजकल के स्वमत की स्तुति-मण्डन और प्रचार करते और दूसरे मत की निन्दा, हानि और बन्ध करने में तत्पर होते हैं वैसे मैं भी होता, परन्तु ऐसी बातें मनुष्यपन से बाहर हैं।'' सत्य का गला घोंटने और स्वार्थ-सिद्धि के लिए अनेक पाखण्डियों ने नये-नये मतों को जन्म देकर अपने को ईश्वर घोषित किया हुआ है। इस दुष्प्रवृत्ति का घोर विरोध करते हुए महर्षि कहते हैं—'मेरा कोई नवीन कल्पना वा मतमतान्तर चलाने का लेशमात्र भी अभिप्राय नहीं है, किन्तु जो सत्य है, उसको मानना-मनवाना और जो असत्य है, उसको छोड़ना और छुड़वाना मुझको अभीष्ट है। यदि मैं पक्षपात करता तो आर्यावर्त्त में प्रचलित मतों में से किसी एक मत का आग्रही

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

होता।'

आर्यसमाज पर हठ, दुराग्रह व पक्षपात के मिथ्यारोप का निराकरण करने के उपरान्त प्रस्तुत नियम में प्रयुक्त 'सत्य' पद के अर्थ पर विचार किया जाता है। प्रस्तुत नियम में सत्य के ग्रहण करने और असत्य के परित्याग करने का विधान है। ऐसा तभी सम्भव हो सकता है जब सत्यासत्य का बोध हो जाए। इसीलिए महर्षि लिखते हैं—'पक्षपात छोड़कर इसको देखने से सत्यासत्य मत सबको विदित हो जाएगा। पश्चात् सबको अपनी-अपनी समझ के अनुसार सत्य मत का ग्रहण करना और असत्य मत को छोड़ना सहज होगा।'

लोकमत में जो पदार्थ जैसा है, उसको वैसा ही जानना सत्य और उसके विपरीत जानना असत्य कहलाता है। पुस्तक को पुस्तक और कलम को कलम जानना सत्य और विपरीत जानना असत्य होता है। सत्य की यह परिभाषा अपूर्ण है। अनेक अवसर ऐसे आते हैं जब हम किसी वस्तु के वास्तविक रूप को जानते तो हैं, परन्तु उसको वैसा कहते नहीं हैं। आत्मा और मन से जैसा जानते हैं, ठीक वैसा वाणी से नहीं कह पाते। यह सत्य नहीं वरन् असत्य है। किसी व्यक्ति ने एक घटना को अपने नेत्रों से देखा है। वह उसका सही रूप जानता है और वैसा ही अन्य पुरुषों के सम्मुख मौखिक कहता है, परन्तु साक्षी के समय वैसा लिखकर देने के लिए तैयार नहीं है। ऐसे भी व्यक्ति मिलते हैं जो किसी पदार्थ के सही रूप को जानते हैं, ठीक वैसा ही कहते भी हैं और वैसा ही लिखकर दे भी देते हैं, परन्तु आचरण में वैसा नहीं लाते। 'वेद सब सत्य विद्याओं का पुस्तक है, वेद का पढ़ना-पढ़ाना और सुनना-सुनाना सब आर्यों का परम धर्म है।' एक व्यक्ति इस नियम को इसी रूप में कहता भी है और लिखता भी है, परन्तु इसे आचरण में नहीं लाता, इसलिए इस व्यक्ति को सत्यवादी नहीं कहा जा सकता, अतः सत्य की पूर्ण

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

परिभाषा यह है—'जो पदार्थ जैसा है, उसको वैसा ही कहना, लिखना और मानना सत्य कहलाता है।' 'सत्यभाषण जोकि तेरे आत्मा, मन, वाणी में है वह सत्य और जो इससे विपरीत हैं, वह मिथ्याभाषण है।' सत्य त्रिकालाबाधित होता है, वह तीनों काल में एक-सा ही रहता है। दो और दो का योग सदैव चार होता है, अतः दो और दो का योग चार कहना सत्य और अन्यथा कहना असत्य है।

सत्यासत्य की परिभाषा के बाद सत्य प्राप्ति के साधन का विवेचन आवश्यक है। राजनीति में आजकल प्रजातन्त्र-पद्धति में सत्यासत्य का निर्णय बहुमत के आधार पर किया जाता है। ९९९ व्यक्तियों का एक विषय पर एकमत है, परन्तु १,००० व्यक्तियों का मत उसके विपरीत है। इस स्थिति में ९९९ व्यक्तियों के मत का कोई मूल्य नहीं भले ही विद्या में वे १,००० व्यक्तियों से अधिक योग्यता रखते हों। आर्यसमाज को यह पद्धति मान्य नहीं है। एक सहस्र मूर्खों के मुक़ाबले में एक विद्वान् की सम्मति अधिक मान्य है। प्रयोगशाला में एक वैज्ञानिक प्रयोग करके किसी निष्कर्ष पर पहुँचता है। दूसरा वैज्ञानिक भी उसी निष्कर्ष पर पहुँचता है, किन्तु इनके निष्कर्ष सर्वसाधारण की मान्यताओं से मेल नहीं खाते। क्या इस स्थिति में वैज्ञानिक इन लोगों के बहुमत के आधार पर अपने निष्कर्ष में परिवर्तन कर डालें ? यदि ऐसा होने लगे तो सारा वैज्ञानिक अनुसन्धान एक उपहास के अतिरिक्त और क्या रहेगा ?

सत्यासत्य का निश्चय करने के एक सरल व व्यावहारिक उपाय पर विचार करना यहाँ अभिप्रेत है। जैसाकि हम आरम्भ में लिख चुके हैं, मनुष्य एक सामाजिक प्राणी है। समाज में रहते हुए विचारों के आदान-प्रदान से वह अपने ज्ञान में अभिवृद्धि करता है। समाज से वह कुछ सीखता है और उसे सिखाता है। इसके लिए शङ्का-समाधान, वाद-विवाद तथा

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

शास्त्रार्थ बड़े उपयोगी उपाय सिद्ध होते हैं। आर्यसमाज का प्रारम्भिक युग शास्त्रार्थ-युग था। इसी का परिणाम था कि सर्वसाधारण जनता वादी, प्रतिवादी के तर्क सुनकर अपने ज्ञान में वृद्धि करती थी और बिना अधिक परिश्रम किये ही सत्यासत्य का निर्णय कर लेती थी। इस पद्धति की उपयोगिता के सम्बन्ध में महर्षि दयानन्दजी का विचार है—'जब तक वादी-प्रतिवादी होकर प्रीति से वाद वा लेख न किया जाए तब तक सत्यासत्य का निर्णय नहीं हो सकता। जब विद्वान् लोगों में सत्यासत्य का निश्चय नहीं होता तभी अविद्वानों को महा अन्धकार में पड़कर बहुत दुःख उठाना पड़ता है। इसलिए सत्य के जय और असत्य के क्षय के अर्थ मित्रता से वाद वा लेख करना हमारी मनुष्यजाति का मुख्य काम है।' 'यदि वादी-प्रतिवादी सत्यासत्य निश्चय के लिए वाद-प्रतिवाद करें तो अवश्य निश्चय हो जाए।' महर्षि ने अपने लेखन व भाषण में इसी पद्धति का अनुसरण किया है, अतः वे अपने अनुभव के आधार पर लिखते हैं—'जैसे मैं अपना या दूसरे मत-मतान्तरों का दोष पक्षपातरहित होकर प्रकाशित करता हूँ, इसी प्रकार यदि सब विद्वान् लोग करें तो क्या कठिनता है कि परस्पर का विरोध छूट, मेल होकर आनन्द में एकमत होकर सत्य की प्राप्ति सिद्ध न हो।'

वाद-विवाद में तीन सावधानियाँ अवश्य बर्तनी चाहिएँ—१. पक्षपातरहित होना, २. निर्भीकता के साथ दूसरों के दोषों का प्रकाशन, ३. वाद-विवाद का उद्देश्य दूसरे को मानसिक पीड़ा देकर उसे हानि पहुँचाना न हो। दूसरों के दोषों के प्रकाशन के सम्बन्ध में कुछ व्यक्तियों को आपत्ति हो सकती है कि दूसरों के दोष बखान करने से वे लोग अप्रसन्न होंगे और पारस्परिक कलह बढ़ेगा। इसके उत्तर में हमारा कथन है कि मनुष्य को जब तक अपने दोष का ज्ञान न होगा, वह उसे दूर कैसे कर सकेगा? दूसरे के चेहरे पर

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

लगी कालिमा को दूर करने के लिए उसकी ओर संकेत करने का साहस तो बटोरना ही पड़ेगा। हाँ, ऐसा करने से पूर्व अपना दोष-निवारण करना आवश्यक है। मद्यप द्वारा मद्यपान की बुरी लत को त्यागने के उपदेश का कहीं अधिक प्रभाव पड़ता है? इस सम्बन्ध में महर्षि दयानन्द का यह कथन बड़ा ही उपयुक्त है—"अस्तु जो हो, परन्तु बहुत मनुष्य ऐसे हैं जिनको अपने दोष तो नहीं दीखते, किन्तु दूसरों के दोष देखने में अत्युत्सुक रहते हैं। यह न्याय की बात नहीं, क्योंकि प्रथम अपने दोष देख, निकालने के पश्चात् दूसरे के दोषों में दृष्टि देके निकालें।" इसमें तो दो मत नहीं हो सकते कि सदा प्रिय और हितकारक बोलना चाहिए, परन्तु यह भी ध्यान रहे—"जो-जो दूसरे का हितकारक हो और बुरा भी माने तथापि कहे बिना न रहे।" दुखती आँखों में मैल को धुलवाना बच्चे को प्रिय भले ही न हो, किन्तु दयालु माँ तो अपने पुत्र के मुख को स्वच्छ करने के लिए इस अप्रिय काम को करती ही है। दूसरों के दोषों का प्रकाश करने से कतरानेवाले या तो कायर होते हैं या चापलूस।

सत्यासत्य के अन्वेषक को दूसरों के हित के लिए उनकी अप्रसन्नता का खतरा मोल लेना ही पड़ता है। महर्षि दयानन्दजी का जीवन इस बात का साक्षी है। वे लिखते हैं—"क्योंकि सत्पुरुषों को योग्य है कि मुख के सामने दूसरे का दोष कहना और अपना दोष सुनना, परोक्ष में दूसरे के गुण सदा कहना और दुष्टों की यही रीति है कि सम्मुख में गुण कहना और परोक्ष में दोषों का प्रकाश करना। जब तक मनुष्य दूसरे से अपने दोष नहीं सुनता तब तक मनुष्य दोषों से छूटकर गुणी नहीं हो सकता।"

वाद-विवाद में तीसरी सावधानी, जिसका पहिले उल्लेख हो चुका है, यह है कि एक-दूसरे को हानि न पहुँचाई जाए। दूसरों की आलोचना करते समय महर्षि दयानन्द इस ओर

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

सदैव जागरूक रहे हैं। उनका कहना है—"क्योंकि मेरा तात्पर्य किसी की हानि वा विरोध करने में नहीं, किन्तु सत्यासत्य का निर्णय करने-कराने का है।" महर्षि की अभिलाषा थी कि सभी व्यक्ति इस नियम का पालन करें। "इसी प्रकार सब मनुष्यों को न्यायदृष्टि से वर्त्तना अति उचित है।....यदि हम सब मनुष्य और विशेष विद्वज्जन ईर्ष्या-द्वेष छोड़ सत्यासत्य का निर्णय करके सत्य का ग्रहण और असत्य का त्याग करना-कराना चाहें तो हमारे लिए यह बात असाध्य नहीं है।"

सत्यासत्य का निर्णय करने के जिस व्यावहारिक उपाय का हमने विवेचन किया है, उससे कई अवस्थाओं में सफलता प्राप्त नहीं हो पाती। वाद-विवाद में प्रायः यह देखा जाता है कि जिसको एक सत्य कहता है, दूसरा उसी को मिथ्या बतलाता है। इसमें सन्देह नहीं कि इस प्रकार के वाद-विवाद में उक्त सावधानियों का पूर्ण पालन नहीं किया जाता। महर्षि दयानन्द ने सत्यासत्य के निर्णय करने के पाँच महत्त्वपूर्ण साधन और बतलाये हैं, जो इस प्रकार हैं—

"**पहला**—ईश्वर, उसके गुण-कर्म-स्वभाव और वेदविद्या। **दूसरा**—सृष्टिक्रम। **तीसरा**—प्रत्यक्षादि आठ प्रमाण। **चौथा**—आप्तों का आचार, उपदेश, ग्रन्थ और सिद्धान्त और **पाँचवाँ**—अपने आत्मा की साक्षी, अनुकूलता, जिज्ञासुता, पवित्रता और विज्ञान।" इन्हीं पाँच साधनों को कुछ विस्तार से सत्यार्थप्रकाश के तृतीय समुल्लास में कुछ क्रम-भेद से प्रस्तुत किया है—परीक्षा पाँच प्रकार से होती है—

एक—"जो-जो ईश्वर के गुण-कर्म-स्वभाव और वेदों से अनुकूल हो वह-वह सत्य और उससे विपरीत असत्य है। **दूसरा**—जो-जो सृष्टिक्रम से अनुकूल वह-वह सत्य और जो-जो सृष्टिक्रम से विरुद्ध है, वह सब असत्य है, जैसे कोई कहे कि बिना माता-पिता के योग से लड़का

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

उत्पन्न हुआ, ऐसा कथन सृष्टिक्रम से विरुद्ध होने से सर्वथा असत्य है। **तीसरी**—'आप्त', अर्थात् जो धार्मिक विद्वान्, सत्यवादी निष्कपटियों का सङ्ग उपदेश के अनुकूल है, वह-वह ग्राह्य और जो-जो विरुद्ध वह अग्राह्य है। **चौथी**—अपने आत्मा की पवित्रता विद्या के अनुकूल, अर्थात् जैसा अपने को सुख प्रिय और दुःख अप्रिय है, वैसे ही सर्वत्र समझ लेना कि मैं भी किसी को दुःख वा सुख दूँगा तो वह भी अप्रसन्न और प्रसन्न होगा और **पाँचवीं**—आठों प्रमाण, अर्थात् प्रत्यक्ष, अनुमान, उपमान, शब्द, ऐतिह्य, अर्थापत्ति, सम्भव और अभाव।''

सत्यासत्य का निर्णय करने के लिए वाद-विवाद करते समय इन पाँचों परीक्षाओं में से किस-किसका किस क्रम से उपयोग किया जाए, यह वादी की योग्यता तथा उसकी विचारधारा पर निर्भर करता है। यदि वह अस्तिक है और वेद को ईश्वरीय ज्ञान मानता है तो प्रथम परीक्षा का उपयोग लाभकारी रहेगा। यदि वह नास्तिक है तो सर्व प्रथम पाँचवीं परीक्षा का उपयोग करना चाहिए और उसके बाद दूसरी। चौथी परीक्षा सबके लिए समान रूप से उपयोगी रहेगी।

सत्यासत्य का निर्णय हो जाने पर भी प्रत्येक व्यक्ति उसका ग्रहण और त्याग कर सके, यह आवश्यक नहीं है। सत्य को जानते हुए उसमें प्रवृत्ति नहीं होती और असत्य को जानते हुए उससे निवृत्ति नहीं हो पाती। ऐसा करने के लिए दृढ़-सङ्कल्प, स्वाध्याय और सत्संग आवश्यक हैं। इस नियम में 'सर्वदा' पद महत्त्वपूर्ण है। सत्य के ग्रहण और असत्य को छोड़ने पर बल देने के लिए यह पद नियम में रक्खा गया है। इसका आशय यह है कि आर्यसमाज के प्रत्येक सदस्य को प्रत्येक स्थिति में सत्य के ग्रहण करने और असत्य के छोड़ने में उद्यत रहना चाहिए।

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

इस नियम के आधार—वेद-मन्त्र

१. अग्ने व्रतपते व्रतं चरिष्यामि तच्छकेयं तन्मे राध्यताम्।

इदमहमनृतात्सत्यमुपैमि॥ —यजुः० १।५

अर्थ—हे सत्यभाषण आदि धर्मों के पालन करने और सत्योपदेश करनेवाले परमेश्वर मैं जो झूठ से अलग सत्यव्रत, अर्थात् सत्य बोलना, सत्य मानना और सत्य करना है, उसका अनुष्ठान, अर्थात् नियम से ग्रहण करने वा जानने और उसकी प्राप्ति की इच्छा करता हूँ। मेरे उस सत्यव्रत को आप अच्छी प्रकार सिद्ध कीजिए, जिससे मैं उक्त सत्यव्रत के नियम-पालन करने में समर्थ होऊँ और मैं इसी प्रत्यक्ष सत्यव्रत के आचरण का नियम करूँगा।

२. सत्येनावृता श्रिया प्रावृता यशसा परीवृता।

—अथर्व० कां० १२।(१)।२।५

अर्थ—(**सत्येनावृता**) सब मनुष्य प्रत्यक्षादि प्रमाणों से सत्य की परीक्षा करके सत्य के आचरण से युक्त हों॥ (**श्रिया प्रावृता**) हे मनुष्य लोगो ! तुम शुभ गुणों से प्रकाशित होके, चक्रवर्त्तिराज्य आदि ऐश्वर्य को सिद्ध करके, अतिश्रेष्ठ लक्ष्मी से युक्त होके, शोभारूप श्री को सिद्ध करके, उसको चारों ओर पहिनके शोभित होओ (**यशसा परीवृताः**) सब मनुष्यों को उत्तम गुणों का ग्रहण करके सत्य के आचरण और यश, अर्थात् उत्तम कीर्त्ति से युक्त होना चाहिए।

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

पाँचवाँ नियम

सब काम धर्मानुसार, अर्थात् सत्य और असत्य को विचार करके करने चाहिएँ।

किसी कार्य को आरम्भ करने से पूर्व उसके लिए तैयारी करना आवश्यक होता है। चतुर्थ नियम में आर्यसमाज के प्रत्येक सदस्य को सत्य के ग्रहण और असत्य के त्याग करने के लिए सर्वदा उद्यत करके तदनुसार सब काम करने का आदेश इस पाँचवें नियम में दिया गया है।

इस नियम में सब काम धर्मानुसार करने का विधान है। धर्म शब्द सुनते ही बहुत-से व्यक्ति बिदक जाते हैं। तथाकथित उच्च शिक्षित समुदाय में धर्म का उपहास करना एक फ़ैशन बन गया है। केवल भारतवर्ष में ही नहीं वरन् संसार के अन्य देशों में भी गत अनेक वर्षों से धर्म के प्रति घृणा और विद्रोह चला आ रहा है।

फ्राँस के प्रसिद्ध विद्वान् बर्थोले ने अपने एक व्याख्यान में कहा था—

"The day of Religion has passed and religion must now be replaced by science." अर्थात् धर्म के दिन चले गये। अब धर्म का स्थान विज्ञान लेगा।

रूस के प्रसिद्ध विद्वान् टॉलस्टाय ने कहा था—"Religion is obsolete : belief in any thing but science is ignorance. Science will arrange all that is needful and one must be guided in life by science alone." अर्थात् धर्म का युग चला गया। विज्ञान के अतिरिक्त अन्य किसी बात पर विश्वास करना भूल है। जिस किसी वस्तु की हमें आवश्यकता है, वह सब विज्ञान से प्राप्त हो जाती है।

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

जीवन का दर्शन केवल विज्ञान ही होना चाहिए।

धर्म का विरोध करने में दो कदम आगे बढ़ाते हुए कुछ लोगों ने तो यह कहना शुरू कर दिया है—"आज जबकि विज्ञान ने अपने अद्भुत, अपूर्व आविष्कारों और अन्वेषणों से दुनिया की काया पलट दी है, हमें इस बात का अन्तिम फ़ैसला कर लेना है कि धर्म और ईश्वर की कल्पना झूठी, हानिकारक और अवैज्ञानिक तो है ही, वह व्यक्ति और समाज के लिए अनावश्यक भी है और इसलिए धर्म और ईश्वर को हमें सदा के लिए दफ़ना देना है ताकि मानवसमाज भय और आतंक से मुक्त होकर सही माने में और अधिक समृद्ध व सुखी बन सके। धर्म की कल्पना चाहे वह किसी भी खुराफ़ाती दिमाग़ की उपज क्यों न हो एक ऐसी कल्पना है, जिसके बल पर थोड़े से धूर्त और चालाक लोग आज तक अपनी उदरपूर्त्ति करते आ रहे हैं।"[१]

धर्म से समाज को क्या मिलता है, इस सम्बन्ध में आगे चलकर वही लेखक लिखता है—"धर्म से समाज को घृणा, वैमनस्य, द्वेष और कटुता के सिवा क्या प्राप्त हुआ है? धर्म ने समाज को झूठी कल्पनाओं, ग़लत परम्पराओं, रूढ़िपूर्ण मान्यताओं और अवैज्ञानिक विचारों के सिवा दिया ही क्या है?....धर्म ने व्यक्ति और समाज को पंगु बना दिया है, उसे निकम्मा और अकर्मण्य कर दिया है और जनमानस में नपुंसकता के विषबीज बो दिये हैं।"[२]

जीवन में धर्म की उपादेयता के सम्बन्ध में लेखक का स्पष्ट मत है—"धर्म और ईश्वर की कोई उपादेयता नहीं है। उलटे ये जीवन को अधिक कुण्ठाग्रस्त, कठोर, विचित्र और विपन्न बनाते हैं। धर्म जीवन की सरसता को समाप्त

---

१. सरिता अगस्त (द्वितीय) १९७३ ई०, पृष्ठ ५१

२. वही, पृष्ठ ५४

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

करता है, व्यक्ति की स्वतन्त्रता को हरता है। धर्म व्यक्ति को परान्नभोजी, निष्क्रिय, निकम्मा, ढोंगी, पाखण्डी और बेईमान बनाता है।"[१]

धर्म के प्रति घृणा और इस प्रकार के विषवमन के दो मूलकारण हैं। एक तो गत कई शताब्दियों में धर्म के ठेकेदारों (धर्मध्वजियों) का स्वयं का आचरण और दूसरे इन धर्म-विद्रोहियों की अज्ञानता। विज्ञान ने सिद्ध कर दिया है कि हमारी पृथ्वी नारंगी की भाँति गोल है और सूर्य के चारों ओर घूमती है, परन्तु बाइबिल के आधार पर ईसाइयों का विश्वास रहा है कि पृथ्वी चपटी है। पृथ्वी को गोल कहनेवालों को इन ईसाइयों ने यातनाएँ दीं और उन्हें नास्तिक घोषित कर दिया। ईसाइयों के इस प्रकार के आचरण से वैज्ञानिकों के हृदय में धर्म के प्रति घृणा उत्पन्न होना स्वाभाविक था। पौराणिक मत में भी इसी प्रकार के कई मूर्खतापूर्ण विश्वास चले आ रहे हैं। कोई कहता है कि पृथ्वी शेष, अर्थात् सहस्त्र फणवाले सर्प के सिर पर टिकी है। दूसरा कहता है कि यह बैल के सींग पर ठहरी है। एक वैज्ञानिक इन गपोड़ों को कैसे सही मान सकता है? परन्तु उससे एक भूल अवश्य हुई है। उसने धर्म के वास्तविक रूप को जानने के लिए परिश्रम न कर इन गपोड़ों को ही असली धर्म समझ लिया है। वस्तुतः धर्म और विज्ञान में विरोध है ही नहीं। "विज्ञान उसको कहते हैं कि जो कर्म-उपासना और ज्ञान इन तीनों से यथावत् उपयोग लेता और परमेश्वर से लेके तृणपर्यन्त पदार्थों का साक्षात् बोध का होना, उनसे यथावत् उपयोग का करना।"[२] विज्ञान मनुष्य को धर्म और ईश्वर से विमुख नहीं करता वरन् उनकी ओर ले-जाता है। महर्षि दयानन्द की

---

१. सरिता, अगस्त (द्वितीय) १९७३, पृष्ठ ५५
२. ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका, वेदविषयविचारः, पृ० ४५

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

दृष्टि में—"योगाभ्यास और विज्ञान के बिना परमात्मा भी नहीं दीख पड़ता।"[१]

विज्ञान के साथ धर्म का भी अर्थ जान लेना चाहिए। इस शब्द का प्रयोग कई अर्थों में होता आया है। यह संस्कृत का एक ऐसा शब्द है कि इसका अनुवाद संसार की किसी भी भाषा के एक शब्द में नहीं किया जा सकता। अंग्रेजीभाषा में इसका पर्याय 'रिलीजन' समझा जाता है, जिसका अर्थ एक ऐसे विश्वास से है जैसाकि मनुष्य का ईश्वर से, जिसपर वह आश्रित अनुभव करता है, सम्बन्ध जोड़ता है।[२] परन्तु धर्म शब्द का इससे अधिक व्यापक अर्थ है। यह शब्द 'धृ' धातु से बना है, जिसका तात्पर्य है 'धारण करना', 'आलम्बन देना', 'पालन करना' किसी वस्तु के जो ऐसे गुण हैं जिनमें वह अपने रूप में धारित रहती है, उन गुणों को उस वस्तु का धर्म कहा जाता है। धर्म का अर्थ 'निश्चित नियम' व्यवस्था या सिद्धान्त या 'आचरण नियम' भी है। राजधर्म, प्रजाधर्म, वर्णाश्रम धर्म में 'धर्म' शब्द का इसी अर्थ में प्रयोग किया गया है।

महर्षि दयानन्द को नैतिक मूल्यों में सत्य, निष्पक्षता और न्याय अत्यन्त प्रिय थे। इन्हें वे धर्म का पर्याय समझते थे। इसलिए उन्होंने धर्म की परिभाषा यह की है—'क्योंकि जो न्याय, अर्थात् पक्षपात को छोड़के सत्य का आचरण और असत्य का परित्याग करना है, उसी को धर्म कहते हैं। यही धर्म का स्वरूप और सबसे उत्तम धर्म है।'[३] जो पक्षपातरहित न्यायाचरण, सत्यभाषणादि युक्त ईश्वराज्ञा वेदों से अविरुद्ध

१. सत्यार्थप्रकाश द्वादशसमुल्लास, पृष्ठ २७२

२. "A belief binding the spiritual nature of man to an upper human Being on whom he is conscious that he is dependent."
—Standard dictionary.

३. ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका, वेदोक्तधर्मविषय, पृ० ११८

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

है, उसको 'धर्म' और जो पक्षपातसहित अन्यायाचरण, मिथ्याभाषणादि ईश्वराज्ञाभंग वेदविरुद्ध है उसको 'अधर्म' मानता हूँ।[१] धर्म की इस परिभाषा को स्वीकार कर तदनुसार आचरण करने पर धर्म के प्रति अनास्था, अविश्वास व घृणा स्वतः समाप्त हो जाएगी। स्वार्थवश मनुष्य जब अनेक धर्मों की रचना कर उसके अनुसार आचरण करने लगते हैं, तो पारस्परिक संघर्ष व असन्तोष अनिवार्य हो जाता है। महर्षि दयानन्द की स्पष्ट घोषणा है कि धर्म एक ही होता है अनेक नहीं। वे लिखते हैं—'सब मनुष्यों के लिए धर्म और अधर्म एक ही है, दो नहीं। जो कोई इसमें भेद करे तो उसको अज्ञानी और मिथ्यावादी ही समझना चाहिए।'[२] इसी बात को महर्षि ने एक दूसरे ढंग से स्पष्ट किया है। वे लिखते हैं, 'धर्म सबका एक होता है वा अनेक? जो कहे अनेक होता है, तो एक-दूसरे से विरुद्ध होते हैं वा अविरुद्ध? जो कहो कि विरुद्ध होते हैं तो एक के बिना दूसरा धर्म नहीं हो सकता और जो कहो अविरुद्ध हैं, तो पृथक्-पृथक् होना व्यर्थ है। इसलिए धर्म और अधर्म एक ही हैं, अनेक नहीं।'[३]

यहाँ यह शङ्का उत्पन्न हो सकती है कि यदि सब मनुष्यों का धर्म एक ही है तो शास्त्रों में वर्ण (ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य व शूद्र) तथा आश्रम (ब्रह्मचर्य, गृहस्थ, वानप्रस्थ व संन्यास) के पृथक्-पृथक् धर्मों का विवेचन किया गया है, ऐसा क्यों? इसके उत्तर में हमारा निवेदन है कि धर्म की यह भिन्नता व अनेकरूपता वस्तुतः वर्ण व आश्रम रूप में ही है। मानवरूप में सबका धर्म एक ही है और वह है सत्याचरण। यहाँ एक बात और विचारणीय है। महर्षि दयानन्द ने धर्म की परिभाषा में कई शब्दों का प्रयोग किया है, परन्तु सबसे अधिक बल सत्य

---

१. सत्यार्थप्रकाश, स्वमन्तव्यामन्तव्यप्रकाश, सं० ३
२. ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका, वेदोक्तधर्मविषय, पृ० १२१
३. सत्यार्थप्रकाश, एकादशसमुल्लासः, पृ० २४९

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

पर ही दिया है। इसका स्पष्टीकरण महर्षि ने इस प्रकार किया है—

प्रश्न—धर्म और अधर्म किसको कहते हैं?

उत्तर—जो पक्षपातरहित न्याय, सत्य का ग्रहण, असत्य का परित्याग, पाँचों परीक्षाओं के अनुकूल आचरण, ईश्वराज्ञा पालन, परोपकार करना रूप धर्म और जो इसके विपरीत, वह अधर्म कहाता है, क्योंकि जो सबके अविरुद्ध वह धर्म और जो परस्पर विरुद्धाचरण सो अधर्म क्योंकर न कहावेगा?

देखो! किसी ने किसी से पूछा कि सत्य क्या है? उसको उसने उत्तर दिया जो मैं मानता हूँ। फिर उसने पूछा और जो वह मानता है, वा जो मैं मानता हूँ, वह क्या है? उसने कहा कि अधर्म है। यही पक्षपात से मिथ्या और विरुद्धाचरण अधर्म और जब तीसरे ने दोनों से पूछा कि सत्य बोलना धर्म है अथवा असत्य? तब दोनों ने उत्तर दिया कि सत्य बोलना धर्म और असत्य बोलना अधर्म है। इसी का नाम धर्म जानो।[१]

धर्म के इस रूप को महर्षि दयानन्द ने प्रस्तुत नियम में पूर्णतः स्पष्ट कर दिया है। उनके मतानुसार धर्म का अर्थ है सत्य और असत्य को विचार करके करना, अर्थात् सत्याचरण धर्म है और इसके विपरीत अधर्म है।

सत्य और असत्य को विचार करके काम करने को ही सोच-समझकर, विचारपूर्वक तथा बुद्धिपूर्वक काम करना कहते हैं। अरस्तु ने मनुष्य को विचारशील प्राणी कहा है (Man is a rational animal.) यदि वह बुद्धि का उपयोग नहीं करता तो वह निरा पशु-समान है। आश्चर्य है कि अनेक मत-मतान्तरवालों ने इस मौलिक बात की उपेक्षा करके धर्म में अक़्ल (बुद्धि) का दखल (प्रवेश) वर्जित कर दिया। इसके फलस्वरूप अनेक अन्धविश्वासों ने जन्म

१. व्यवहारभानु।

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

लेकर धर्म के रूप को विकृत कर दिया। अपने इस विचार की पुष्टि में हम बाइबिल से दो उदाहरण प्रस्तुत करते हैं, 'तब परमेश्वर ने उसे कहा कि तेरे हाथों में यह क्या है और वह बोला कि छड़ी। तब उसने कहा कि उसे भूमि पर डाल दे और उसने उसे भूमि पर डाल दिया और वह सर्प बन गई और मूसा उसके आगे से भागा। तब परमेश्वर ने मूसा से कहा कि अपना हाथ बढ़ा और उसकी पूँछ पकड़ ले, तब उसने अपना हाथ बढ़ाया और उसे पकड़ लिया और यह उसके हाथ में छड़ी हो गई। तब परमेश्वर ने उसे कहा कि फिर तू अपना हाथ अपनी गोद में कर और उसने अपना हाथ अपनी गोद में किया। जब उसने उसे निकाला तो देखा कि उसका हाथ हिम के समान कोढ़ी था और उसने कहा कि अपना हाथ फिर अपनी गोद में कर, उसने फिर अपने हाथ को अपनी गोद में किया और अपनी गोद से उसे निकाला तो देखा कि जैसी उसकी सारी देह थी वह वैसा फिर हो गया। तू नील नदी का जल लेके सूखी पर डालियो और वह जल जो तू नदी से निकालेगा, सो सूखी पर लोहू हो जायेगा।' —[तौ०] या० प० ४, अ० २,३,४,६,७,९

क्या कोई बुद्धिमान् व्यक्ति ऐसी बातों में विश्वास कर सकता है? महर्षि दयानन्द ने इसकी समीक्षा करते हुए लिखा है—'अब देखिए! कैसे बाज़ीगर का खेल, खिलाड़ी ईश्वर, उसका सेवक मूसा और इन बातों के माननेहारे कैसे हैं? क्या आजकल बाज़ीगर लोग इनसे कम करामात करते हैं? यह ईश्वर क्या, यह तो बड़ा खिलाड़ी है। इन बातों को विद्वान् क्योंकर मानेंगे?"[1]

एक दूसरे स्थान पर तो ऐसा गपोड़ा हाँका है कि उसके समाने सारा गणितशास्त्र फेल हो गया है। वहाँ कहा है—

१. सत्यार्थप्रकाश, त्रयोदशसमुल्लास।

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

'तब यीशु ने उनसे कहा तुम्हारे पास कितनी रोटियाँ है, उन्होंने कहा पाँच रोटियाँ और दो मछलियाँ। तब उसने लोगों को भूमि पर बैठने की आज्ञा दी और उसने उन पाँच रोटियों को और दो मछलियों को लेके धन्य मानके तोड़ा और अपने शिष्यों व लोगों को दिया। सो सब खाके तृप्त हुए और जो टुकड़े बच रहे उन्होंने उनके बारह टोकरे भरे उठाये। जिन्होंने खाया सो स्त्रियों और बालकों को छोड़ पाँच सहस्र पुरुष थे।"[१]

इसकी समीक्षा में महर्षि दयानन्द लिखते हैं—"अब देखिए! क्या यह आजकल के झूठे सिद्धों और इन्द्रजाली आदि के समान छल की बात नहीं है? उन रोटियों में अन्य रोटियाँ कहाँ से आ गईं। यदि ईसा में ऐसी सिद्धियाँ होतीं तो आप भूखा हुआ गूलर के फल खाने को क्यों भटका करता था? अपने लिए मिट्टी, पानी और पत्थर आदि से मोहनभोग, रोटियाँ क्यों न बना लीं? ये सब बातें लड़कों के खेलपन की हैं। जैसे कितने ही साधु-वैरागी ऐसी छल की बातें करके भोले मनुष्यों को ठगते हैं, वैसे ही ये भी हैं।"

अतः अन्धविश्वास के दोष से बचने के लिए प्रत्येक व्यक्ति को सत्य और असत्य को विचार करके काम करना चाहिए। इस विषय में कुछ व्यक्ति यह आपत्ति करते हैं कि व्यावहारिक जीवन में निरी सच्चाई से काम नहीं चल सकता। कई अवसर जीवन में ऐसे आते हैं जबकि मनुष्य असत्य आचरण करने के लिए बाध्य हो जाता है और असत्याचरण से ही उसका हित प्राप्त होता है। शान्तिपर्व में सनत्कुमार के आधार पर नारदजी शुक्रजी से कहते हैं—

सत्यस्य वचनं श्रेयः सत्यादपि हितं वदेत्।
यद्भूतहितमत्यन्तं एतत्सत्यं मतं मम॥

---

१. सत्यार्थप्रकाश, त्रयोदशसमुल्लास।

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

"सच बोलना अच्छा है, परन्तु सत्य से भी अधिक ऐसा बोलना अच्छा है, जिससे सब प्राणियों का हित हो, क्योंकि जिससे सब प्राणियों का अत्यन्त हित होता है, वही हमारे मत में सत्य है।"

बाइबिल में पॉल का कथन है—"यदि मेरे असत्यभाषण से प्रभु के सत्य की महिमा और बढ़ती है तो इससे मैं पापी क्योंकर हो सकता हूँ।"[१]

कुछ लोगों का विचार है कि रोगी, विक्षिप्त, शत्रु, चोर और अन्याय से प्रश्न करनेवाले के सम्मुख सत्य नहीं बोलना चाहिए।

महर्षि दयानन्द उपर्युक्त विचारधारा से सहमत नहीं हैं। उनके विचार में मनुष्य को प्रत्येक अवस्था में सत्य के अनुसार आचरण करना चाहिए। प्रश्नोत्तर रूप में उन्होंने अपने विचार को इस प्रकार स्पष्ट किया है—

प्रश्न—क्यों जी! सर्वथा सत्य से तो कोई व्यवहार सिद्ध नहीं हो सकता। देखो व्यापार में सत्य बात कह दे, तो किसी पदार्थ का विक्रय न हो। हार-जीत के व्यवहारों में मिथ्या साक्षी खड़े न करें तो हार हो जाए इत्यादि हेतुओं से सब ठिकानों में सत्यभाषणादि कैसे कर सकते हैं?

उत्तर—यह बात महामूर्खता की है......................वैसे जो मनुष्य महामूर्ख हैं, वे ऐसा समझते हैं कि सत्य से व्यवहार का नाश और झूठ से ही व्यवहार की सिद्धि होती है, परन्तु जब किसी को कोई एक व्यवहार में झूठ समझ ले, तो उसकी प्रतिष्ठा और विश्वास सब नष्ट होकर उसके सब व्यवहार नष्ट हो जाते हैं और जो सब व्यवहारों में झूठ को छोड़कर सत्य ही कहते हैं, उनको लाभ-ही-लाभ होते हैं,

---

१. "Far, if the truth of God hath more abounded through my lie unto his glory; why yet am I also judged as a sinner?"

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

हानि कभी नहीं, क्योंकि सत्य व्यवहार करने का नाम धर्म और विपरीत का अधर्म है। मनुष्य में मनुष्यपन यही है कि सर्वदा झूठ व्यवहारों को छोड़कर सत्य व्यवहारों को सदा ग्रहण करें।[१]

सत्याचरण के बिना जगद् व्यापार चलना असम्भव है। किसी राष्ट्र की प्रथम इकाई परिवार के सदस्य परस्पर व्यवहार में सत्य का पालन न करें तो क्या ऐसा परिवार चल सकता है ? असत्य आचरण से एक-दूसरे के प्रति अविश्वास उत्पन्न हो जाता है। अविश्वास से पारस्परिक प्रेम का क्षय होता है। प्रेम अभाव से द्वेष और विरोध उत्पन्न होते हैं और इनसे घात-प्रतिघात पैदा होते हैं। अन्त में जाकर सर्वनाश हो जाता है। इसके विपरीत सत्याचरण से मनुष्य का कल्याण होता है। महर्षि दयानन्दजी लिखते हैं—"ऐसे धार्मिकों को सदा लाभ-ही-लाभ होता है और झूठों की दुर्दशा होकर दिवाले ही निकल जाते हैं, इसलिए सब मनुष्यों को अत्यन्त उचित है कि सर्वथा झूठ छोड़कर सत्य ही से सब व्यवहार करें, जिससे धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष को प्राप्त होकर, सदा आनन्द में रहें।"[२] विद्वानों का यही काम है कि सत्यासत्य का निर्णय करके सत्य का ग्रहण असत्य का त्याग करके परम आनन्दित होते हैं। वे ही गुणग्राहक पुरुष विद्वान् होकर धर्म, अर्थ, काम और मोक्षरूप फलों को प्राप्त होकर प्रसन्न रहते हैं।[३]

इस नियम के आधार—वेद-मन्त्र

१. स्वधया परिहिता श्रद्धा पर्य्यूढा दीक्षया गुप्ता यज्ञे प्रतिष्ठिता लोको निधनम्। —अथर्व० कां० १२।५(१)।३

१. व्यवहारभानु।

२. वही।

३. सत्यार्थप्रकाश, दशम समुल्लास, पृष्ठ १७४

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

अर्थ—मनुष्य अपने ही पदार्थों का धारण करें। (**श्रद्धया पर्यूढा**) सब मनुष्य सत्य व्यवहार पर अत्यन्त विश्वास को प्राप्त हों, क्योंकि जो सत्य है, वही विश्वास का मूल तथा सत्य का आचरण ही उसका फल और स्वरूप है, असत्य कभी नहीं।

२. दृष्ट्वा रूपे व्याकरोत्सत्यानृते प्रजापतिः।
अश्रद्धामनृतेऽदधाच्छ्रद्धाꣳ सत्ये प्रजापतिः॥

—यजुः० १९।७७

अर्थ—इस मन्त्र का अभिप्राय यह है कि प्रजापति परमेश्वर जो सब जगत् का स्वामी है, वह सब मनुष्यों के लिए उपदेश करता है कि सब मनुष्यों को सब प्रकार से सब काल में सत्य में ही प्रीति करनी चाहिए, असत्य में कभी नहीं।

३. देहि मे ददामि ते नि मे धेहि नि ते दधे।
निहारं च हरासि मे निहारं निहराणि ते स्वाहा॥

—यजुः० ३।५०

भावार्थ—सब मनुष्यों को देना–लेना, पदार्थों को रखना–रखवाना वा धारण करना आदि व्यवहार सत्य–प्रतिज्ञा से ही करने चाहिएँ।

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

छठा नियम

संसार का उपकार करना इस समाज का मुख्य उद्देश्य है, अर्थात् शारीरिक, आत्मिक और सामाजिक उन्नति करना।

किसी उद्देश्य की प्राप्ति के लिए ही व्यक्ति अपने कर्म किया करता है। यदि गहराई से देखा जाए तो ये कर्म प्रायः स्वार्थपरक होते हैं। इन कर्मों से मनुष्य अपना और अपने परिवार का हित करता है। आरम्भ में, अर्थात् बाल्यावस्था में मनुष्य स्वार्थी होता है। अपना हित करना ही उसका उद्देश्य होता है। इस तथ्य से इन्कार नहीं किया जा सकता कि जब तक मनुष्य अपना हित न कर ले, वह दूसरे के बारे में सोच भी नहीं सकता। भूखे भजन न होय गोपाला। एक रोगी, भूखा और अशिक्षित व्यक्ति दूसरे का क्या हित कर पाएगा? परन्तु यह भी तो सत्य है कि मनुष्य एक सामाजिक प्राणी है। बिना समाज के उसके जीवित रहने की कल्पना भी नहीं की जा सकती। परिवार समाज का ही एक अङ्ग है। बच्चे का शारीरिक, मानसिक और संवेगात्मक विकास परिवार पर ही आश्रित है। ज्यों-ज्यों बच्चा विकसित होता जाता है उसका सम्बन्ध परिवार तक ही सीमित न रहकर, समाज, प्रान्त, राष्ट्र और विदेश से जुड़ जाता है। इन सबसे हमारी मौलिक आवश्यकताओं की पूर्त्ति होती है। कितनी ही प्राण-रक्षक ओषधियों के लिए हमें विदेशों पर निर्भर रहना पड़ता है। इस प्रकार शनैः-शनैः मनुष्य अनुभव करता है कि उसपर अन्यों का भारी ऋण है, जिससे अनृण होने के लिए उसे परहित करना चाहिए। परहित करने का नाम है परोपकार। यह मनुष्य का एक बहुत बड़ा सद्गुण है। सज्जन सदा परोपकार में प्रवृत्त होते हैं। इसी में उनकी शोभा है, इसीलिए

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

प्रस्तुत नियम में कहा है—"संसार का उपकार करना इस समाज (आर्यसमाज) का मुख्य उद्देश्य है।"

यहाँ यह ध्यान देने योग्य है कि वह उपकार केवल अपना या अपने परिवार, रिश्तेदारों, मित्रों या किसी विशेष व्यक्ति, वर्ग, ग्राम, नगर, प्रान्त और देश का ही नहीं, अपितु समस्त विश्व का करना है। इससे स्पष्ट सिद्ध होता है कि आर्यसमाज एक वर्ग या सम्प्रदायविशेष तक सीमित, संकुचित संगठन नहीं है। यह एक सार्वभौम संगठन हैं। आर्यसमाज के संस्थापक महर्षि दयानन्द सरस्वती ने अपने अमर-ग्रन्थ सत्यार्थप्रकाश के अन्तर्गत स्वमन्तव्या-मन्तव्यप्रकाश में लिखा है—"मैं अपना मन्तव्य उसी को जानता हूँ कि जो तीन काल में सबको एक-सा मानने योग्य है। मेरा कोई नवीन कल्पना वा मतमतान्तर चलाने का लेशमात्र भी अभिप्राय नहीं है, किन्तु जो सत्य है, उसको मानना-मनवाना और जो असत्य है, उसको छोड़ना और छुड़वाना मुझको अभीष्ट है। यदि मैं पक्षपात करता तो आर्यावर्त्त में प्रचरित मतों में से किसी एक मत का आग्रही होता।"

परोपकारी-जन का महर्षि दानन्द की दृष्टि में बहुत ऊँचा स्थान है। "गोकरुणानिधिः" की मूमिका में वे लिखते हैं—"पूजनीय जन वे हैं कि जो अपनी हानि होती हो, तो भी सबके हित के करने में अपना तन, मन, धन लगाते हैं और तिरस्करणीय वे हैं, जो अपने ही लाभ में सन्तुष्ट रहकर सबके सुखों का नाश करते हैं।" यही आशय इन शब्दों में व्यक्त किया गया है—"क्या ऐसा कोई भी विद्वान् भूगोल में था, है और होगा जो परोपकाररूप धर्म और परहानिस्वरूप अधर्म के सिवाय धर्म वा अधर्म की सिद्धि कर सके। धन्य वे महाशय जन हैं, जो अपने तन, मन और धन से संसार का अधिक उपकार सिद्ध करते हैं।"

—ऋषि दयानन्द के पत्र और विज्ञापन, पृ० ३१९-३२०

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

हमें परोपकार किस प्रकार करना चाहिए और उसका क्रम क्या हो? इस प्रक्रिया और क्रम को बताते हुए ही इस नियम में आगे कहा है—अर्थात् शारीरिक, आत्मिक और सामाजिक उन्नति करना। इन तीनों में से प्रथम शारीरिक उन्नति करना है। संसार की शारीरिक उन्नति के दो भेद हैं—एक तो अपनी शारीरिक उन्नति और दूसरी अपने से इतर संसार के सभी जनों की उन्नति। इसका कारण यह है कि शरीर के स्वस्थ होने पर ही सारे कार्य या प्रगतियाँ चलती हैं। इस सम्बन्ध में चरक का कथन विशेष विचारणीय है—

सर्वमन्यत् परित्यज्य शरीरमनुपालयेत्।
तदभावे हि भावानां सर्वाभावः शरीरिणाम्॥

—चरक, निदान० ६।७

अर्थात् अन्य सब-कुछ को छोड़कर सबसे पहले शरीर की देखभाल करे, क्योंकि अस्वस्थ होने पर अन्य सब स्वतः बेकार हो जाता है।

एतदर्थ शरीर-विज्ञान के अनुसार उचित दिनचर्या, पौष्टिक-स्वच्छ सादा और नियमित भोजन, व्यवस्थित व्यायाम, वीर्य का संरक्षण और उपयुक्त निद्रा को व्यवहार में लाना चाहिए। दूसरों की शारीरिक उन्नति के लिए अपने बन्धुओं में, बाल-बच्चों में सात्त्विक आहार की रीति प्रचलित करे। व्यायाम का स्वभाव डाले। बालकों को खेलकूद में, दौड़ने-भागने, उछलने-फाँदने में तथा अन्य अनेक साहस के कार्यों में प्रोत्साहन दे। शारीरिक हित के लिए उपर्युक्त सभी आवश्यक हैं। इनमें भोजन का प्रमुख स्थान है। मांस का सेवन कदापि नहीं करना चाहिए। महर्षि दयानन्द मांस-भक्षण के प्रबल विरोधी थे। अपने उपदेशों में मांस-भक्षण का वे अत्यन्त ज़ोरदार खण्डन करते थे। उनके प्रसिद्ध ग्रन्थ 'सत्यार्थप्रकाश' में से मांस-भक्षण निषेधक कुछ सन्दर्भ यहाँ उद्धृत किये जाते हैं—

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

"जिस प्रकार आरोग्य, विद्या और बल प्राप्त हो, उसी प्रकार भोजन-छादन और व्यवहार करें-करावें, अर्थात् जितनी क्षुधा हो, उससे कुछ न्यून भोजन करें। मद्य-मांसादि के सेवन से अलग रहें।"

—समुल्लास-२

"ब्रह्मचारी और ब्रह्मचारिणी मद्य, मांस, गन्ध, माला, रस, स्त्री और पुरुष का सङ्ग, सब खटाई, प्राणियों की हिंसा आदि कर्मों को छोड़ दें।"

—समुल्लास-३

"जो लोग मांस-भक्षण और मद्यपान करते हैं, उनके शरीर और वीर्यादि धातु भी दुर्गन्धादि से दूषित होते हैं।"

—समुल्लास-१०

"और मद्य-मांसाहारी म्लेच्छ कि जिनका शरीर मद्य-मांस के परमाणुओं ही से पूरित है, उनके हाथ का न खावें।"

—समुल्लास-१०

"और जो मांस खाना है, यह भी उन्हीं वाममार्गी टीकाकारों की लीला है, इसलिए उनको राक्षस कहना उचित है, परन्तु वेदों में कहीं मांस का खाना नहीं लिखा।"

—समुल्लास-१२

महर्षि दयानन्द की दृष्टि में मांसाहारी व्यक्ति नीचतम होता है। वे लिखते हैं—"शुभ गुण-युक्त सुखकारक पशुओं के गले छुरों से काटकर जो अपना पेट भर सब संसार की हानि करते हैं, क्या संसार में उनसे भी अधिक कोई विश्वासघाती, अनुपकारी, दुःख देनेवाले और पापीजन होंगे ?"

—गोकरुणानिधिः

"हे मांसाहारियो! तुम लोग जब कुछ काल के पश्चात् पशु न मिलेंगे, तब मनुष्यों का मांस भी छोड़ोगे वा नहीं ? हे परमेश्वर! तू क्यों इन पशुओं पर, जोकि बिना अपराध मारे जाते हैं, दया नहीं करता ?

क्या उनपर तेरी प्रीति नहीं है ? क्या इनके लिए तेरी—

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

न्यायसभा बन्द हो गई है? क्यों उनकी पीड़ा छुड़ाने पर ध्यान नहीं देता और उनकी पुकार नहीं सुनता? क्यों इन मांसाहारियों के आत्माओं में दया प्रकाश कर निष्ठुरता, कठोरता, स्वार्थपन और मूर्खता आदि दोषों को दूर नहीं करता? जिससे ये इन बुरे कामों से बचें।'' —गोकरुणानिधिः

शारीरिक के पश्चात् आत्मिक उन्नति का क्रम आता है। मनुष्य के पूर्ण विकास के लिए केवल शारीरिक विकास पर्याप्त नहीं है। इतने अंश में तो मनुष्य और पशु में कोई अन्तर नहीं है। पाशविक बल में मनुष्य शेर, हाथी और बैल आदि पशुओं का सामना नहीं कर सकता। इसीलिए मनुष्य को शारीरिक बल के साथ-साथ मानसिक और आध्यात्मिक बल भी उपार्जित करना चाहिए। एतदर्थ शिक्षा के द्वारा विद्या की प्राप्ति कर आत्म-अनात्म का बोध कर अपने कर्त्तव्यों का ज्ञान प्राप्त करे। प्रातः-सायं नियमितरूप से ईश्वरोपासना करे। वेद और ऋषिकृत ग्रन्थों का स्वाध्याय करे। विवेक, वैराग्य, षट्क सम्पत्ति (शम, दम, उपरति, तितिक्षा, श्रद्धा, समाधान) मुमुक्षुत्व, ये चार-साधन और चार अनुबन्धों का पालन करे। इसके साथ ही श्रवण, मनन, निदिध्यासन और साक्षात्कार को अपने आचरण में लाये। आत्मिक उन्नति के अनेक उपाय हैं। उनमें से कुछ का संकेत यहाँ किया गया है। यह विषय बहुत विस्तृत और गम्भीर है। विशेष ज्ञान प्राप्त करने के लिए महर्षि दयानन्द रचित सत्यार्थप्रकाश और ऋग्वेदादिभाष्य-भूमिका का अध्ययन किया जाए।

इसके बाद सामाजिक उन्नति पर विचार करना है। समाज के अन्तर्गत अपना परिवार अथवा आर्यसमाजस्थ लोगों का समाज ही अभिप्रेत नहीं है, वरन् संसारभर के समाजों से अभिप्राय है। संसार में अनेक देश है, उनमें अनेक समाजें हैं। विभिन्न समाजों की सभ्यता और संस्कृति में विभिन्नता है। सबका खान-पान, रहन-सहन, बोल-चाल समान नहीं

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

है। हमें सभी का अध्ययन करके उनमें व्याप्त दोषों यथा अन्धविश्वास और कुरीतियों को दूर करना चाहिए। महर्षि दयानन्द के अनुसार संसारभर में वेद-विरुद्ध चार मत हैं—पुराणी, जैनी, किरानी और कुरानी और चारों की एक सहस्र से अधिक शाखाएँ हैं। इन मतों में व्याप्त दोषों को दूर करने के लिए महर्षि दयानन्द ने खण्डन-मण्डन-पद्धति का प्रयोग किया है। इससे सत्यासत्य का बोध हो जाता है और बिना सत्यासत्य की जानकारी प्राप्त किये समाज-सुधार असम्भव है। सन्त तुलसीदास कहते हैं—

खल अघ अगुन साधु गुन गाहा। उभय अपार उदधि अवगाहा॥
तेहिं तें कछु गुन दोष बखाने। संग्रह त्याग न बिनु पहिचाने॥

—रामचरितमानस, बालकाण्ड

अर्थ—दुष्टों के पापों और अवगुणों की और साधुओं के गुणों की कथाएँ—दोनों ही अपार और अथाह समुद्र हैं। इसी से कुछ गुण और दोषों का वर्णन किया गया है, क्योंकि बिना पहचाने उनका ग्रहण या त्याग नहीं हो सकता।

समाज-सुधार के लिए आर्यसमाज के प्रत्येक सदस्य को अपने समय का कुछ भाग सार्वजनिक कामों में लगाना चाहिए। हमारे समाज में जात-पात, छुआछूत, बाल-विवाह, मादक-द्रव्यों का सेवन आदि अनेक कुरीतियाँ व्याप्त हैं। उन्हें दूर करने के लिए जगह-जगह सभाओं का आयोजन किया जाए और वहाँ भजन-व्याख्यान के साथ-साथ समाज-सुधार सम्बन्धी साहित्य भी वितरित किया जाए। अपने प्रचार में कटुता न आने दें। बड़े प्रेम-प्यार के साथ अपनी बात प्रस्तुत की जाए। खण्डन करने का अर्थ दूसरे का दिल दुखाना नहीं है। महर्षि दयानन्द सत्यार्थप्रकाश के चतुर्दश समुल्लास में मुस्लिम मत का खण्डन करते हुए लिखते हैं—"परमात्मा सब मनुष्यों पर कृपा करे कि सब-के-सब प्रीति, परस्पर मेल और एक-दूसरे के सुख की उन्नति करने में

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

प्रवृत्त हों। जैसे मैं अपना वा दूसरे मतमतान्तरों का दोष पक्षपातरहित होकर प्रकाशित करता हूँ, इसी प्रकार यदि सब विद्वान् लोग करें, तो क्या कठिनता है कि परस्पर का विरोध छूट, मेल होकर आनन्द में एकमत होके सत्य की प्राप्ति सिद्ध हो।"

इस नियम में आर्यसमाज का मुख्य उद्देश्य—'संसार का उपकार करना' बतलाकर उसकी प्राप्ति का उपाय शारीरिक, आत्मिक और सामाजिक उन्नति करना कहा गया है। विचारणीय यह है कि सामाजिक उन्नति को तीसरा स्थान क्यों दिया गया है? उत्तर स्पष्ट है कि जब तक कोई व्यक्ति शारीरिक दृष्टि से स्वस्थ न हो और उसमें आत्मबल का अभाव हो तो वह समाज की उन्नति कर ही नहीं सकता। सामाजिक सेवा के लिए व्यक्ति को स्थान-स्थान पर घूमना पड़ता है, पैदल, बस और ट्रेन आदि से यात्राएँ करनी पड़ती है। दुर्बल-रोगी व्यक्ति यह कार्य कर ही नहीं सकेगा और यह भी नितान्त सत्य है कि आत्मबलहीन व्यक्ति का जनता पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता। महर्षि दयानन्द, स्वामी श्रद्धानन्द और पं० लेखराम आदि उपदेशकों एवं नेताओं के भाषणों का श्रोताओं पर जादू का-सा प्रभाव इसीलिए पड़ता था कि उनमें आत्मिकबल था।

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

सातवाँ नियम

सबसे प्रीतिपूर्वक, धर्मानुसार, यथायोग्य वर्त्तना चाहिए।

समस्त संसार को दो भागों में विभाजित किया जा सकता है—मैं और तू। मैं एक चेतन प्राणी हूँ और तू के अन्तर्गत जड़ और चेतन दोनों आते हैं। जड़ के अन्तर्गत सूर्य, चन्द्रमा, नक्षत्र, पृथ्वी, नदी, नाले, समुद्र, झील, तालाब, पर्वत, अग्नि, वायु और आकाश आदि सभी आते हैं और चेतन के अन्तर्गत पशु, पक्षी एवं मनुष्य आते हैं। किसी-न-किसी रूप में मेरा इन सभी से सम्बन्ध रहता है। सातवें नियम में 'सबसे' के अन्तर्गत चेतन जगत् आता है। इन सबसे एक आर्यसमाजी को कैसा व्यवहार करना चाहिए, इसका निर्देश इस नियम में किया गया है। हमारे व्यवहार के तीन प्रकार कहे गये हैं—१. प्रीतिपूर्वक, २. धर्मानुसार और ३. यथायोग्य।

सामाजिक जीवन की सफलता, सुदृढ़ता और विकास प्रीतिपूर्वक व्यवहार पर निर्भर करता है। प्रीति या प्रेम एक संवेग है जो एक को दूसरे से जोड़ता है या बाँधता है। यह सीमेंट का काम करता है, जो एक ईंट को दूसरी ईंट से जोड़कर एक मज़बूत दीवार का निर्माण करता है। बिना सीमेन्ट के ईंटों को एक-दूसरे के ऊपर रखते जाइए इससे एक सुदृढ़ दीवार न बन सकेगी। एक हल्के धक्के में सब ईंटें नीचे गिर जाएँगी। इसी प्रकार हज़ारों व्यक्तियों को एक स्थान पर इकट्ठा कर दीजिए। बिना प्रेम के उनमें से न परिवार बन सकेगा, न कोई अन्य सामाजिक संगठन, इसलिए हमें सबके साथ प्रेमपूर्ण व्यवहार करना चाहिए। हमारा यह

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

व्यवहार मनुष्यजाति तक ही सीमित न रहे। हमें पशुओं और पक्षियों से भी प्रेम करना चाहिए। यह तो मानना पड़ेगा कि मनुष्य के विकास में पशु-पक्षियों का महत्त्वपूर्ण योगदान रहता है। दूध और अन्न का उपार्जन बिना पशुओं के सम्भव नहीं है। यह भी सत्य है कि जहाँ प्रेम होता है, वहाँ ईर्ष्या-द्वेष और हिंसा के लिए कोई स्थान नहीं रहता, अतः यह नियम हमें, यह भी आदेश देता है कि नरवध और पशुवध से भी हमें बचना चाहिए।

इस प्रकार सातवें नियम के 'सबसे प्रीतपूर्वक' शब्दों से स्पष्ट होता है कि संसारभर के जितने भी मनुष्य हैं, उनसे बिना जाति, मत, मज़हब, भाषा, देश, वर्ण, ऊँचे-नीचे, अपने-पराये के भेदभाव के प्रेमपूर्ण व्यवहार करना चाहिए। इसका फल यह होगा कि समाज में से वैर, शत्रुता और घृणा स्वतः मिट जाएँगे, क्योंकि—

करूँ मैं दुश्मनी किससे, अगर दुश्मन भी हो अपना।
मुहब्बत ने नहीं छोड़ी जगह दिल में अदावत[१] की॥

इसके अनन्तर इस नियम में 'धर्मानुसार' व्यवहार करने का विधान है। महर्षि दयानन्द ने इस पद का अर्थ सत्य और असत्य का विचार किया है। धर्मानुसार की व्याख्या आर्यसमाज के पाँचवें नियम में देखिए। अपने बच्चे के प्रति प्रेम करना स्वाभाविक है। कभी-कभी ऐसा देखने में आता है कि पिता मोहवश अपने पुत्र के अपराध पर उसे दण्डित न कर उसके कर्म की उपेक्षा कर देता है। यह नियम आदेश देता है कि सत्यासत्य का विचार कर, पुत्र को दण्ड अवश्य देना चाहिए अन्यथा समाज में अव्यवस्था उत्पन्न हो जाएगी। सत्य कहता है कि प्रत्येक व्यक्ति को बिना पक्षपात के अपने और पराये का विचार न करते हुए समानरूप में उसके शुभाशुभ कर्म

१. शत्रुता

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

का फल अवश्य मिलना चाहिए।

आर्यों का व्यवहार प्रीतिपूर्वक, धर्मानुसार तो होना ही चाहिए, परन्तु वह यथायोग्य भी हो। नियम का यह अंश बहुत महत्त्वपूर्ण और विचारणीय है। मनुष्यों में शारीरिक और मानसिक दृष्टि से भिन्नता होती है। सबका स्वभाव व प्रवृत्ति समान नहीं होती। अतएव सबके साथ समान व्यवहार करना अनुचित है। खीर का भोजन स्वादिष्ट और शक्तिवर्धक है, परन्तु एक रोगी के लिए यह अमृतमय भोजन विष का काम करता है। इसलिए सब व्यक्तियों को समान भोजन नहीं देना चाहिए। शारीरिक स्वास्थ्य को ध्यान में रखते हुए व्यायाम और निद्रा की व्यवस्था में भी समानता नहीं हो सकती।

वैदिक व्यवस्था में मनुष्य जीवन को चार वर्ण और चार आश्रमों में विभाजित किया गया है। ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र—ये चार वर्ण हैं और ब्रह्मचर्य, गृहस्थ, वानप्रस्थ और संन्यास—ये चार आश्रम हैं। वर्णाश्रमरूप में इन सबके कर्त्तव्य और अधिकार भिन्न-भिन्न हैं। इनके अतिरिक्त और अनेक प्रकार के सम्बन्ध हैं, यथा—स्वामी-सेवक, गुरु-शिष्य, पिता-पुत्र, बन्धु-बान्धव, वृद्ध-बालक और अधिकारी और मातहत[1]। जब हममें प्रत्येक अपने-अपने पद के अनुसार, अर्थात् यथायोग्य रीति से व्यवहार करता है तो कोई विरोध उत्पन्न नहीं होता और समाज में शान्ति बनी रहती है, परन्तु अपने-अपने अधिकार का अतिक्रमण करते ही संघर्ष की स्थिति बन जाती है। चारों वर्णों के कर्त्तव्य कर्म और गुण वर्णन करते हुए महर्षि दयानन्द लिखते हैं—"जिस-जिस पुरुष में जिस-जिस वर्ण के गुण-कर्म हों उस-उस वर्ण का अधिकार देना। ऐसी व्यवस्था रखने से सब मनुष्य उन्नतिशील

१. अधीन, Sub-ordinate

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

होते हैं, क्योंकि उत्तम वर्णों को भय होगा कि जो हमारे सन्तान मूर्खत्वादि दोषयुक्त होंगे तो शूद्र हो जाएँगे और सन्तान भी डरते रहेंगे कि जो हम उक्त चाल-चलन और विद्यायुक्त न होंगे तो शूद्र होना पड़ेगा और नीच (निम्न) वर्णों को उत्तम वर्णस्थ होने के लिए उत्साह बढ़ेगा। विद्या और धर्म के प्रचार का अधिकार ब्राह्मण को देना, क्योंकि वे पूर्ण विद्यावान् और धार्मिक होने से उस काम को यथायोग्य कर सकते हैं। क्षत्रियों को राज्य के अधिकार देने से कभी राज्य की हानि वा विघ्न नहीं होता। पशु-पालनादि का अधिकार वैश्यों ही को होना योग्य है, क्योंकि वे इस काम को अच्छे प्रकार से कर सकते हैं। शूद्र को सेवा का अधिकार इसलिए है कि वह विद्यारहित मूर्ख होने से विज्ञान-सम्बन्धी काम कुछ भी नहीं कर सकता, किन्तु शरीर के काम सब कर सकता है।" —सत्यार्थप्रकाश, चतुर्थसमुल्लास

वर्ण-व्यवस्था से यह तो स्पष्ट है कि समाज में बुद्धि, विद्या, बल और धन की दृष्टि से भेद बना ही रहेगा। यदि चारों से कभी कोई अपराध हो जाता है, तो उस दशा में उन चारों को समान-दण्ड मिले अथवा समाज में उनकी हैसियत के अनुसार यथायोग्य, अर्थात् एक ही अपराध के लिए दण्ड में भिन्नता रहे। इस सम्बन्ध में महर्षि दयानन्द का लेख विचारणीय है। मनुस्मृति के आधार पर महर्षि लिखते हैं—

"और वैसे ही जो कुछ विवेकी होकर चोरी करे उस शूद्र को चोरी से आठ गुणा, वैश्य को सोलह गुणा, क्षत्रिय को बत्तीस गुणा, ब्राह्मण को चौंसठ गुणा वा सौ गुणा अथवा एक सौ अट्ठाईस गुणा दण्ड होना चाहिए, अर्थात् जिसका जितना ज्ञान और जितनी प्रतिष्ठा अधिक हो, उसको अपराध में उतना ही अधिक दण्ड होना चाहिए।"

"इसी प्रकार साधारण मनुष्य से राजा को सहस्र गुणा दण्ड होना चाहिए।" —सत्यार्थप्रकाश, षष्ठ समुल्लास

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

यथायोग्य व्यवहार का यह अनूठा नमूना है। काश कि वर्त्तमान सरकारें इस व्यवस्था को स्वीकार कर लें। यदि ऐसा होने लगे तो निश्चित है संसार से अन्याय, अत्याचार, चोरी, डकैती, हत्या, अपहरण आदि अपराध बहुत अंशों में मिट सकते हैं, "क्योंकि यदि प्रजापुरुषों से राजपुरुषों को अधिक दण्ड न होवे तो राजपुरुष प्रजापुरुषों का नाश कर देवें। जैसे सिंह अधिक और बकरी थोड़ दण्ड से ही वश में आ जाती है, इसलिए राजा से लेकर छोटे-से-छोटे भृत्यपर्यन्त राजपुरुषों को अपराध में प्रजा-पुरुषों से अधिक दण्ड होना चाहिए।"

—वही, षष्ठसमुल्लास

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

आठवाँ नियम

अविद्या का नाश और विद्या की वृद्धि करनी चाहिए।

आर्यसमाज का मुख्य उद्देश्य संसार का उपकार करना है। इस उद्देश्य की प्राप्ति का एक साधन छठे नियम में बतलाकर दूसरे साधन का विधान इस आठवें नियम में किया गया है। इस नियम के दो भाग हैं—१. अविद्या का नाश और २. विद्या की वृद्धि। प्रत्येक शास्त्र में उसके विषय के अनुसार विद्या और अविद्या के अनेक लक्षणादि वर्णन किये गये हैं। विस्तार भय से उन सबका यहाँ वर्णन करना सम्भव नहीं है, चूँकि आर्यसमाज के नियमों की रचना महर्षि दयानन्द ने की है, इसलिए उनके ग्रन्थों में विद्या-अविद्या के स्वरूपादि का जैसा वर्णन किया गया है, उसी पर विचार करना समीचीन होगा।

महर्षि रचित व्यवहारभानु नामक लघु पुस्तिका में यह वर्णन आता है—

प्रश्न—"विद्या और अविद्या किसको कहते हैं?"

उत्तर—"जिससे पदार्थ का स्वरूप यथावत् जानकर उससे उपकार लेके अपने और दूसरों के लिए सब सुखों को सिद्ध कर सकें वह 'विद्या' और जिससे पदार्थों के स्वरूप को उलटा जानकर अपना और पराया अनुपकार कर लेवें, वह 'अविद्या' कहाती है।"

जो पदार्थ जैसा है उसको वैसा जानना 'विद्या' और विपरीत जानना अविद्या है, रज्जु को रज्जु जानना विद्या और उसे सर्प समझना अविद्या है। यह परिभाषा सर्वग्राह्य है, इसमें किसी प्रकार का मतभेद होने का स्थान नहीं है। वैशेषिक दर्शन ९। २। ११-१२ में इस प्रकार कहा है—**तद् दुष्टं ज्ञानम्।**

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

वह अविद्या [दुष्टज्ञानम्] दोषपूर्ण ज्ञान है। सूत्र का तात्पर्य यह है—जो वस्तु जैसी नहीं है, उसका वैसा दीखना अविद्या है। अगला सूत्र इस प्रकार है—अदुष्टं विद्या, अर्थात् जो ज्ञान [अदुष्टम्] दोषपूर्ण नहीं है, वह विद्या है। इसी को 'प्रमा' नाम से कहा जाता है। अविद्या से विपरीत होने के कारण विद्या का स्वरूप होगा—जो पदार्थ जैसा है, उसको वैसा ही जानना।

विद्या की यह परिभाषा बहुत रसल है, परन्तु व्यवहार में हम अनेक बार धोखा खा जाते हैं। दुष्ट व्यक्ति को सज्जन समझ लेते हैं और सादी वेशभूषा में रहनेवाले सरल प्रकृति के चरित्रवान् व्यक्ति को मूर्ख समझ जाते हैं। यदि दार्शनिक दृष्टि से विचार किया जाए तो हम अनित्य जगत् को नित्य और शरीरधारी साकार पुरुष को ईश्वर समझ लेते हैं, जो वस्तुतः निराकार और सर्वदेशी है। इसलिए प्रश्न यह उत्पन्न होता है कि विद्या के वास्तविक स्वरूप को कैसे जाने। इस बारे में महर्षि दयानन्द व्यवहारभानु में लिखते हैं—

प्रश्न—विद्या किस-किस प्रकार और किन कर्मों से होती है?

उत्तर—चतुर्भिः प्रकारैर्विद्योपयुक्ता भवति।

आगमकालेन स्वाध्यायकालेन प्रवचनकालेन व्यवहारकालेनेति॥ —महा० अ० १।१।१; आ० १

विद्या चार प्रकार से आती है—आगम, स्वाध्याय, प्रवचन और व्यवहारकाल................तथा अन्य भी चार कर्म विद्या-प्राप्ति के लिए हैं—श्रवण, मनन, निदिध्यासन और साक्षात्कार। इन आठों की परिभाषा यहाँ देना सम्भव न हो सकेगा। इसके लिए मूल पुस्तक को ही देखना लाभकारी होगा।

महर्षि दयानन्द ने विद्या के बारे में जो लिखा है, उसके दो भाग हैं—१. विद्या का स्वरूप और २. उस स्वरूप को जानकर उससे उपकार लेके अपने और दूसरों के लिए सुखों

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

को सिद्ध करना। विद्या का केवल सैद्धान्तिक ज्ञान पर्याप्त नहीं है। नारद ने सनत्कुमार ऋषि के पास जाकर कहा—"भगवन्! मुझे उपदेश दीजिए।" सनत्कुमार ने कहा—"जितना तुमने पढ़ा है, उतना बताओ, जिससे आगे मैं तुम्हें बताऊँ।" नारद ने उत्तर दिया—"मैंने ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद और अथर्ववेद पढ़ा है, इनके सिवा इतिहास, पुराणरूप पाँचवा वेद, वेदों का व्याकरण, पितृ-विद्या, गणित, दैव-विद्या, अर्थशास्त्र, तर्कशास्त्र, भूत-विद्या, क्षत्र-विद्या, नक्षत्र-विद्या, सर्प-विद्या और नृत्य, संगीत आदि भी जानता हूँ। यह सब तो मैं जानता हूँ, परन्तु मैं मन्त्रवित् हूँ, आत्मवित् नहीं," अर्थात् मैंने पुस्तकें तो रट ली हैं, परन्तु मुझे आत्मशान्ति नहीं मिली। इसी प्रकार संसार में पदार्थों का सैद्धान्तिक ज्ञान प्राप्त कर लेनेवाले विद्वान् तो बहुत भरे पड़े हैं, परन्तु उन्हें आत्मिक शान्ति नहीं है, इसलिए विद्या की उक्त परिभाषा के दूसरे भाग में कहा गया है कि उस विद्या से मनुष्य को अपनी भलाई करनी चाहिए और साथ ही दूसरों का भी उपकार करना चाहिए। यहाँ विद्या के आचरण-पक्ष पर बल दिया गया है।

विद्या की प्राप्ति से पूर्व अविद्या का नाश करना आवश्यक है। दुरितों के दूर होने के बाद ही भद्र की प्राप्ति होती है। वस्त्र से मैल निकालने के बाद ही टिनोपाल और नील की रौनक़ आती है। इसलिए प्रस्तुत नियम में पहले अविद्या को दूर करने की बात कही गई है। महर्षि दयानन्द ने सत्यार्थप्रकाश नवमसमुल्लास में योगदर्शन के सूत्र के आधार पर अविद्या के चार भाग किये हैं। प्रथम भाग है—अनित्य संसार को नित्य समझना। अपवित्र को पवित्र समझना, दूसरा भाग—दुःख को सुख समझना, तीसरा—अनात्मा में आत्मबुद्धि करना और चौथा भाग है। सब प्रकार की अविद्या का कारण सत्योपदेश का अभाव है। सत्यार्थप्रकाश, एकादशसमुल्लास

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

में लिखा है—"जब सच्चा उपदेश न रहा तब आर्यावर्त्त में अविद्या फैलकर परस्पर में लड़ने-झगड़ने लगे, क्योंकि—**उपदेश्योपदेष्ट्रत्वात् तत्सिद्धिः। इतरथान्धपरम्परा,** अर्थात् जब उत्तम-उत्तम उपदेशक होते हैं, तब अच्छे प्रकार धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष सिद्ध होते हैं और जब उत्तम उपदेशक और श्रोता नहीं रहते, तब अन्ध-परम्परा बढ़ती है। फिर भी जब सत्पुरुष उत्पन्न होकर सत्योपदेश करते हैं, तभी अन्ध-परम्परा नष्ट होकर प्रकाश की परम्परा चलती है।" इस नियम का सही-सही पालन करने के लिए आर्यसमाजों, आर्यप्रतिनिधि प्रान्तीय सभाओं और सार्वदेशिक आर्य-प्रतिनिधिसभा को योग्य आर्यपुरोहित, भजनोपदेशक और उपदेशकों की व्यवस्था करनी चाहिए। उपदेशकों को अपना और अपने परिवार का भरण-पोषण करने के लिए प्रचुर मात्रा में वेतन-दक्षिणा दी जाए। समाज में उनको सम्मान का स्थान प्राप्त हो। आर्यसमाज की वेदि से वैदिक-सिद्धान्तों-सम्बन्धी तुलनात्मक व्याख्यान दिये जाएँ। समय-समय पर आर्यविद्वानों, विचारकों और शुभचिन्तकों की गोष्ठियाँ आयोजित की जाएँ, जिनमें प्रचार के प्रकार और समस्याओं पर गम्भीरता से विचार किया जाए।

आठवें नियम के उत्तरार्द्ध में विद्या की वृद्धि (केवल प्राप्ति नहीं) करने का आदेश है। वह कैसे हो? जैसाकि नियम के पूर्वार्द्ध में कहा है—आर्यों को सर्वप्रथम अविद्या का नाश करना चाहिए। उसके बाद विद्या-प्राप्ति की इच्छा करें। पुरुषार्थ से प्राप्त विद्या की यथावत् रक्षा और रक्षित की वृद्धि और बढ़ी हुई विद्या से संसार का उपकार करना।

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

नवाँ नियम

प्रत्येक को अपनी ही उन्नति से सन्तुष्ट न रहना चाहिए, किन्तु सबकी उन्नति में अपनी उन्नति समझनी चाहिए।

नियम संख्या आठ, अर्थात् अविद्या का नाश और विद्या की वृद्धि करने से मनुष्य की वैयक्तिक उन्नति हो सकती है, परन्तु इतने मात्र से मनुष्य को सन्तोष नहीं कर लेना चाहिए। छठे नियम में बतलाये गये लक्ष्य (संसार का उपकार करना) का स्मरण कराते हुए प्रस्तुत नियम में कहा गया है कि सबकी उन्नति में अपनी उन्नति समझनी चाहिए। केवल अपना ही ध्यान रखने से व्यक्ति स्वार्थी बन जाता है। स्वार्थ में अन्धा होकर व्यक्ति फिर कुछ भी नहीं सोचता, उसे केवल अपना–ही–अपना दिखाई पड़ता है। उचित–अनुचित का विवेक नष्ट हो जाता है और उस स्थिति में मनुष्य घृणित–से–घृणित कार्य करने में भी नहीं झिझकता। स्वार्थवश वह पशु–स्तर पर उतर आता है, तब उससे केवल अपना आपा ही दिखाई देता है। मनुष्य इस दोष से बच सके, इस हेतु उसे आदेशित किया गया है कि वह दूसरों के हित का भी ध्यान रक्खे। उसे समझना चाहिए कि मनुष्य सामाजिक प्राणी है। समाज के सहयोग से ही व्यक्ति के सारे कार्य सम्पन्न होते हैं। परस्पर आदान–प्रदान पर ही समाज ठहरा हुआ है।

यह भी विचारणीय है कि कोई भी मनुष्य अकेला पूर्णतः उन्नत होकर सुखी नहीं हो सकता, जब तक दूसरों की प्रगति न हो। आप स्वयं उच्चतम शिक्षा प्राप्त हैं, आलीशान बंगले में रहते हैं। आपका घर धन–धान्य से भरपूर है, लेकिन आपके घर के चारों ओर रहनेवाले व्यक्ति अशिक्षित, दरिद्र, दुर्गुणों में लिप्त, दिन–रात झगड़ा करनेवाले और उच्च स्वर में

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

परस्पर गाली–गलोज करते रहते हैं। उनके मकानों में स्वच्छता का प्रवेश वर्जित है। चारों ओर गन्दगी–ही–गन्दगी है। क्या ऐसे वातावरण में आप सुख की नींद सो सकते हैं ? कारण स्पष्ट है कि मनुष्य जिस समाज में रहता है, उसमें एक का फल दूसरों को भोगना पड़ता है। कुछ विद्वान् इस मत से सहमत नहीं हैं। उनके मत में मनुष्य अपने किये कर्म से ही सुखी–दुःखी होता है। अन्य के कर्म का फल अन्य नहीं भोग सकता। यह तो पूर्णतः सत्य है, परन्तु इस सम्बन्ध में प्रश्न यह उठता है कि क्या अन्यों के कर्मफल से नहीं, अपितु अन्यों के कर्ममात्र से अन्य सुखी–दुःखी हो सकते हैं ? इस वाद के समर्थन में यह कहा जा सकता है कि मनुष्य एक सामाजिक प्राणी है। जैसाकि पहिले कहा जा चुका है कि उसका काम बिना समाज के नहीं चल सकता, इसलिए उसकी सबसे बड़ी आवश्यकता यह है कि समाज का गठन हो। समाज पारस्परिक सहायता के बिना नहीं बन सकता। सहायता का अर्थ यह है कि एक व्यक्ति अपने कर्म से दूसरे की आवश्यकता पूरी करे। जब इस प्रकार एक–दूसरे की आवश्यकता पूरी किया करते हैं, तभी समाज बन सकता है। एक अध्यापक छात्रों को पढ़ाकर उनके ज्ञान की पूर्ति करता है और उसके बदले में छात्र के अभिभावक अथवा सरकार उसको एक निश्चित धनराशि देते हैं, अतः स्पष्ट है कि बिना इस प्रकार की सहायता के समाज नहीं बन सकता और समाज बना हुआ मौजूद है, इसलिए अनिवार्य रीति से यह मानने के लिए बाधित होना पड़ता है कि एक के कर्म से दूसरे को हानि–लाभ पहुँचा करता है। कल्पना करो कि शीत–ऋतु में कुछ गरीब व्यक्तियों के पास शीत से अपनी रक्षा करने के साधन नहीं हैं। एक सम्पन्न दानी ने उन सबको रजाई अथवा कम्बल प्रदान कर दिये, फलस्वरूप उन सभी गरीबों का कष्ट दूर हो गया और उन सभी को सुख प्राप्त

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

हुआ। यहाँ सुख का कारण तो दानी का कर्म ही है। उसका फल तो दानी स्वयं पावेगा, क्योंकि यह दान उसी का कर्म था, परन्तु उसके दानरूप कर्म से अनेक गरीबों को लाभ हुआ। इसके विपरीत चोरी आदि बुरे कर्मों से जिसकी चोरी होती है, उसे दुःख पहुँचता है।

इस प्रकार दूसरों के कर्म से कोई पुरुष सुखी और दुःखी दोनों हो सकता है। इसलिए प्रत्येक मनुष्य का कर्त्तव्य हो जाता है कि जहाँ अपने को अच्छा बनाने का यत्न करे, वहाँ दूसरों को भी अच्छा बनाने का पुरुषार्थ करे। जब सभी अच्छे बन जाएँगे तब दुःख कहाँ रहेगा? हमें ऐसी प्रार्थना प्रतिदिन करनी चाहिए—

सर्वे भवन्तु सुखिनः सर्वे सन्तु निरामयाः।
सर्वे भद्राणि पश्यन्तु मा कश्चिद् दुःखभाग्भवेत्॥

अर्थ— हे नाथ! सब सुखी हों कोई न हो दुःखारी।
सब हों निरोग भगवन् धनधान्य के भण्डारी॥
सब भद्रभाव देखें, सन्मार्ग के पथिक हों।
दुःखिया न कोई होवे सृष्टि में प्राणधारी॥

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

दसवाँ नियम

सब मनुष्यों को सामाजिक, सर्वहितकारी नियम पालने में परतन्त्र रहना चाहिए और प्रत्येक हितकारी नियम में सब स्वतन्त्र रहें।

समाज में कई अवसर ऐसे आते हैं, जब वैयक्तिक और सामाजिक कर्त्तव्यों में विरोध उत्पन्न हो जाता है और हमारे सामने दो पक्ष उपस्थित होते हैं। एक पक्ष व्यक्ति को ही प्रमुखता देता है, उसकी दृष्टि में व्यक्ति ही सर्वोपरि है, क्योंकि व्यक्तियों से ही समाज का गठन होता है। व्यक्ति के उन्नत और समृद्ध होने पर ही समाज उन्नत और समृद्ध हो सकता है, अतः व्यक्ति को सामने रखकर ही हर व्यवस्था और नियम बनना चाहिए। व्यक्ति के हित के लिए समाज के हित की उपेक्षा कर देनी चाहिए। दूसरा पक्ष समाज को ही प्रमुखता देता है, क्योंकि समाज से पृथक् व्यक्ति की कोई सत्ता नहीं है। प्रत्येक बात के लिए वह जन्म से लेकर मरणपर्यन्त समाज पर ही आश्रित रहता है। वर्त्तमान में कम्यूनिस्ट विचारधारा इसी की पक्षधर है। इस विचारधारा के अनुसार वैयक्तिक स्वतन्त्रता का कोई अस्तित्व ही नहीं रहता, व्यक्ति समाज के लिए भाड़े का एक टट्टू हो जाता है। कम्यूनिज्म में व्यक्ति को मिटा दिया जाता है, उसकी स्वतन्त्रता का अपहरण कर लिया जाता है और व्यक्ति राजनीतिक दलरूपी मशीन का एक पुर्ज़ामात्र रह जाता है, उसकी स्वतन्त्रता नष्ट हो जाती है, वह अपने-आप कुछ नहीं सोच सकता।

वस्तुतः ये दोनों पक्ष अधूरे हैं और सामाजिक समस्या का सन्तोषजनक समाधान करने में असमर्थ हैं। प्रस्तुत दशम

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

नियम में इस समस्या का सही सन्तोषजनक समाधान किया गया है। इस नियम में व्यक्ति की स्वतन्त्रता और परतन्त्रता की सीमा नियत की गई है। हर प्रकार के सामाजिक नियम के पालन करने में परतन्त्र रहने की बात इस नियम में नहीं कही गई। बाल-विवाह, सती-प्रथा, अस्पृश्यता और दहेज आदि समाजों के कई सामाजिक नियम है, किन्तु ये नियम सर्वहितकारी न होकर अहितकारी हैं, अतः व्यक्ति को इस प्रकार के नियमों का पालन नहीं करना चाहिए और उनके विरुद्ध विद्रोह करना चाहिए। वास्तव में व्यक्ति को केवल उन्हीं सामाजिक नियमों का पालन करना चाहिए जो सर्वहितकारी हों। जो कर्म व्यक्ति के लिए हितकारी प्रतीत होते हों, परन्तु जिनसे समाज के गौरव को क्षति पहुँचती हो, धर्म की हानि होती हो उन कर्मों को करने में व्यक्ति परतन्त्र है, परन्तु कुछ वैयक्तिक हितकारी नियम ऐसे भी हैं, जिनके पालन करने से सामाजिक हानि नहीं होती। एक उदाहरण देना ही पर्याप्त होगा। शास्त्र में कहा है कि व्यक्ति को प्रातःकाल ब्राह्ममुहूर्त्त में उठकर धर्मार्थ का चिन्तन करना चाहिए। क्या सभी व्यक्ति इसका पालन कर सकते हैं? सायं छह बजे से रात्रि दो बजे तक ड्यूटी देनेवाला कर्मचारी फैक्टरी से घर लौटकर ढ़ाई बजे सोता है और उसे लगभग पाँच-छह घण्टे की नींद भी लेनी चाहिए। उससे कैसे आशा की जा सकती है कि वह प्रातः चार बजे ब्राह्ममुहूर्त्त में जागकर धर्मार्थ का चिन्तन करे। हाँ, जो व्यक्ति रात्रि नौ बजे सोता है, उसे अवश्य प्रातः ब्राह्ममुहूर्त्त में जग जाना चाहिए। इस बात को सभी जानते हैं कि समाज के सभी व्यक्तियों की स्थिति और साधन समान नहीं है, इसलिए अपने वैयक्तिक कर्त्तव्यों यथा—शयन, जागरण, स्नान, व्यायाम, भोजन, स्वाध्याय करना आदि में सब स्वतन्त्र हैं।

पातञ्जल-योगदर्शन में यम-नियम पालन करने की बात

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

कही है। यम पाँच हैं—अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य और अपरिग्रह। ये सभी सामाजिक कर्त्तव्य हैं जिनके पालन करने में प्रत्येक व्यक्ति को परतन्त्र रहना चाहिए। इनका पालन न करने पर उसे सामाजिक और राजकीय दण्ड भोगने के लिए तैयार रहना चाहिए। नियम भी पाँच हैं—शौच, सन्तोष, तप, स्वाध्याय और ईश्वर-प्राणिधान। ये मनुष्य के वैयक्तिक कर्त्तव्य हैं। इनका पालन करने में व्यक्ति स्वतन्त्र है। इनका सम्यग्रूपेण पालन करनेवाले व्यक्ति का हित होता है।

यहाँ यह बात ध्यान देने योग्य है कि सामाजिक और वैयक्तिक कर्त्तव्यों का पालन साथ-साथ करना चाहिए, केवल एक का पालन करने से व्यक्ति का हित नहीं हो सकता। महर्षि दयानन्द मनुस्मृति के आधार पर सत्यार्थप्रकाश, समुल्लास-३ में लिखते हैं—"यमों के बिना केवल इन नियमों का सेवन न करे, किन्तु इन दोनों का सेवन किया करे। जो यमों का सेवन छोड़के केवल नियमों का सेवन करता है, वह उन्नति को नहीं प्राप्त होता, किन्तु अधोगति, अर्थात् संसार में गिरा रहता है।"

इस दश नियम में स्वतन्त्रता और परतन्त्रता का बड़ा सुन्दर समन्वय किया गया है। प्रत्येक व्यक्ति को स्वतन्त्रता प्रिय है और परतन्त्रता अप्रिय, अर्थात् स्वतन्त्रता को सभी चाहते हैं और परतन्त्रता से घृणा करते हैं, परन्तु ध्यान रहे कि स्वतन्त्रता का अर्थ उच्छृंखलता नहीं है, जो स्वयं सामाजिक विघटन का प्रमुख कारण है, इसलिए इस नियम में आदेश दिया गया है कि—सामाजिक सर्वहितकारी नियम पालने में परतन्त्र और प्रत्येक वैयक्तिक हितकारी नियम में सब स्वतन्त्र रहें।

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

स्वामी जगदीश्वरानन्द कृत विद्वत्तापूर्ण पुस्तकें

वेद सौरभ
स्वर्ण–पथ
प्रार्थनालोक
ईशोपनिषद्
षड्दर्शनम्
विदुर नीतिः
सामवेद भाष्य
ब्रह्मचर्य गौरव
आदर्श परिवार
सामवेदशतकम्
ऋग्वेदशतकम्
यजुर्वेदशतकम्
दिव्य–ओषधियाँ
अथर्ववेदशतकम्
घरेलू औषधियाँ
वैदिक प्रश्नोत्तरी
यजुर्वेद सूक्तिसुधा
ऋग्वेद सूक्तिसुधा
सामवेद सूक्तिसुधा
वाल्मीकि रामायण
चाणक्यनीति–दर्पण
अथर्ववेद सूक्तिसुधा
भक्ति–संगीतशतकम्
चमत्कारी औषधियाँ
वैदिक विवाह पद्धति
वैदिक सूक्ति सरोवर
कुछ करो कुछ बनो
मर्यादा पुरुषोत्तम राम
सत्यनारायण व्रतकथा
विद्यार्थियों की दिनचर्या
दिव्य रसायन : गोमूत्र
चतुर्वेदशतकम् (सजिल्द)
महाभारतम् (एक खण्ड में)
भारत की अवनति के सात कारण
सत्यार्थप्रकाश (आधुनिक हिन्दी रूपान्तर)

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

सत्यार्थप्रकाश के १२५वें प्रकाशन वर्ष पर विशेष

आज से लगभग ७५ वर्ष पूर्व सन् १९२५ में श्री गोविन्दरामजी ने अनेक विशेषताओं से युक्त सत्यार्थप्रकाश का प्रथम संस्करण ऋषि जन्म शताब्दी के अवसर पर कलकत्ता से प्रकाशित किया था। सन् १९६२ में पं० भगवद्दत्तजी रिसर्च-स्कॉलर ने, महर्षि की मूल प्रति से शोधकर सत्यार्थप्रकाश तैयार किया था जिसमें कई विशेषताएँ थी।

निम्न विशेषताएँ युक्त यह संस्करण पं० भगवद्दत्तजी वाले संस्करण की प्रतिलिपि है—

१. पं० वीरसेनजी ने सत्यार्थ प्रकाश के सभी वेद मन्त्रों के स्वरों को शुद्धरूप दिया था। इस संस्करण में उसका अनुसरण किया गया है।
२. प्रथम समुल्लास में आये ईश्वर के १०८ नामों की अकरादि क्रम से सूची प्रथम परिशिष्ट में।
३. सत्यार्थप्रकाश में व्याख्यात पारिभाषिक शब्दों की सूची द्वितीय परिशिष्ट में।
४. सत्यार्थप्रकाश में निर्दिष्ट व्यक्तियों वा स्थनादि की अकारादिक्रम से सूची तृतीय परिशिष्ट में।
५. तेरहवें समुल्लास में भाषा में निर्दिष्ट विभिन्न शब्दों का रोमन लिपि में निर्देश चतुर्थ परिशिष्ट में।
६. चतुर्दश समुल्लास में उद्धृत कुरान की आयतों के अनुवाद के सम्बन्ध में पं० रामचन्द्र देहलवी का वक्तव्य पञ्चम परिशिष्ट में।
७. सत्यार्थप्रकाश की आधार-ग्रन्थ-सूची षष्ठ परिशिष्ट में।
८. सत्यार्थप्रकाश पर उठी शंकाओं का समाधान सप्तम परिशिष्ट में।
९. अन्तिम अष्टम परिशिष्ट में अकारादिक्रम से प्रमाण-सूची।
१०. अनुच्छेदों (पैराग्राफों) पर क्रमांक इसकी एक अनूठी विशेषता है।
११. प्रत्येक पृष्ठ के ऊपर उस पृष्ठ में आ रहे विषय का उल्लेख।
१२. प्रारम्भिक पृष्ठों में समुल्लास-अनुसार विस्तृत विषय-सूची।
१३. मन्त्रानुक्रमणिका सहित।

इन सब विशेषताओं के लिए स्वर्गीय श्री पं० भगवद्दत्त, स्व० श्री पं० जयदेव विद्यालंकार, स्व० श्री पं० रामचन्द्र देहलवी, स्व० पं० वीरसेन वेदश्रमी, स्वामी जगदीश्वरानन्द के हम आभारी हैं।

स्वर्गीय श्री पं० युधिष्ठिर मीमांसक के प्रति भी आभार, सत्यार्थप्रकाश के उनके संस्करण से तीन शब्द-सूचियाँ इस संस्करण में उद्धृत की हैं।

'वेदप्रकाश' साईज के ७५० पृष्ठों का यह संस्करण कम्प्यूटर द्वारा कम्पोज, मोटा टाईप, बढ़िया नयनाभिराम छपाई एवं मजबूत कपड़े की जिल्द में १५ अप्रैल २००० तक उपलब्ध हो जाएगा। मूल्य होगा रु० १२५.००।

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

विशेष प्रचारित लघु ट्रैक्ट

उपनिषत् सुक्ति-सुधा : संकलन : श्री ज्ञानचन्द शास्त्री

अनेक भाष्यकारों के सहयोग से उपनिषदों की सूक्तियों का अर्थ सहित संकलन किया गया है। ३४ विभिन्न विषयों पर २०० से अधिक सूक्तियाँ सम्मिलित हैं।

पृष्ठ सं० : ४०, आकार : २०×३०/१६

ईश्वर स्तुति-प्रार्थनोपासना मन्त्रों का प्रवचन : पं० हरिशरण

चतुर्वेद भाष्यकार पं० हरिशरणजी सिद्धान्तालंकार द्वारा ईश्वर-स्तुति-प्रार्थनोपासना के मन्त्रों पर मार्मिक प्रवचन। पृष्ठ : ३२, आकार : २०×३०/१६

गायत्री साधना : वेदप्रकाश शास्त्री

प्रस्तुत पुस्तक में सर्वसाधारण व्यक्ति के स्तर और समय को ध्यान में रखकर गायत्री साधना के तीन रूप प्रस्तुत किये गए हैं। पृष्ठ : ३२, आकार : २०×३०/१६

नमस्ते की व्याख्या : पं० सुखदेव विद्यावाचस्पति

वैदिक साहित्य के अनुसार हमारा परस्पर सत्कार एवं आशीर्वादसूचक शब्द क्या होना चाहिए? आईए जानें। पृष्ठ सं० : ३२, आकार : २०×३०/१६

वैदिक आदर्श : स्वामी श्रद्धानन्द

पं० हरिशरणजी विद्यालंकार द्वारा अनुवादित स्वामीजी के प्रवचनों का संग्रह।

पृष्ठ सं० : ३२, आकार : २०×३०/१६

वेद का राष्ट्रगान : श्री राजनाथ पाण्डेय

अथर्ववेद के पृथ्वीसूक्त का भावपूर्ण काव्यानुवाद। पृष्ठ :३२, आकार :२३×३६/१६

ईश्वर-पूजा का वैदिक स्वरूप : पं० रामचन्द्र देहलवी

आइए जानें ईश्वर की पूजा का वैदिक प्रकार क्या है? अत्यन्त उपयुक्त दृष्टान्त देकर इसकी रोचकता भी बढ़ा दी गई है। कठिन उर्दू, फारसी शब्दों का भी सरलीकरण कर दिया गया है। पृष्ठ : ४०, आकार : २०×३०/१६

आर्य मन्तव्य दर्पण : मेधार्थी स्वामी

आर्योद्देश्यरत्नमाला तथा स्वमन्तव्यामन्तव्य प्रकाश के लक्षणों पर वेद मन्त्रों से प्रमाण सहित शब्दार्थ और शिक्षा के साथ। पृष्ठ : ९६, आकार : २०×३०/१६

ओ३म् की व्याख्या : रामसिंह आर्य भजनोपदेशक

ईश्वर के ओंकारादि नामों की स्पष्ट व्याख्या तथा उसके गुण, कर्म, स्वभाव का यथावत् बोध करानेवाली यह पुस्तक अत्यन्त सरल-सबोध शैली में प्रस्तुत है।

पृष्ठ सं० : ४८, आकार : २०×३०/१६

सन्ध्या विनय : प्रो० नित्यानन्द पटेल

पुस्तक में सन्ध्या के अर्थों के अनुरूप भाव भरी प्रार्थनाएँ दी गयी हैं। सन्ध्या को जीवनोपयोगी बनाने में सहायक ये प्रार्थनाएँ उत्तमोत्तम संकल्पों की उद्बोधक हैं।

पृष्ठ सं० : ११२, आकार : १७×२७/१६

ऋषि दयानन्द कीर्तिगान : पं० नारायणप्रसाद बेताब

डॉ० भवानीलाल भारतीय द्वारा सम्पादित लेखक की ऋषि दयानन्द के जीवन प्रसंगों पर लिखे गये चार प्रसिद्ध मुसद्दसों (लम्बी कविताओं) का संकलन तथा लेखक के व्यक्तित्व तथा कृतित्व की शोधपूर्ण जानकारी। पृष्ठ सं० : ६८, आकार : २०×३०/१६

वैदिक सूक्त माला : पं० वीरसेन वेदश्रमी

आत्मपावन सूक्तम्, श्रीसूक्तम्, सरस्वती सूक्तम्, सुमंगलम सूक्तम्, संजीवनं सूक्तम्, वाणिज्य सूक्तम् का संग्रह। पृष्ठ सं० : ९६, आकार : २३×३६/३२

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

आर्यसमाज के दस निय

सत्य पर आधारित एक सर्वभौम आर संगत नाम आर्यसमाज है। आर्यसमाज का धर्म वेद है। सिद्धान्तों की विस्तृत व्याख्या महर्षि दयानन्द चित में और उन सिद्धान्तों का संक्षेप 'स्वमन्तव्याम तव्य में दिया गया है और उसका भी सार आर्यसम नियमों में है। यह सभी नियम बहुत तर्कपूर्ण है

आर्यसमाजों के साप्ताहिक सत्संग में शा से पूर्व आर्यसमाज के नियमों का सम्मिलित पाठ जाता है। इसके अतिरिक्त अनेक आर्यशिक्षण–संस्थ त्रायों को ये नियम कण्ठस्थ कराये जाते हैं। इस आर्यजनों में इन नियमों का व्यापक प्रचार है। इन की भावना और सिद्धान्तों को सही प्रकार से समझ इस उद्देश्य से प्रस्तुत पुस्तक में नियमों की सरल व करने का प्रयास किया है। आशा है स्वाध्या आर्यजन इस प्रयास से लाभान्वित होंगे।

विजयकुमार गोविन्दराम हासानन्द

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi